ISSN 2454-7131
Online

(अक्टूबर-दिसंबर, 2015)
अंक - 3

अनुसृजन

(अनुवाद अध्ययन विभाग की त्रैमासिक द्विभाषी ई-पत्रिका)

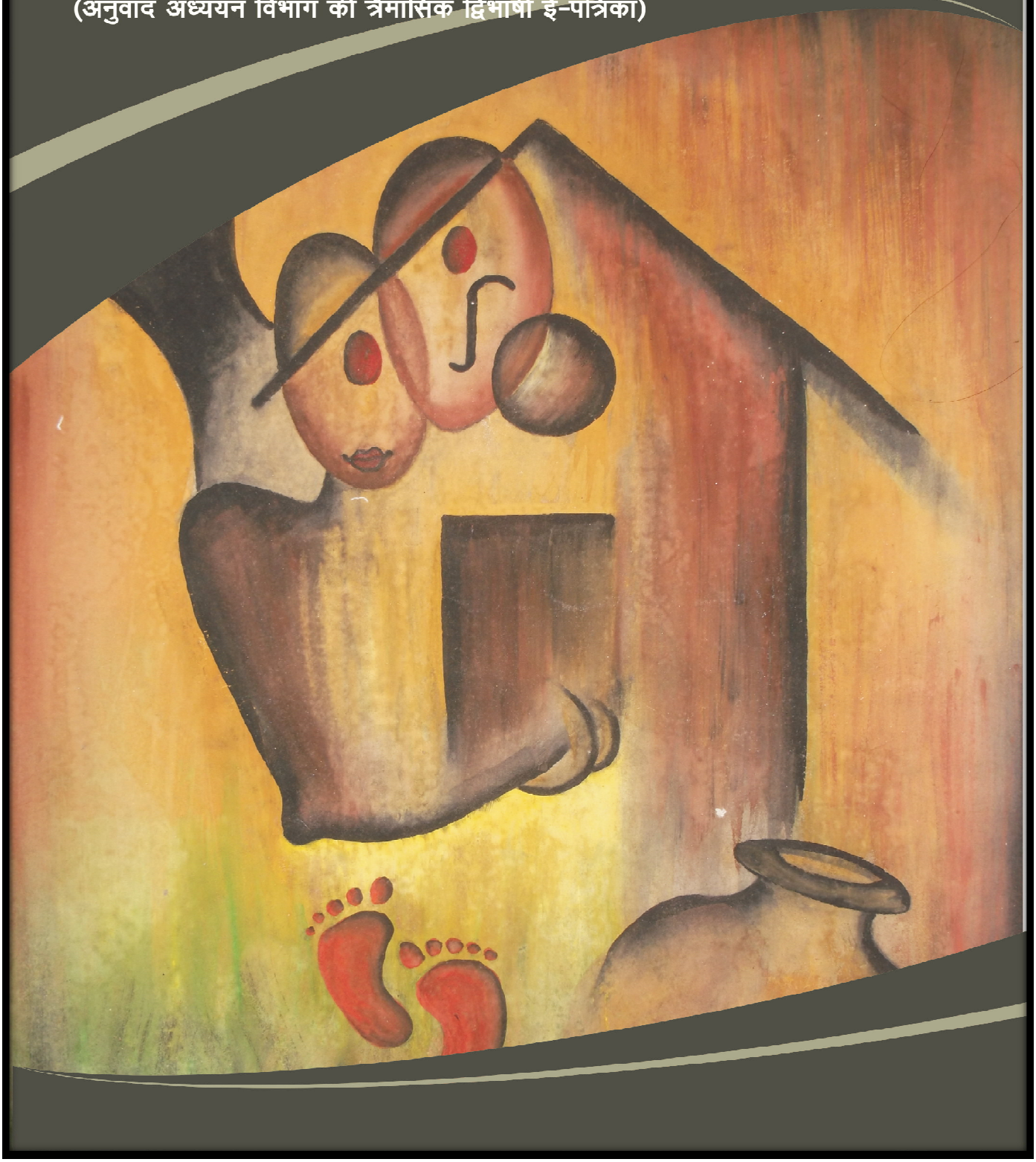

अनुसृजन

अनुवाद अध्ययन विभाग की त्रैमासिक द्विभाषी ई-पत्रिका
अंक - 3 : अक्तूबर-दिसंबर, 2015

संरक्षक
प्रो. गिरीश्वर मिश्र, कुलपति

मार्गदर्शक
प्रो. चित्तरंजन मिश्र, समकुलपति
प्रो. देवराज

परामर्शदाता
डॉ. अनवर अहमद सिद्दीकी

संपादक
डॉ. हरप्रीत कौर

सह-संपादक
डॉ. मिलिंद पाटिल, सुधीर जिंदे

रेखांकन
मेघा आचार्या

तकनीकी सहयोग
अमित अ. घोडे

आवरण सज्जा
राजेश आगरकर

प्रकाशक : अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

- प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल/प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं।
- न्याय क्षेत्र : वर्धा

E-Mail - aanusrujan@gmail.com,

संपादकीय

यह अनुसृजन का तीसरा अंक है | इस बार से हम अनुसृजन को शोध पत्रिका के कलेवर में ISSN के साथ ई-प्रकाशित कर रहे हैं| अनुवाद के क्षेत्र में काम कर रहे लेखकों और अनुवादकों का सहयोग हमें लगातार प्राप्त हो रहा है| जैसा कि पहले अंक के संपादकीय में मैंने अनुसृजन के प्रारूप के बारे में लिखा था| और कुछ कॉलम निर्धारित किये थे उसी के तहत इस बार आप पत्रिका के इस अंक में शोध खंड (एक), शोध खंड (दो) अतिथी कॉलम, इतर, उल्था, अनुवादक परिचय, स्मृति आदि कई खंड देखेंगे| शोध खंड एक में अनुवाद और भाषा से संबंधित आलेख शामिल किये गए हैं| शोध खंड (दो) में समाजविज्ञान और मानविकी से संबंधित रहेगा| इतर के तहत अनुवाद के अतिरिक्त दूसरे विषयों पर शोध आलेख अथवा अन्य सामग्री शामिल की गई है| 'अनूदित पुस्तक समीक्षा' में भारतीय अथवा विदेशी भाषाओं से अनूदित किसी कृति की समीक्षा शामिल किये जाने की योजना है| जैसा कि 'उल्था' के तहत अनूदित रचनाओं को शामिल किये जाना है, इस खंड में इस बार अनुवादक और चित्रकार गोपाल नायडू द्वारा किया गया श्रीधर पंवार की महत्वपूर्ण कविताओं का मराठी से हिंदी में अनुवाद शामिल किया जा रहा है| इसके अलावा शिल्पा, मेघा और मेरे द्वारा किये गए अनुवादों को अनुसृजन में शामिल किया गया है| अनुवादक परिचय खंड में प्रोफ़ेसर चमनलाल जी का अनुवादक के रूप में परिचय शामिल किया गया है| चमनलाल जी ने भगत सिंह और पंजाबी कवि पाश को हिंदी के पाठकों के लिए पठनीय बनाया| अनुवादक के रूप में उनका बड़ा योगदान रहा है| अनुसृजन के अगले अंकों में भी हम भारतीय व विदेशी भाषाओं के अनुवादकों का परिचय देते रहेंगे| 'स्मृति' में अनुवाद के क्षेत्र में कार्य करने वाले उन अनुवादकों को स्मरण किया जाएगा जो अब हमारे बीच नहीं रहे उनके द्वारा किये गये रचनात्मक लेखन और अनुवाद आदि के बारे में स्मरण करते हुए इस खंड में किसी लेखक अथवा पाठक का लेख अथवा संक्षिप्त टिप्पणी शामिल की जायेगी| बालशौरि रेड्डी जी हमारे बीच नहीं रहे| उन्हें स्मरण करते हुए प्रो. देवराज जी द्वारा लिखा गया स्मृति अंश हमने इसमें शामिल किया है| हिंदी के प्रसिद्ध कवि वीरेन डंगवाल हमारे बीच नहीं रहे| उनकी दो पंक्तियों को स्मरण करते हुए प्रस्तुत है अनुसृजन का तीसरा अंक| उम्मीद है पाठकों को यह अंक पसंद आयेगा| इस अंक के लेखकों को धन्यवाद|

वीरेन डंगवाल की पंक्तियाँ

'इतने भले नहीं बन जाना साथी
जितने भले हुआ करते हैं सरकस के हाथी'

संपादक

डॉ. हरप्रीत कौर

स्मृति

.....

हिंदी के तपस्वी का जाना

संपूर्ण भारतवर्ष में हिंदी का जो प्रसार आज दिखाई दे रहा है उसके पीछे अनेक लोगों की तपस्या हैं। दक्षिण में जिन हिंदी साधको ने स्वाधीन भारत की मुख भाषा के रूप में हिंदी को स्थापित किया उनमें मोटुरि सत्यनारायण, पी. नारायण नरन, टी. राजू शर्मा, ना. नागप्पा और बालशौरि रेड्डी आज हमारे बीच नहीं है। रेड्डी जी तो पिछले महीने ही दिनांक 15 सितंबर, 2015 को 8 : 30 बजे अचानक विदा हो गए। 12 सितंबर को भोपाल के विश्व हिंदी सम्मेलन में शामिल हो कर लौटे, घर आते ही ऊपर के कमरे में अव्यवस्थित ढंग से रखे ग्रंथों, शोध कार्यों, पुरस्कारों और सम्मानपत्रों को उल्टा-पल्टा, मित्रों को फोन किए, अपने बेटे-पोते के बारे में हँसते हुए चर्चा की, चिट्ठियाँ लिखीं और एक दिन मन में तमाम योजनाओं का खाका बनाते हुए सुबह की चाय पी, नीचे वाले कमरे मे बैठकर इधर-उधर देखा और बुलावा आ गया।..... कुछ महीने पहले भारतरत्न अब्दुल कलाम शिलांग में विद्यार्थियों को संबोधित करते–करते महाप्रयाण पर निकल गए थे, रेड्डी जी हिंदी की योजनाओं की कल्पना करते-करते उनके रास्ते पर चले गए।

बालशौरि रेड्डी से सितंबर के शुरू में फोन पर बाते हुई थी। उस समय ओडिया-हिंदी के प्रख्यात विद्वान और अनुवादक राजेन्द्र मिश्र मेरे पास बैठे थे। फोन दरअसल राजेन्द्र जी के कारण ही किया गया था। वे जैसे ही मेरे पास आए तो बैठने के कुछ देर बाद ही रेड्डी जी की चर्चाएँ चल पड़ी। उनके प्रति राजेन्द्र जी की भावुकता और लगाव को देखकर मैंने चुप-चाप फोन मिलाया, रेड्डी जी की आवाज आते ही बोला, "लीजिए, अपने एक प्रशंसक भक्त से मुलाक़ात कीजिए और फोन राजेन्द्र जी के हाथ में पकड़ा दिया। दोनों लोग इस तरह बातें करने लगे कि जैसे लंबे समय के बिछुड़े गले मिल रहे हों। बात करने की मेरी बारी आई तो रेड्डी जी ने घर परिवार की कुशलता जानने के बाद कहा कि वे वर्धा आएँगे तो खूब बातें करेंगे, यह भी बोले कि यदि इस बीच मेरा चेन्नई जाना हो तो मैं उनके घर अवश्य जाऊँ। मेरा मन था कि मैं ही चेन्नई जा कर उनसे मिलूँगा, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। यह त्रासदी मेरी ही तरह अनेक के साथ घटी होगी।

रेड्डी जी बड़े सक्रिय साहित्यकार और हिंदी सेवी थे। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, शंकर दयाल शर्मा, बाबू गंगाशरण सिंह, रामधारी सिंह दिनकर के साथ निकट संबंधों के लिए उन्हें जाना जाता था। सारे देश में फैले हुए हिंदी प्रेमीयों के वे प्रिय थे। उनके साहित्य पर काफी शोध कार्य किया गया है। वे अभिनन्दन ग्रंथ योजनाओं के केंद्र में भी रहे। 'अपने-अपने बालशौरी' पुस्तक में अनेक लोगों ने उन्हें अपने-अपने नजरिये से गहराई के साथ देखा। तमिलनाडु हिंदी अकादमी शुरू करके रेड्डी जी ने दक्षिण की कठिन परिस्थितियों में हिंदी का स्वर ऊँचा किया। चंदा मामा की हिंदी संस्करण की लोकप्रियता रेड्डी जी के कारण बनी। तेलुगु और हिंदी के रिश्ते वे आजीवन मजबूत करते रहे। ऐसे बालशौरि रेड्डी जब अचानक दुनिया से चले गए तो चिंता होती है, कि उनकी अधूरी योजनाओं का क्या होगा। कम-से-कम इस पक्ष पर बातचीत होनी चाहिए।

अभी इतना ही, विस्तार से कभी बाद में लिखूँगा.....!!!!

देवराज

शोध खंड 1

1	अनुवाद प्रबंधन -	डॉ. ऋषभदेव शर्मा, डॉ. जी.नीरजा	4 - 8
2	अनुवाद की चुनौतियाँ	डॉ. ई. विजय लक्ष्मी	9 - 13
3	वैश्विक परिदृश्य में हिंदी का विकास	विद्या चंदनखेड़े	14 - 18
4	अनुवाद में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग : हिंदी - तेलुगु का विशेष संदर्भ	बी. हेमलता	19-23
5	अनुवाद की प्रकृति : कला, कौशल या विज्ञान	आशीष कुमार	24-27
6	अनुवाद का सैद्धांतिक पक्ष और विभिन्न परिप्रेक्ष्य	राजेश मून	28-31
7	साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के अनुवाद की समस्याएँ	मिलिंद पाटिल	32-36
8	प्रयोजनमूलक क्षेत्र में अनुवाद की समस्याएँ	बृजेश चौहान	37-40
9	संप्रेषण में कोड मिश्रण एवं कोड परिवर्तन	नेहा सुपारे	41-44
10	हिंदी-अंग्रेजी अनुवाद में पुनरुक्ति शब्द प्रतिचयन की समस्या	शिल्पा	45-48
11	हिंदी से मराठी भाषा शिक्षण में अपसरण	अर्चना बलवीर	49-52
12	"साहिबां तूं माड़ी कीती नीं जे पता हुदा तूं इंज करनी मैं लयोंदा नाल भरावां नूं" (पंजाबी किस्सा काव्यों के अनुत्तरित स्त्री प्रश्न और पंजाब में स्त्री की स्थिती)	हरप्रीत कौर	53-65
13	मणिपुरी बाल साहित्य का इतिहास -	देवराज	66-74
14	Disambiguating Verb Sense : A Rule Based Approach for Machine Translation (Special Reference with English Motion around the axis Verb)	Sudhir Jinde	75-77

शोध खंड 2

15	कुपोषण, ऐनीमिया और महिलाएँ -	अस्मिता राजुरकर	78-83
16	किस्सागोई का अनोखा वितान: गाँव भीतर गाँव -	मनीषा जैन	84-88
17	महात्मा गांधी और गिरमिटिया -	मुन्नालाल गुप्ता, राजीव रंजन राय	89-93

अनूदित पुस्तक संवाद

18	कविता का कथा-पाठ और हमारा समय -	देवराज	94-99

उल्था

19	पोल वरलेन की कविताएं -	अनुवादक श्रीनिकेत कुमार मिश्र	**100-101**
20	मोहनजीत की कविताओं का अनुवाद -	अनुवादक हरप्रीत कौर	**102-106**
21	लोकनाथ यशवंत की कविताओं का अनुवाद -	अनुवादक गोदावरी ठाकुर	**107**
22	नामदेव ढसाल की कविताओं का अनुवाद -	अनुवादक मिलिंद पाटिल	**108**
23	वैर मुत्तु की कविताओं का अनुवाद -	अनुवादक डॉ. लक्ष्मी अय्यर	**109-110**
24	डॉ. सी. नारायण रेड्डी, की कविताओं का अनुवाद -	अनुवादक डॉ. लक्ष्मी अय्यर	**111**
25	संजय तिगावकर की कविताओं का अनुवाद -	अनुवादक अनवर अ. सिद्धिकी	**112**
26	विक्रम सेठ की कविताओं का अनुवाद -	अनुवादक शिल्पा	**113**
27	जयंत महापात्रा की कविताओं का अनुवाद	अनुवादक शिल्पा	**113**
28	लोकनाथ यशवंत की कविताओं का अनुवाद -	अनुवादक मेघा आचार्य	**114**
29	बरसा ही नहीं बादल -	अनुवादक - ई-विजय लक्ष्मी, लेखक - कैशाल प्रियोकुमार	**115-121**

अनुवादक के नोटस

30	आधा आकाश सिर पर (श्रीधर पँवार) -	गोपाल नायडू	**122-125**

अनुवादक अनुभव

31	नाट्यानुवाद - नाट्य रूपांतरण प्रक्रिया - मेरे अनुभव -	सतीश पावड़े	**126-129**
32	Acceptance Speech on the occasion of Sahitya Akademi Translation Prizes and Bhasha Samman Special Function (19.8.02) -	Chaman Lal	**130-131**

अनुवाद प्रबंधन

डॉ. ऋषभदेव शर्मा, डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा

भाषा नियोजन में भाषा सामग्री (कार्पस) और भाषा पद (स्टेटस) के नियोजन के अंतर्गत यदि राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रबंधन की बात करें तो इसकी भाषा सामग्री का विकास करने में सहज ही अनुवाद प्रबंधन की भूमिका सामने आती है। भाषा नियोजन के सुविचारित परिवर्तन, समस्या-समाधान, सर्वोत्तम विकल्पों का चयन, भविष्यपरकता और पूर्णतः सामाजिक संदर्भ जैसे अभिलक्षण अनुवाद प्रबंधन पर भी लागू होते हैं। राजभाषा के रूप में जब कोई राष्ट्र किसी विशिष्ट भाषा कोड का चयन करता है तो उसका यह भी प्रयास होता है कि उस भाषा रूप/ कोड को "सामाजिक गतिविधियों के उन नित नए बढ़ते आयामों में पूर्ण अभिव्यक्ति देने के लिए समर्थ बनाया जाए जिनमें उसका प्रयोग अब तक नहीं हुआ है। यह समस्या विस्तारण प्रक्रिया की ओर ले जाती है।' (श्रीवास्तव एवं कालरा, 1978) यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें भाषा "विश्व की उन परस्पर अनुवादनीय भाषाओं में अपना स्थान बना लेती है जो आधुनिक प्रोक्ति रूपों के उपयुक्त साधन के रूप में जानी जाती हैं। " इस प्रक्रिया के दो पक्ष माने गए हैं – (क) नूतन शब्दों एवं अभिव्यक्तियों से भाषाकोष का विस्तार और (ख) नई शैलियों तथा प्रोक्ति रूपों का विकास (फर्ग्यूसन, 1968 :32)। इस प्रकार भाषा का आधुनिकीकरण भाषा विकास का एक पक्ष है जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और औद्योगिक विकास के अन्य रूपों के साथ साथ चलता है।" (रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, हिंदी भाषा का समाजशास्त्र, पृ. 181).।

इस दृष्टि से अनुवाद प्रबंधन और राजभाषा प्रबंधन परस्पर नाभिनालबद्ध संकल्पनाएँ हैं। भारतीय भाषाओं का राजभाषा संदर्भ संविधान के विविध अनुच्छेदों द्वारा निर्देशित होता है। उसी के अनुरूप भाषा नियोजकों के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि कल तक 'अभिव्यक्तिपरक संस्कृति की भाषा' समझी जाने वाली हिंदी को कैसे आज 'प्रगतिपरक संस्कृति की भाषा' के रूप में ढालते हुए व्यापक कामकाज और ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनाया जाए। इसके लिए जरूरी था भाषा का आधुनिकीकरण जो अनुवाद के बिना संभव नहीं था। अतः अनुवाद प्रबंधन का एक बड़ा क्षेत्र भाषा नियोजन के अंतर्गत खुल गया।

प्रबंधन में सबसे पहले ढाँचे के निर्माण और विकास पर बल दिया जाता है। इसलिए ज्ञान-विज्ञान की नई शब्दावलियों के लिए हिंदी की अपनी शब्दावली निर्मित करना जरूरी महसूस हुआ। इसके लिए विभिन्न प्रारूप और शब्द सेट किए गए। आवश्यकतानुसार संस्कृत से और अंग्रेज़ी से ही नहीं लोक बोलियों से भी शब्द ग्रहण किए गए। संकर शब्द भी निर्मित किए गए। इस प्रक्रिया में दो काम हुए। एक तो यह कि बहुत से सामान्य शब्द विशिष्ट ज्ञान-विज्ञान और प्रशासनिक कामकाज के पारिभाषिक शब्द बन गए – संबंधित प्रयोग क्षेत्र में उनकी परिभाषा निर्धारित कर दी गई; सीमा निश्चित कर दी गई। दूसरा यह कि विभिन्न प्रकार के परस्पर संयोजनों से नए नए शब्द बन गए। ये नए शब्द एक ओर तो संकर शब्द हैं। दूसरी ओर ऐसे भी बहुत से नए शब्द हैं जो शाब्दिक अनुवाद से निर्मित हुए हैं (यथा - अधोहस्ताक्षरी, अवर सचिव, उप-महाप्रबंधक, प्रबंधक, सह-निदेशक)।

कोई भी प्रबंधन भविष्यमुखी होता है। अनुवाद प्रबंधन को भी भविष्यमुखी होना चाहिए। प्रबंधन के लिए यह तय करना कि किस दिशा में जाना है जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण है लक्ष्य तक पहुँचना। यह तो स्पष्ट ही है कि भाषा नियोजन का लक्ष्य भारतीय भाषाओं को राजभाषा बनाना और उन्हें इस प्रकार नियोजित करना है कि वे राजकाज से लेकर शिक्षा, न्याय, व्यवसाय तक सब जगह आज़ादी के पहले से ही जमी हुई अंग्रेज़ी का स्थान ले सकें।

ढाँचागत विकास का यह कार्य निरंतर चलता रहता है क्योंकि नई नई परिस्थितियों में नित नए शब्दों की जरूरत पड़ती है। इसलिए यह जरूरी है कि राजभाषा के क्रियान्वयन से जुड़े हुए लोग पारिभाषिक शब्दावली के नियोजन को भी समझें। ऐसा होने पर वे तत्कालीन आवश्यकता के लिए नए नए शब्द बनाने की कोशिश भी कर सकते हैं क्योंकि भाषा तो विकासशील है और नए ज्ञान क्षेत्रों के खुलने के साथ तेजी से नए शब्दों की जरूरत पड़ती है। सरकारी तंत्र को ये नए शब्द बनाने में समय लग सकता है। यदि राजभाषा प्रकोष्ठ प्रयास करें तो उससे पहले ही नए शब्द सुझा सकते हैं। मैच फिक्सिंग हो या किक बैक – नई परिस्थितियों में नए शब्द आए और हिंदी पर्याय के अभाव में अंग्रेज़ी शब्द ही चलते रहे। अनुवाद प्रबंधन का तकाज़ा है कि जब ऐसे शब्द आएँ तो तुरंत उनके हिंदी पर्याय प्रस्तुत किए जाएँ। अभिप्राय यह है कि पारिभाषिक शब्दावली नियोजन अनुवाद प्रबंधन का प्राथमिक और महत्वपूर्ण स्तर है।

कोई भी प्रबंधन भविष्यमुखी होता है। अनुवाद प्रबंधन को भी भविष्यमुखी होना चाहिए। प्रबंधन के लिए यह तय करना कि किस दिशा में जाना है जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण है लक्ष्य तक पहुँचना। यह तो स्पष्ट ही है कि भाषा नियोजन का लक्ष्य भारतीय भाषाओं को राजभाषा बनाना और उन्हें इस प्रकार नियोजित करना है कि वे राजकाज से लेकर शिक्षा, न्याय, व्यवसाय तक सब जगह आजादी के पहले से ही जमी हुई अंग्रेज़ी का स्थान ले सकें। इसके लिए राष्ट्रपति के आदेश और राजभाषा क्रियान्वयन की नीति (नियम/ अधिनियम) से दिशा प्राप्त की जा सकती है। खासतौर से नियम 3/3 जहाँ जहाँ द्विभाषिकता की माँग करता है वहाँ वहाँ मूल और अनूदित पाठ का निर्वाह आवश्यक है। इन्हीं तमाम कामों को अंजाम देने के लिए मंत्रालयों से लेकर अधीनस्थ कार्यालयों तक में अनुवाद प्रकोष्ठों का सृजन किया गया

है जिनका स्वरूप और कार्य तय है। आवश्यक है कि इनका प्रबंधन भी अन्य विभागों के सदृश हो। यह ठीक है कि इन प्रकोष्ठों में पद दे दिए गए और बहुभाषी कामकाज का लक्ष्य भी दे दिया गया, लेकिन इनके प्रबंधन का पक्ष अन्य विभागों जितना गतिशील और उपयोगी नहीं बन पाया. अतः इस दिशा में गंभीर प्रयासों की आवश्यकता है। वांछित गंभीरता के अभाव और 'चलता है' की मानसिकता के कारण स्थिति यह है कि खानापूर्ति के लिए अनुवाद हो तो रहा है लेकिन उसे पढ़ा नहीं जा रहा। अनूदित पाठ के पठनीय न हो पाने अथवा सहज संप्रेषणीय न होने से अंग्रेज़ी की अनिवार्यता बनी रहती है और अनुवाद प्रबंधन का लक्ष्य मात खा जाता है। यह बेहद जरूरी है कि जो भी अनुवाद किया जाए उसका पुनरीक्षण अवश्य हो, प्रक्रिया के आधार पर विधिवत त्रुटियों का विश्लेषण हो – यह देखा जाना जरूरी है कि अनूदित पाठ में सही शब्द/ वाक्य/ अभिव्यक्ति/ पारिभाषिक रखे गए हैं या नहीं। किसी भी पाठ को अंतिम स्वीकृति प्रदान करने से पहले उसकी सटीकता, स्वीकार्यता, बोधगम्यता और जीवंतता पर रचनात्मक बहस होनी चाहिए। मानक अनुवाद के लिए यह प्रबंधन जरूरी है – इसे दैनिक अभ्यास का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। इतना ही नहीं सरकार/ आयोग ने जो पारिभाषिक शब्दावली उपलब्ध कराई है उस पर भी विचार होते रहना चाहिए। यदि कोई शब्द जटिल है तो सब लोग तय करके उसे बदलें। तत्समता और एक शब्द के लिए एक ही शब्द गढ़ने के मोह की अपेक्षा संप्रेषणपरकता का ध्यान रखा जाए। यदि 'ऊपर लिखित'/ 'ऊपर लिखा गया' संप्रेषणीय प्रतीत हो रहा है तो 'उपरिलिखित' का ही आग्रह क्यों? यह भी कि अंग्रेज़ी से जो अब तक अनुवाद कर दिए गए हैं, यदि उनमें बोधगम्यता नहीं है, तो उन्हें भी बदलें।

समझने की जरूरत है कि प्रबंधन जड़ नहीं होता, वह एक सतत प्रक्रिया है। यदि पहले के लिए गए निर्णयों से कार्य में या आगे के निर्णयों में कठिनाई होती है तो कुशल प्रबंधन ऐसे निर्णयों को बदलने में नहीं हिचकिचाता। बेहतर हिंदी के निर्माण के लिए और बेहतर संप्रेषण के लिए यदि पहले के निर्णय/ शब्द/ पद/ अभिव्यक्तियाँ/ पाठ असुविधाजनक हैं तो सुविधा की खातिर उन्हें बदल दिया जाना चाहिए – लेकिन यह बदलाव मनमाने ढंग से नहीं, बल्कि नियमानुसार करना होगा। पारिभाषिक शब्दावली की स्वीकार्यता के संबंध में वास्तविक प्रयोक्ताओं से प्राप्त प्रतिपुष्टि के आधार पर ऐसे परिवर्तन करने से भाषा नियोजन के लक्ष्य को भी साधने में सुभीता होगी। दरअसल प्रबंधन या नियोजन का काम केवल भविष्य की योजना बनाना ही नहीं है, अड़चन आने पर बदलाव करना भी है। इसलिए यह रोना रोते रहने से कुछ नहीं होगा कि निर्मित शब्दावली ऐसी है या वैसी है, जरूरत इस बात की है कि आप अपने अनुभव और ज्ञान से इस ऐसी-वैसी शब्दावली के स्थान पर नए विकल्प सुझाएँ। ऐसा करके अनुवाद प्रबंधन के दायित्व को बेहतर ढंग से निभाया जा सकता है।

प्रबंधन का एक पक्ष जरूरी चीजों की उपलब्धता से जुड़ा है। यानि अनुवाद के लिए जरूरी चीजें अनुवाद प्रकोष्ठ में उपलब्ध हों। कई बार देखा जाता है कि राजभाषा विभागों में वार्षिक खरीद के अंतर्गत तमाम तरह की लोकप्रिय और साहित्यिक पुस्तकें खरीद ली जाती हैं जबकि होना यह चाहिए कि संबंधित विषय क्षेत्र से जुड़ी स्तरीय तकनीकी पुस्तकें और पत्रिकाएँ अनुवादकों को उपलब्ध कराई जानी चाहिए। विभिन्न प्रकार के प्रकाशनों के विवरण, सूचनाएँ, नक़्शे, फोटो आदि भी उपलब्ध कराए जानी चाहिए। भाषा संबंधी सहयोगी औजार विकसित किए

जाने चाहिए और राजभाषा प्रकोष्ठ में संदर्भ के लिए उपलब्ध होने चाहिए। दरअसल प्रबंधन के लिए अपनी प्राथमिकताओं को तय करना भी महत्वपूर्ण है। यह देखें कि कब हमें किस प्रकार की सामग्री को प्राथमिकता देकर अपने अनुवादकों को उपलब्ध कराना चाहिए। आज स्थिति यह है कि बहुत सारे संस्थानों/ विभागों में राजभाषा प्रकोष्ठ तो हैं पर वे अनुवाद के लिए उपयोगी सामग्री से सुसज्जित नहीं है। जरूरी है कि वहाँ हर प्रकार के कोश हों, अनुवाद पर मानक ग्रंथ हों, भाषा नियोजन संबंधी पत्र-पत्रिकाएँ हों, तकनीकी विषयों पर साहित्य हो और अन्य विभागों/ मंत्रालयों की सामग्री भी उपलब्ध हो। इस प्रकार अनुवाद प्रबंधन की सफलता का एक आधार यह भी है कि अनुवादक को 'आज' की जरूरत के अनुसार तुरंत सहायक सामग्री उपलब्ध हो – पुस्तक से लेकर अंतरजाल तक।

यह भी जरूरी है कि नियमित रूप से अनुवाद कार्यशालाओं का आयोजन किया जाए जिनमें औपचारिकता भर न निभाई जाए बल्कि अलग अलग प्रकार के पाठों के अनुवाद की प्रक्रिया बताई जाए और व्यावहारिक स्तर पर अनुवादक की पाठक/ रूपांतरकार/ लेखक भूमिका का अभ्यास कराया जाए। यह स्पष्ट किया जाना जरूरी है कि किसी पाठ का आरंभ से अंत तक पंक्ति-दर-पंक्ति शाब्दिक अनुवाद करना बेहद फूहड़ काम है। इसके स्थान पर अनुवादकों को मूल पाठ को तोड़कर अनुवाद करने की आदत डालनी चाहिए। पहले मूल पाठ को समझें, फिर टुकड़ों में बाँटें, तब लक्ष्य भाषा में अंतरित करें – और इतने से संतुष्ट न हों, उसे लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुसार पुनर्गठित करें।

प्रबंधन को प्रभावी और लाभदायक तभी माना जा सकता है जबकि वह उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार ला सके। माना कि कभी जल्दबाजी में किसी समय कमजोर या अमानक उत्पाद तैयार हो गया तो उसकी गुणवत्ता को सुधारा जाना चाहिए। जरूरी हो तो अमानक वस्तु को कूड़ेदान में भी फेंका जा सकता है। फेंक दें और नया बनाएँ जो मानक हो। बेहतर और नया उत्पाद बाजार में उतारने वाला प्रबंधन सदा सराहा जाता है। इक्कीसवीं सदी के भाषा उपभोक्ता को ध्यान में रखकर यदि कुछ पुरानी चीजें खारिज करनी पड़ें और नए सिरे से बनानी पड़ें तो इसमें भी अनुवाद प्रबंधन को हिचकना नहीं चाहिए। किसे खारिज करना है और क्यों, किसे मानक बनाना है और क्यों – ये बातें अनुवाद कार्यशालाओं में तय की जानी चाहिए।

जरूरी चीजों की उपलब्धता का एक और पक्ष यह है कि अनुवादक को संबंधित तकनीकी विषय का सामान्य ज्ञान भी कराया जाना चाहिए। इसके लिए उन्हें संबंधित ज्ञान क्षेत्र का सामान्य प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करनी होगी। दूसरी ओर यदि विषय विशेषज्ञों को भी शब्द निर्माण का मूलभूत प्रशिक्षण दिया जा सके तो और भी अच्छे परिणाम सामने आ सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि परमाणु ऊर्जा/ खनन/ पेट्रोलियम/ खेती से संबंधित पाठ का अनुवाद करना हो तो अनुवादक का भाषा ज्ञान मात्र पर्याप्त नहीं माना जा सकता – जरूरी है मूल विषय का भी ज्ञान होना। अधिक अच्छे परिणाम के लिए मूल विषय के ज्ञाता और भाषा के ज्ञाता द्वारा टीम के रूप में मिलकर अनुवाद का काम करना बेहतर विकल्प होगा।

प्रबंधन अब तक के काम का सतत मूल्यांकन भी करता चलता है। इसलिए यह देखा जाना बेहद जरूरी है कि किसी विभाग अथवा मंत्रालय में अब तक कितना और कैसा अनुवाद हुआ है। इसका योजनाबद्ध मूल्यांकन जरूरी है कि टिप्पणियों, पत्राचार, रिपोर्टों, पत्र-पत्रिकाओं, दस्तावेजों, तकनीकी शोध पत्रों तथा अन्य प्रकाशनों के स्तर पर

संबंधित विभाग अथवा मंत्रालय ने कितना अनुवाद किया है और उसका स्तर तथा गुणवत्ता कैसी है। अर्थात भाषा प्रयोग के प्रत्येक स्तर पर योजनाबद्ध अनुवाद मूल्यांकन आवश्यक है। इस कार्य में अनुवाद विशेषज्ञों, भाषा विशेषज्ञों और विषय विशेषज्ञों का सहयोग लेना होगा। ताकि अनुवाद की त्रुटिहीनता और संप्रेषणीयता असंदिग्ध हो सके। इसके लिए अनूदित पाठ को पर्याप्तता (Adequacy), समानता (Similarity), सादृश्यता (Analogy), निश्चरता (Invariance) और सर्वसमता/ अन्विति (Congruence) जैसी अपेक्षाओं की कसौटी पर कसकर देखा जाना जरूरी होगा। स्मरण रहे कि अनुवाद कार्य को सरसरी ढंग से लेना या जल्दीबाजी में बाहर से करा लेना अनुवाद प्रबंधन की दृष्टि से अपराध है और दुर्भाग्य की बात यह है कि अनेक विभागों में ऐसा हो रहा है। इससे एक गैरज़िम्मेदारी की भावना पैदा होती है और ऐसे भ्रष्ट अनुवादों का ढेर लगता जाता है जो केवल संसदीय समितियों की आँख में धूल झोंकने के लिए कराए जाते हैं। इसके लिए संबंधित विभाग और प्रकोष्ठ को जिम्मेदार बनाया जाना चाहिए।

अनुवाद प्रबंधन में ध्यान रखने लायक आख़िरी बात यह हो सकती है कि अनुवाद कार्य से जुड़े हुए व्यक्तियों से यह अपेक्षा की जाती है कि उन्हें अनुवाद संबंधी 'सब कुछ' की जानकारी होना ज़रूरी है। अर्थात विविध संकल्पनाएँ और परिभाषाएँ, पाठ में निहित अर्थ के विविध स्तर, भाषा प्रकार्य के अनुरूप शैली के विविध स्तर, लक्ष्य पाठक (आम जनता/ पत्राचार/ विषय विशेषज्ञ) के अनुरूप भाषा वैविध्य, स्रोत भाषा और उसके भाषासमाज तथा लक्ष्य भाषा और उसके भाषासमाज की प्रकृति आदि की जितनी व्यापक जानकारी अनुवादक को होगी, अनुवाद में उतनी ही प्रामाणिकता की संभावना होगी। अतः अनुवाद प्रबंधन के लिए अनुवादकों की जानकारी को विस्तृत और अद्यतन बनाए रखने के प्रयास निरंतर करते रहना आवश्यक है। वस्तुतः प्रबंधन का सबसे बड़ा काम अपने कार्य को विस्तार देने का है। अतः इन सब पक्षों का ध्यान रखते हुए भाषा नियोजन के लक्ष्य के अनुरूप अनुवाद प्रबंधन व्यावहारिक स्तर पर राजभाषा हिंदी के प्रयोग के कार्य को विस्तार प्रदान कर सकता है।

अनुवाद की चुनौतियाँ

डॉ.ई. विजय लक्ष्मी

सामान्य रूप से किसी एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करने के लिए जिस माध्यम का उपयोग किया जाता है, उसे अनुवाद कहते हैं। इसके अंतर्गत यह कोशिश की जाती है कि मूल सामग्री अधिक से अधिक अपने मौलिक रूप के साथ एक भाषा से दूसरी भाषा में चली जाए। जिस भाषा से सामग्री ली जाती है, उसे स्रोत भाषा कहते हैं और जिस भाषा में उसे ले जाया जाता है, उसे लक्ष्य भाषा कहा जाता है। अर्थात अनुवाद स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में सामग्री पहुँचाने का काम करता है। अनुवाद की प्रक्रिया सम्पन्न करने के लिए स्रोत भाषा, लक्ष्य भाषा, सामग्री और अनुवादक इन मूल चार तत्वों का होना अनिवार्य है। अनुवादक ही अनुवाद की प्रणाली या पद्धति तय करने का काम करता है। इसके लिए उसे अनुवाद की तकनीक का गहरा ज्ञान उपलब्ध करना होता है तथा स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा की गहरी समझ उपलब्ध करनी होती है।

विश्व भर के विभिन्न देशों में अधिकांशतः अलग-अलग भाषाएँ बोली जाती है। भिन्न भाषा-भाषी वाले एक देश के विचार या साहित्य दूसरे भिन्न भाषा-भाषी देश के पास पहुँच रहे हैं। ज्ञान-विज्ञान संबंधी नए विचार, नए अनुसंधान, व्यापार, पर्यटन संबंधी विकास को एक दूसरे देश तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण जिम्मा अनुवाद उठा रहा है। विश्व की भाषाओं के मध्य सम्पर्क का एक माध्यम भाषा-विज्ञान और समाज भाषा-विज्ञान है तो दूसरा माध्यम अनुवाद है। अनुवाद के माध्यम से ही दुनिया भर की भाषाओं की रचनात्मकता को भी एक जगह इकट्ठी करने का काम भी संभव हो जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि अनुवाद मुख्य रूप से एक सामाजिक-सांस्कृतिक अभियान होता है। "विश्व फलक पर तेजी से आविर्भूत ज्ञान- विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी से संबद्ध सभी विषयों और क्षेत्रों की जानकारी देने, देश- विदेश की संस्कृति, राजनीति कूटनीति, कूट नीति,व्यवसायिक नीति की समुचित अभिव्यक्ति देने में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। " (हिंदी अनुवाद समस्या और समाधान- डॉ. जितेन्द्र वत्स, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली-2005, पृ-69)

अनुवाद मुख्य रूप से एक सामाजिक- सांस्कृतिक अभियान होता है। कोई भी समाज जब अपनी भाषा का निर्माण करता है तो लिपि से लेकर शब्द समूह और वाक्य गठन तक में सामाजिक और सांस्कृतिक अनुभव भरता है। हम जानते है कि समाज केवल कुछ लोगों के समूह का नाम नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक संबंधों के स्वरूप से निर्मित होता है। इसी प्रकार हर समाज की अपनी एक सांस्कृतिक पहचान तथा उसके विकास की परम्परा होती है। इन दोनों आधारों पर ही अर्थात समाज, संस्कृति और इतिहास के प्रभाव में ही साहित्य की रचना की जाती है।

किसी समाज के साहित्य को जब किसी दूसरे समाज की भाषा में ले जाया जाता है तो वह केवल कुछ शब्दों और ध्वनियों का शब्दकोशीय अर्थ नहीं होता, बल्कि मूल समाज की सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक विशिष्टता को ले जाना होता है। यह कार्य जब सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है तो दो अपरिचित अथवा अल्प परिचित समाज परस्पर निकट आते हैं और सम्पूर्ण मानव संस्कृति के विकास के अभियान को गति प्राप्त होती है। "अनुवाद की कोटि, समप्रेषणीयता तथा अन्य बातें अनुवादक की अपनी ज्ञान सीमा व वस्तुस्थिति की पकड़ पर निर्भर करती है। निसंदेह ही अनुवाद एक देश, प्रदेश अथवा साहित्य से दूसरे देश, प्रदेश, साहित्य व संस्कृति के बीच सेतु का कार्य करता है।" (अनुवाद और अनुप्रयोग, डॉ.दिनेश चमोला, शैलेश, आदर्श प्रकाशन-2006,पृ-42)

विश्व साहित्य की जो परिकल्पना की जाती है, उसमें एक ओर तो तुलनात्मक साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है तो दूसरी ओर अनुवाद। वर्तमान में तुलनात्मक साहित्य और तुलनात्मक अध्ययन बहुत अधिक प्रभावशाली हो गए हैं। तुलनात्मक अध्ययन बिना अनुवाद की सहायता के संभव नहीं है। मानव ज्ञान के अध्ययन में समाज-सांस्कृतिक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका है। विशेषकर आज की दुनिया में विश्व के समाजों को समझने के लिए उनकी भाषा और साहित्य में समान प्रवृत्तियों की जानकारी आवश्यक है और उन आधारों को खोजना जरूरी है, जो दुनिया के एक कोने के आदमी को दूसरे कोने के आदमी से जोड़ता है। इसके लिए अंतर अनुशासनिक अध्ययन (interdisciplinary study system) का विकास हुआ है। किसी भी अंतर अनुशासनिक अध्ययन के लिए अनुवाद की आवश्यकता पड़ती है। अनुवाद के बिना भिन्न- भिन्न भाषाओं के साहित्य को इकट्ठा ही नहीं किया जा सकता। इस तरह अनुवाद भाषाओं के बीच ही बात-चीत शुरू नहीं करवाता बल्कि मनुष्यों के बीच भी बौद्धिक संवाद के दरवाज़े खोलता है। यह एक प्रकार से विश्व भर के लोगों के लिए आपसी संवाद का लाभदायक माध्यम है।

विज्ञान और तकनीकी विकास ने आज विश्व भर के तमाम देशों के बीच दूरियाँ खत्म कर दी हैं। अनुवाद की उपयोगिता को हमें भूमंडलीकरण के संदर्भ में भी देखना चाहिए। उत्तर आधुनिक युग में विश्व ग्राम की जो कल्पना की गई है, उसकी पूर्ति में भी अनुवाद ही सबसे बड़ा सहायक है। भूमण्डलीकरण के युग में पूरी विश्व व्यवस्था बाजार व्यवस्था में बदल गई है। जो देश पहले अपने दरवाजे बंद रखते थे, उन्होंने भी उन्हें खोल दिए हैं। बड़े-बड़े देशों की आर्थिक संस्थाएँ दूसरे देशों में फैल गए हैं। इससे एक ओर मानव श्रम बहुत अधिक गतिशील हो गए हैं, दूसरी ओर सूचनाओं और जानकारियों के विश्व स्तर पर आदान-प्रदान की आवश्यकता बढ़ गई है। यही कारण है कि कम्प्यूटर पर प्रयोग होने वाली भाषाओं की संख्या बढ़ती जा रही है और दूर क्यों जाएँ, भारत की संसद में भी विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्ति की सुविधा बढ़ रही है।इन सब में अनुवाद की ही भूमिका है।

भूमण्डलीकरण विज्ञापन के माध्यम से आदमी की आवश्यक्ताएँ भी तय कर रही है और उनकी पूर्ति का साधन भी बता रहा है। बाजारवाद बहुत कुछ अनुवाद के सहारे चल रहा है और भूमण्डलीकृत समाज को भी अनुवाद की भरपूर आवश्यक्ता है। इसी प्रकार उपनिवेशवाद का नया संस्करण उत्तर उपनिवेशवाद सामने आ रहा है। यह उत्तर उपनिवेशवाद आर्थिक और बाजारवादी रास्तों से गुलामी के नए रूप सामने ला रहा है। इधर विश्व की भाषाओं में अनूदित रूप में जो सामग्री आ रही है, वह उत्तर उपनिवेशवाद के रहस्यों को खोलती है। आज दुनिया

को समझने के लिए राजनैतिक संरचना और आर्थिक संरचना के नए गठजोड़ को समझना जरूरी है। आदमी को पूँजीवाद के नव उपनिवेशवाद ने दबा दिया है। उत्तर उपनिवेशवाद अब लोगों की समझ में आने लगा है। उत्तर उपनिवेशवाद के क्रूर रूप को समझने के लिए हमें एक ही साथ दुनिया के महाद्वीपों के साहित्य की जानकारी चाहिए। अगर हम अपने आस-पास के उत्तर उपनिवेशवाद को जानना चाहते हैं तो हमें भारत, म्यामाँ, चीन, ईरान, आफ़गानिस्तान, कोरिया, जापान आदि देशों में जो कुछ लिखा जा रहा है, खासकर आदमी की आजादी के पक्ष में लिखा जा रहा है, उसे जानना आवश्यक है और इसमें अनुवाद ही सहायता कर सकता है। यदि हमें उत्तर उपनिवेशवादी प्रवृत्ति के विरोध में खड़ा होना है, तो अनुवाद एवं उसके महत्व को समझना होगा।

> किसी समाज के साहित्य को जब किसी दूसरे समाज की भाषा में ले जाया जाता है तो वह केवल कुछ शब्दों और ध्वनियों का शब्दकोशीय अर्थ नहीं होता, बल्कि मूल समाज की सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक विशिष्टता को ले जाना होता है। यह कार्य जब सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है तो दो अपरिचित अथवा अल्प परिचित समाज परस्पर निकट आते हैं और सम्पूर्ण मानव संस्कृति के विकास के अभियान को गति प्राप्त होती है। "

विश्व के वर्तमान परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए यह समझना होगा कि अनुवाद के समक्ष कौन-कौन सी गंभीर चुनौतियाँ हैं? सबसे पहली चुनौती पद्धती विषयक है। वस्तुतःइसे परम्परागत चुनौती कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत अनुवादक को तय करना होता है कि वह कौन सी प्रणाली को चुने। किसी एक को, एक से अधिक को या फिर सारी प्रणालियों को मिलाकर अपना रास्ता तय करें। जैसे अनुवादक स्रोत भाषा की सामग्री के अनुसार उपयुक्त माध्यम या प्रणाली- शाब्दिक अनुवाद,शब्द प्रति शब्द अनुवाद, भावानुवाद या फिर छायानुवाद आदि प्रणालियों में से एक को अपनाता है या एक से अधिक प्रणालियों को या फिर मिश्रित प्रणालियों का चयन करता है और स्रोत भाषा सामग्री को लक्ष्य भाषा तक पहुँचाता है।

प्रणाली के चयन की चुनौती का सामना करने के साथ-साथ अनुवादक को कई अन्य खतरे भी उठाने पड़ते हैं, जिसमें एक है भाषिक संरचना विषयक खतरा। एक ही भाषा परिवार की दो भाषाएँ व्याकरण एवं भाषिक संरचना की दृष्टि से एक दूसरे से अंतर लिए हुए हो सकती हैं। यदि दो भाषाएँ दो अलग-अलग भाषा परिवार की होंगी तो उनमें अंतर होने स्वाभाविक है। ऐसे में अनुवाद कार्य में अनेक चुनौतियाँ आती हैं। ये चुनौतियाँ स्थानीय शब्दों, मुहावरों, कहावतों और सामाजिक संस्कृति और धार्मिक शब्दावली के कारण और भी बढ़ जाती है। भाषाओं में सांस्कृतिक और भाषागत दूरी जितनी अधिक होगी, अनुवादगत चुनौतियों की मात्रा भी बढ़ेगी। कई बार ऐसी स्थिति भी आती है जब स्रोत भाषा की कुछ अभिव्यक्तियों का अनुवाद नहीं हो पाता। डॉ. सुरेश कुमार ने अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा में भाषा-पक्ष की कुछ सीमाओं का उल्लेख किया है, जैसे-

1. शिष्ट अभिव्यक्तियों संबंधी सीमा - जैसे-"Is life worth living? It depends on the liver." इसमें liver के दो अर्थ हैं - शरीर का विशेष अंग और रहने वाला व्यक्ति। इस श्लेष को हिंदी में अनुवाद पर्याय द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता।

2. निरूपक भाषा के अंश संबंधी सीमा- जैसे- हिंदी के कुछ शब्द ऐसे हैं जो व्याकरणिक लिंग की दृष्टि से सदा स्त्री लिंग होते हैं। उदाहरण के लिए- मछली, चिड़िया।

3. संदर्भ प्रबोधक नाम संबंधी - कुछ व्यक्तिवाचक नाम भाषाओं में ऐसे होते हैं, जो उस भाषा के सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक संदर्भ का प्रबोध कराते हैं। उनका अनुवाद नहीं हो पाता। जैसे हिंदी में विभीषण, जयचन्द ऐसे ही नाम हैं।

4. सामाजिक भाषा शैलियाँ- इनका भी अनुवाद नहीं हो पाता। हिंदी की साहित्यिक रचनाओं में शिक्षित हिंदू पात्रों के मुख से संस्कृतनिष्ठ भाषा-शैली का प्रयोग करवाने की रूढ़ि रही है।

अनुवादक के सामने मूल भाषा के शब्दों के अनुकूल उपयुक्त, सटीक और समानार्थक शब्द या अभिव्यक्तियाँ लक्ष्य भाषा में खोजते समय एक बड़ी चुनौती यह रहती है कि वह उन शब्दों के पात्रगत, कथागत और संदर्भगत अर्थ को समझता है या नहीं। प्रायः लेखक अपनी रचना में पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को दिखाने के लिए अपनी भाषा के कुछ विशेष शब्द चुनता है। यदि अनुवादक इसे नहीं समझता तो वह उस शब्द के विकल्प के रूप में लक्ष्य भाषा में जो शब्द चुनेगा उसके साथ न्याय नहीं कर पाएगा। शब्दो के इस समाजशास्त्रीय और संस्कृति संबंधी वैशिष्ट्य को समझना और उसे अच्छी तरह ग्रहण करना अनुवादक की चुनौती है। बाद में यह अनुवाद की चुनौती बन जाती है।

अनुवादक को प्रतिपाद्य संबंधी चुनौती का भी सामना करना होता है, जो सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की भिन्नता से भी बड़ी बनती है। इस चुनौती को दो भिन्न माध्यमों में देखा जा सकता है, जिसमें पहला है - भाषा संबंधी। अनुवादक के सामने एक सत्य यह है कि वर्तमान जीवन जटिलताओं से भरा है और यहीं से साहित्यकार-लेखक अथवा कवि खाद-पानी ग्रहण करता है। साहित्य की रचना करते समय रचनाकार द्वारा प्रयुक्त शब्द या तो किसी निश्चित चरित्र अथवा पात्र, परिस्थिति या कथा के बारे में आता है। कविता है तो शब्द विषय-वस्तु के लिए तथा आलोचना या निबंध है तो विचार और विश्लेषण। इन सब संदर्भों को ध्यान में रखते हुए शब्द की वास्तविक भूमिका क्या है, इसे समझना अनुवादक के लिए अनिवार्य है, तभी दूसरी भाषा में उन सारी चीजों को प्रकट करने वाले शब्द खोजेगा। इसमें शब्दकोश ही सहायता नहीं करता, बल्कि अनुवादक का उस भाषा के साहित्य संबंधी पूरा ज्ञान उसकी सहायता करता है। अनुवादक का भाषा ज्ञान कितना है और साहित्यिक ज्ञान कितना है, इसका प्रभाव तो अनुवाद में पड़ता ही है, इससे भी बड़ी बात है अनुवादक की साहित्यिक दष्टि क्या है ? उसी के आधार पर ही अनुवादक अनुवाद के लिए प्रस्तुत पाठ को देखेगा और सामग्री के साथ बर्ताव करेगा। अनुवादक का treatment with subject material कैसा है। यह भी एक बड़ी चुनौती है।

दूसरा माध्यम है सामग्री चयन – वर्तमान उत्तर आधुनिक परिवेश बहुलतावादी है इसलिए जीवन का विस्तार भी बहुत अधिक हो गया है। जटिलताओं से आदमी का संघर्ष पिछली सभी पीढ़ियों से अधिक है। यह बी सत्य है कि विज्ञान, मशीनीकरण, सूचना तकनीक इन सबका हस्तक्षेप बढ़ गया है, इसलिए सामग्री के चुनाव की चुनौती सामने आती है। रचनात्मक अभिव्यक्ति होने के नाते अनुवादक के सामने यह चुनौती है कि वह इस बहुलता को समझता है कि नहीं। अनुवाद को अब एक रचनात्मक कार्य माना जाने लगा है। इस नई मान्यता ने भी नई चुनौतियाँ ने भी नई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं।

विषय-वस्तु के चयन संबंधी चुनौती इन्हीं में से एक है। विशेष रूप से वर्तमान युग में अनुवाद के लिए सामग्री का चयन इस बात को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए कि आज का जीवन असंख्य संदर्भों से प्रभावित है और वह निरंतर जटिल होता जा रहा है। यदि अनुवादक अनुवाद को गंभीर कार्य नहीं समझता तो वह बिना किसी उद्देश्य के अनुवाद के लिए सामग्री चुन लेगा। ऐसा करना अनुवाद के आदर्श के लिए घातक होगा।

अनुवादक के सामने यह चुनौती रहती है कि वह पहले यह तय करें कि अनुवाद किसके लिए और किस लिए किया जा रहा है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि अनुवादक को अपने से और अपने समाज से बाहर निकलकर सोचने की चुनौती है। उसके सामने यह चुनौती है कि वह अनुवाद के लिए कौन सी सामग्री का चयन करता है। उसके सामने यह चुनौती भी है कि वह अनुवाद करते समय मूल के साथ न्याय करता है अथवा नहीं। यहीं अनुवादक की योग्यता संबंधी चुनौती भी उठ खड़ी होती है।

अनुवाद में एक ओर अनुवादक होता है दूसरी ओर पाठक और प्रयोक्ता। अनुवाद और अनुवादक की चुनौती यह है कि वह पाठक और प्रयोक्ता के महत्व को स्वीकार करता है या नहीं। यदि कोई अनुवादक इस प्रकार का अनुवाद कर रहा है जो पाठक के अधिक काम का नहीं है अथवा जो गिने-चुने पाठकों के काम का है तो उसका अनुवाद अधिक उपयोगी नहीं हो सकते। जो अनुवाद किया जाता है वह पाठक की समझ में भी आना चाहिए और उसकी समझ और ज्ञान को बढ़ाने वाला भी होना चाहिए। अनुवाद के प्रयोक्ताओं का संबंध मुख्य रूप से विशिष्ट और पारिभाषिक शब्दावली से है। अगर हम भारत का उदाहरण ले तो भारत सरकार ने विज्ञान और तकनीकी शब्दावली आयोग बनाया है। इसी तरह व्यापार और अन्य क्षेत्रों के लिए भी विभिन्न माध्यमों से शब्दावली तैयार की गई है। इस प्रकार की शब्दावली की संख्या लाखों में है, लेकिन इस शब्दाबली का प्रयोग करने वालों की संख्या अत्यधिक कम है। देखा तो यह जा रहा है कि सरकारी कोशिशों से निर्मित शब्दावली सरकारी विभागों के कागजों, फाइलों एवं किताबों तक सीमित है। सामान्य पढ़े-लिखे लोगों में उसका प्रचार ही नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश पारिभाषिक शब्दावली कृत्रिम है और इतनी कठिन है कि आम आदमी की समझ में नहीं आती।

इस तरह अनुवादक के सामने यह चुनौती होती है कि वह अपने अनुवाद में ऐसी शब्दावली को कहाँ तक रखें। यहीं अनुवादक की योग्यता संबंधी चुनौती भी उठ थड़ी होती है। अनुवाद को लक्ष्य भाषा एवं स्रोत भाषा की गहरी समझ होना जरूरी है तथा उसे यह बताना आवश्यक है कि अनुवाद एक ऐसी जिम्मेदारी है, जिसे तकनीकी रूप से कुशल होने के साथ-साथ रचनात्मक प्रतिभा के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। यह अपने आप में चुनौती भरा काम है। जो अनुवादक इस चुनौती को गंभीरता से नहीं लेते वे स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा भाषा दोनों का ही अहित करते हैं।

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी का विकास

विद्या चंदनखेड़े

हिंदी का जन्म बड़ी ही विचित्र परिस्थितियों में हुआ। छठी शताब्दी में तत्कालीन लौकिक संस्कृत को पाणिनि ने व्याकरण के नियमों में जकड़ दिया। फलस्वरूप उस समय की प्रचलित जन-भाषा अपने नये रूप में विकसित होती चली गई, जिनकी तीन अवस्थाएँ हुई। पहली अवस्था में वह जन-भाषा के रूप में जन्म से लेकर पनपती है। दूसरी अवस्था में वह जन-भाषा विकसित होकर साहित्यिक भाषा के रूप अवस्थित होती। तीसरी अवस्था में वह जन-भाषा परिपक्व होकर अवसान की ओर अग्रसर होती है। अवसान एक ऐसी अवस्था है, जिसके बाद बोलियाँ अर्थात जन भाषाएँ उस समय पनप रही होती हैं, वे धीरे-धीरे उस भाषा का स्थान ले लेती हैं, जो अपने अवसान की ओर अग्रसर हो रही होती हैं।

हिंदी के जन्म के बाद ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होने लगा, हिंदी के विकास का क्रम भी आगे बढ़ता चला गया।

जब भारत को 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता मिली तो हिंदी के विकास में वृद्धि होने की आशा को बल मिला। जब 26 जनवरी सन 1950 को भारतीय सविंधान लागू हुआ तो राष्ट्रगान, राष्ट्रगीत, राष्ट्रीय ध्वज, राजभाषा, राष्ट्रीय पक्षी इत्यादि भी निर्धारित किए गए। जहाँ तक राज-भाषा का प्रश्न था तो 14 सितंबर, 1945 को 'अंग्रेज़ी' के स्थान पर 'हिंदी' को 'राज-भाषा' बनाने के लिए 'सविंधान सभा' में निर्णय किया गया। जिसके अनुपालन में 26 जनवरी, 1945 ई. को सविंधान के अनुच्छेद 343 के अंतर्गत संघ की 'राजभाषा' 'हिंदी' और लिपि 'देवनागरी' घोषित की गई। इसके साथ-साथ यह भी आश्वसन दिया गया की 26 जनवरी, 1965 से अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग कार्यकारी क्षेत्र में समाप्त हो जाएगा।

उक्त निर्णय के अनुसार भारत सरकार ने केंद्र सरकार के कार्यालयों, केंद्र नियंत्रित प्रतिष्ठानों, सरकारी क्षेत्र के बैंकों आदि विभिन्न संस्थानों तथा अन्य राष्ट्रीय निगमों और कंपनियों में जन संपर्क बिंदुओं तथा आतंरिक काम-काज में अंग्रेज़ी के साथ-साथ हिंदी क प्रयोग अनिवार्य कर दिया। हिंदी अधिक से अधिक उपयोग के लिए सभी संस्थानों ने अलग से 'हिंदी प्रकोष्ठ' का गठन कर हिंदी के प्रयोग हेतु प्रोत्साहित किया।

लेकिन दुर्भाग्यवश राजनीति ने अपना रंग दिखाया और हिंदी के खिलाफ़ अहिंदी भाषी राज्यों में आंदोलन हुए है तो इसके प्रभाव के कारण 'राज-भाषा' हिंदी के संबंध में सुधार हेतु 'राजभाषा संशोधन विधेयक – 1967' पारित किया गया। इस विधेयक से हिंदी की उड़ान और विकास की गति को अवरुद्ध करने हेतु हिंदी के पंख काटने का ही प्रयास किया गया।

जैसे-जैसे भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था मज़बूत होती गई, राजनीति में भी परिवर्तन हुआ। अब राजनैतिक निर्णयों में सामान्य-जन का भी दखल बढ़ता गया। जिसके फलस्वरूप अंग्रेज़ी के खिलाफ एक जन-विद्रोह घुमड़ने

लगा। उत्तर भारत में अंग्रेज़ी के जिहादी आंदोलन हुआ। उधर दक्षिण भारत में भी हिंदी के खिलाफ़ उग्र आंदोलन हुए। इस कारण केंद्र सरकार को यह वादा करना पड़ा कि गैर-हिंदी राज्यों पर हिंदी उनकी इच्छा के विरुद्ध थोपी नहीं जायेगी। इस वादे के कारण सरकार द्वारा 'त्रिभाषा फार्मूला' लाया गया। इसमें हिंदी ,अंग्रेज़ी और राज्य की अपनी भाषा का प्रयोग सरकारी काम-काज में होने लगा।

जब स्वतंत्र भारत का संविधान बना और 26 जनवरी सन 1950 से लागू किया गया, तब संविधान में हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' के साथ ही 'राज-भाषा' का मुकुट पहनाया गया।

सन 1963 में छ: बड़े राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों में भी हिंदी के विकास को दुर्गति प्रदान करने के लिए 'राजभाषा अधिनियम -1963' पारित किया गया। साथ ही यह भी आश्वासन दिया गया कि जब तक सभी राज्य स्वीकार नहीं कर जाते, तब तक हिंदी और अंग्रेज़ी में साथ-साथ कम होता रहेगा। इस तरह इस अधिनियम के द्वारा देश में अंग्रेज़ी की अनिवार्यता के साथ द्विभाषी भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग अवरूध्द हो गया। यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि संसद ने हिंदी के विकास के लिए ही सन 1967 में राजभाषा अधिनियम -1976 बनाया गया। जिससे संविधान के 351 वें अनुच्छेद के अनुसार 'संपर्क भाषा' के रूप में विकसित होकर हिंदी 'राष्ट्रभाषा' के रूप में सार्वदेशिक स्वरुप में स्थापित हो जाय। क्योंकि, यह सरकार की ही नहीं , स्वतंत्र भारत के हर नागरिक की इच्छा थी कि लोकतंत्र की सफलता, राष्ट्र की उन्नति देश की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अखंडता के लिए सर्वमान्य भाषा हिंदी के अलावा और कोई अन्य भाषा नहीं हो सकती।

विदेशों में हिंदी बोलने वालों-समझने वालों की संख्या अनुमानत: 69 करोड़ आंकी गई। भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर जहाँ पर प्रवासी भारतीय रहते हैं, उनमें फिजी, मोरिशस, गुयाना, ब्रिटेन, केन्या, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, यूगांडा, सूरीनाम, त्रिनिदाद एवं टोबैगो आदि देश हैं, जहाँ हिंदी बोलते हैं। हालांकि उनकी हिंदी क्षेत्रीय प्रभाव के कारण भारत में बोली जाने वाली हिंदी से थोड़ी भिन्न है।

भूमंडलीकरण के कारण अब भारत दुनिया का एक अहम बाज़ार है। इसीलिए यहाँ बहुसंख्यक द्वारा बोली जाने वाली हिंदी की अहमियत बढ़ गई है। यहाँ तक कि दुनिया के प्रमुख विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई हो रही है। ब्रिटेन के कई स्कूलों में भी हिंदी की पढ़ाई हो रही है। यही नहीं ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग ने अपने अंग्रेज़ी शब्दकोश में हिंदी के प्रचलित शब्दों को विशेष स्थान दिया है।

विदेशों में हिंदी के विकास में जर्मनी के म्यूनिख विश्वविद्यालय में हिंदी और संस्कृत मैक्समूलर के ज़माने से (1823-1900 ई) पढ़ाई जा रही है। ब्रिटेन के ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हिंदी और संस्कृत अध्यापन का कार्य मैक्समूलर ने ही शुरू किया। कैम्ब्रिज, पैरिस, बर्लिन, बुखारेस्ट, मास्को, कैलिफोर्निया, हावर्ड आदि नामी विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाई जाती है।

विदेशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने के लिए अब तक नौव 'विश्व हिंदी सम्मलेन' आयोजित किये जा चुके हैं। पहला विश्व हिंदी सम्मलेन 1975 में नागपुर में हुआ। तब से यह सिलसिला बढ़ते हुए पोर्टलुई (मोरिशस में दो बार) नई दिल्ली, पोर्टऑफ़ स्पेन (त्रिनिडाड एण्ड टोबैको), लंदन, पारामारिबो (सूरीनाम), न्यूयार्क, दक्षिण आफ्रिका के

जोहान्सबर्ग में होते हुए दसवा विश्व हिंदी सम्मलेन वर्ष 2015 भोपाल में पहुँचा॥

भुमंडलीकरण के कारण यह तो हुई हिंदी के विदेशों में हो रहे अध्ययन अध्यापन एवं सम्मेलनों की कहानी। लेकिन खेद है कि भारत सरकार 'हिंदी' को सयुंक्त राष्ट्र संघ में स्थापित करने में अद्यतन सफल नहीं हो पाई है। एक दो अवसरों को छोड़कर जब भारत सरकार के प्रतिनिधि के तौर पर संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मलेन में हिंदी में भाषण देकर हिंदी का मस्तक ऊँचा किया। वहीं अन्य शीर्ष प्रतिनिधियों ने अंग्रेज़ी में भाषण देकर अपमान हि किया है।

विश्व भाषा हिंदी के संबंध में यह एक विचित्र तथ्य है कि उसने अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में जितनी प्रगति की है उतनी वह राष्ट्रीय स्तर पर नहीं कर पाई। इसका ज्वलंत प्रमाण यही है कि हिंदी विश्व भाषा तो सरलता से बन गई किंतु देश की राष्ट्रभाषा का वास्तविक दर्जा नहीं पा सकी लेकिन हिंदी को विश्वभाषा बनाने में निम्नलिखित कारणों की महत्वपूर्ण भूमिका रही –

1. विश्व में हिंदी बोलनेवालों की संख्या – विश्व के 132 देशों में रहनेवालें सवा करोड़ भारतीय हिंदी बोलते हैं। डॉ.जयंतीलाल नौटियाल के अनुसार विश्व में हिंदी बोलनेवालों की संख्या एक अरब से अधिक है अंत :विश्व में हिंदी प्रथम स्थान पर है। जबकि प्रो.महावीर शरण जैन, जो केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक के अनुसार हिंदी दूसरे स्थान पर है। विश्व में हिंदी का स्थान तो सभी को मान्य है। इससे विश्व में हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति का ज्ञान होता है।

2. विदेशी विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण – विश्व के 145 विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। इससे विश्व में लोकप्रियता बड़ी है। जापान के 850 महाविद्यालयों, अमरीका के 75 विश्वविद्यालयों, इटली के 5 विश्वविद्यालय इंगलैंड के केम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, यार्क एवं लंदन विश्वविद्यालयों, रूस के मानविकी एवं मास्को विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है।

3. हिंदी पत्र –पत्रिकाओं का प्रकाशन – देश विदेश में प्रकाशित होनेवाले पत्र -पत्रिकाओं भारत से विदेशों में और विदेशों सं भारत आती हैं। इनके माध्यम से हिंदी भाषा और साहित्य का अच्छा खासा प्रचार विदेशों में हुआ। हमारी राष्ट्रभाषा प्रचार समितियां भी हिंदी में श्रेष्ठ पत्रिकाएँ प्रकाशित कर रही हैं।

4. भारतीय हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन – भारतीय हिंदी फिल्मों के प्रदर्शन ने भारत में ही नहीं। विदेशों में हिंदी का अच्छा प्रचार किया। इनके मधुर गीतों ने तो लोगों को इन्हें झूमकर गाने के लिए मजबूर कर दिया है।

5. इंटरनेट पर हिंदी का वर्चस्व – आज हिंदी इंटरनेट पर अपना वर्चस्व बढ़ाती जा रही है है। अंग्रेज़ी के बाद आज जिस भाषा का इंटरनेट पर वर्चस्व है, वह हिंदी ही है। गूगल के मुख्य अधिकारी एरिक स्मिथ के अनुसार भविष्य में अंतरजाल-इंटरनेट की प्रमुख भाषा अंग्रेज़ी के साथ चीनी और हिंदी होगी।

6. विज्ञापनों में हिंदी क महत्व – भूमंडलीकरण और बाजारवाद के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियों को सारी दुनियाँ में अपने उत्पाद बेचने की छूट मिल गई है। इसी कारण वे विश्व के सबसे बड़े बाजार भारत के लोग उनके विज्ञापनों को भलीभांति समझ सकें इसलिए ये विज्ञापन हिंदी में जारी किये जा रहे हैं। इस कारण भारत में विज्ञापनों पर हिंदी का प्रभुत्व है।

7. विश्व के टीवी चैनलों से हिंदी के कार्यक्रमों का प्रसारण – भारत के आकाशवाणी और दूरदर्शन के अतिरिक्त विश्व के अनेक देशों के टीवी चैनलों से हिंदी के कार्यक्रमों का प्रसारणों ने भी हिंदी को विश्वभाषा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

8. संचार माध्यम- आज संचार माध्यमों की क्रांति मची है। इस संदर्भ में डॉ.मनोज पटैरिया का विचार उल्लेखनीय है कि 'मुद्रण प्रौद्योगिकी, कंप्यूटरलेजर प्रौद्योगिकी, सूचना संचार प्रौद्योगिकी तथा वेब प्रौद्योगिकी ने पत्रकारिता की गुणवत्ता, प्रस्तुतीकरण, रोचकता तथा सहूलियत लेन के क्षेत्र में महाक्रांति की है। जिसने विज्ञान पत्रकारिता को भी प्रभावित किया है। यदि विषयवस्तु की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि मिडिया ने अपने विकास के लिए नई से नई विज्ञान और प्रौद्योगिकी को अपनाया है। पत्रकारिता के विस्तृत क्षेत्र में यह भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि विदेशों में हिंदी की पत्र पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। उदाहारण के लिए – अमेरिका से 'विश्व विवेक', केनडा से 'वसुधा', मरिशेस से 'रिमझिम', इंग्लैंड से 'पुरवाई', आदि।

9. सूचना प्रौद्योगिकी – आजकल सूचना प्रौद्योगिकी का अत्यधिक विकास हो रहा है। उसके साथ हिंदी का प्रभाव भी बढ़ रहा है। वर्तमान परिदृश्य में कम्प्यूटर का प्रयोग मात्र वैज्ञनिक क्षेत्रों में नहीं, अपितु ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा है। आज समस्त विश्व एक गांव (वैश्विक गांव) बन गया है। कंप्यूटर क्षेत्र में भारतीय वैज्ञानिक संस्थानों में हिंदी में पर्याप्त कार्य कर लिया है। आज इंटरनेट पर प्रचुर मात्रा में हिंदी प्रयुक्त है। हिंदी के चौवालीस पैकेज बाज़ार में प्राप्त हैं। एम.एस .ऑफिस पर विंडोस दो हज़ार पैकेज उपलब्ध है। बड़ी संख्या में साफ्टवेयर कम्पनियां विभिन्न प्रकार के पैकेज हिंदी में तयार कर रही है। बेंगलूर में बने कंप्यूटर हिंदी में सोलह भारतीय भाषाएँ पढ़ सकता है और अनुवाद भी कर सकता है। इंटरनेट और कंप्यूटर विद्वानों ने देवनागरी को सर्वाधिक समर्थ लिपि स्वीकारा हैं शब्द संख्या की दृष्टी से हिंदी संसार की समृद्ध भाषा हैं। अब इंटरनेट के द्वारा प्रमुख हिंदी अखबार, विविध प्रकार के खेल सबंधी विशेष समाचार पत्र, विभिन्न साहित्यकारों व कलाकारों से संबंधित जानकारी, हिंदी साहित्य के विभिन्न आयामों का परिचय तथा अद्यतन साहित्यिक गतिविधियों से सबद्ध सामग्री आसानी से प्राप्त हो सकती है। इतना ही नहीं इंटरनेट के माध्यम से हमारी संस्कृति को प्रतिबिंबित करनेवाले ग्रंथ-वेद, पुराण उपनिषद, महाभारत, रामायण का ज्ञान समग्र विश्व में पहुँचाने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

10. वर्धा में स्थित अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय और मारीशस में स्थित विश्व हिंदी सचिवालय हिंदी को विश्वभाषा बनाने में सलंग्न हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के पाठ्यक्रम तैयार करना, अंतरराष्ट्रीय हिंदी पुस्तकालय का निर्माण, हिंदी में शोधकार्य की व्यवस्था, पुस्तक मेलों का आयोजन आदि ऐसे कार्य हैं जिनमें हिंदी को विश्व स्तर पर स्थापित होने में सहायता मिली है।

11. भारत के आकाशवाणी/दूरदर्शन भी निरंतर हिंदी को विश्व स्तर पर स्थापित करने में निरंतर संलग्न है।

उपरोक्त कारणों से हिंदी एक विश्व भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी है। यह विश्व भाषा हिंदी भारत में भी अपना स्थान प्राप्त करके रहेगी। लेकिन भारत में हिंदी की स्थिती को देखकर आधुनिक हिंदी के जनक भारतेन्दु बाबू हिंदी की हीनता का वर्णन करते हुए लिखते हैं-

अंग्रेज़ी पढ़ी के जदपि, सब गुन होत प्रवीन।

पै निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन

यह हीनता की भावना ही हमारे विकास में बाधक है। हम बड़े गर्व से बात का उद्घोष करते हैं कि आज विश्व के अनेक देशों में हिंदी शिक्षण का कार्य प्रगति पर है। हिंदी को अनेक देशों का समर्थन प्राप्त है। देवनागरी एक वैज्ञानिक लिपि है। हिंदी के लिए आत्माहुति देने वाले महान थे, लेकिन यह सब तभी संभव हुआ, जब एक मन बना और आजादी के साथ-साथ भाषाई स्वतंत्रता की आवश्यकता भी महसूस की गयी।

अब तो हम आज़ाद देश के नागरिक हैं। हिंदी की बातें होती हैं पर अंग्रेज़ी को छोड़कर नहीं। हिंदी की थाली में अंग्रेज़ी छुरी-कांटे का बोलबाला बना हुआ है। शिक्षा भी वही स्वीकार है जिसमें मांटेसरी और किंडर गार्डन पध्दति प्रचलित हो। अंग्रेज़ी पध्दति की शिक्षा श्रेष्ठ मानी जाती है। हिंदी शिक्षा के लिए आजादी के 64 वर्षों बाद भी जद्दोजेहद जारी है पर अंग्रेज़ी शिक्षा की ओर सामान्य भारतीयों और अंग्रेज़ी के शुभ चितकों का सहज झुकाव बना हुआ हैं यह एक विचारणीय मुद्दा है।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के लिए संघर्ष करने वालों को याद करना, सेमिनारों में वक्तव्य देना, बार-बार आज़ाद सरकार को कोसना और फिर अपने नागरिक कर्तव्यों से विमुख हो जाना ही संभवत: पर्याप्त लगता है। भारतीय संविधान में वर्णित प्रमुख भारतीय भाषाओँ में हिंदी सर्वोपरि होने के बावजूद, हिंदी देश की धड़कन होने के बावजूद, भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बोली और समझी जाने वाली भाषा के बावजूद हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं मिल पा रहा है। इससे यह आभास होता है कि अपने देश में राष्ट्रभाषा को लेकर कोई अंदरूनी राजनीति आँख मिचौली का खेल दिखाती रहती है, जिसका समापन प्रतिवर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस मना कर पूर्ण कर दिया जाता है ।

हालांकि वर्तमान प्रसंग को देखकर सरकार द्वारा हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की दिशा में दोहराए गए संकल्प और हिंदी सॉफ्टवेयर की सार्थक पहल महत्वपूर्ण लगती है। इससे आशा की जा सकती है कि हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा बनकर विश्व को नया संदेश देगी। भले ही हर बार की तरह कालांतर में इस सरकार की भूमिका भी भाषा के प्रश्न पर नकारात्मक सिध्द हो लेकिन अंग्रेज़ी को धकियाने से कुछ नहीं होगा। हिंदी के लिए भी 'करो या मरो' जैसा आंदोलन करना होगा। पूरी दृढ़ता के साथ राष्ट्रभाषा बनाने के लिए सिर्फ एक मंच नहीं बल्कि एक बड़ा मन बनाना ही श्रेयस्कर हो सकता है।

संदर्भ सूची

1. गवेषणा – विश्व भाषा हिंदी विशेषांक, 65-66 केंद्रीय हिंदी संस्थान, 1995 आगरा
2. हिंदी शिक्षण: अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य, 1988, केंद्रीय संस्थान, आगरा
3. मैसूर हिंदी प्रचार परिषद पत्रिका 2009, राजाजीनगर, बेंगलूर
4. मैसूर हिंदी प्रचार परिषद पत्रिका 2013, राजाजीनगर, बेंगलूर
5. मैसूर हिंदी प्रचार परिषद पत्रिका 2014, राजाजीनगर, बेंगलूर
6. विश्व की दृष्टि में हिंदी – ओम प्रकाश दार्शनिक – संकल्प पत्रिका (जुलाई –सितंबर 2008

अनुवाद में मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग : हिंदी-तेलुगु का विशेष संदर्भ

बी. हेमलता

अनुवाद एक जटिल भाषिक रूपांतरण की प्रक्रिया है जिसमें स्रोत भाषा के पाठ को लक्ष्यभाषा में समूल अर्थ सहित भाषिक अंतरण किया जाता है। साहित्यिक पाठ का अनुवाद करते समय अनुवादक को विधानुगत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। साहित्यिक पाठ के अनुवाद में (गद्य और पद्य दोनों में) सांस्कृतिक प्रतीकों के अनुवाद की समस्या विकट होती है। स्रोतभाषा में प्रयुक्त अनेक सांस्कृतिक प्रतीक लक्ष्यभाषा में उपलब्ध नहीं होते। स्रोतभाषा समुदाय की अनेक सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराएँ लक्ष्यभाषा समुदाय में मौजूद नहीं होतीं तब उन सांस्कृतिक परंपरा-बोधक शब्दों, मुहावरों और कहावतों अथवा लोकोक्तियों के अनुवाद की समस्या जटिल हो जाती है। किसी भी साहित्यिक पाठ के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों के सटीक और अर्थपूर्ण अनुवाद के लिए अनुवादक को स्रोत और लक्ष्य दोनों भाषाओं के सांस्कृतिक एवं सामाजिक परंपराबोधक शब्दावली, मुहावरे तथा लोकोक्तियों का ज्ञान आवश्यक है। अनुवाद चाहे वह साहित्यिक पाठ का हो अथवा साहित्येतर पाठ का हो, दोनों ही स्थितियों में प्रसंग के अनुसार मुहावरों और लोकोक्तियों के अनुवाद की आवश्यकता होती है।

भारतीय भाषा समुदाय लगभग एक जैसा ही है इसलिए भारतीय भाषाओं के अंतर-भाषिक अनुवाद में कठिनाई कम हो सकती है। किंतु भारतीय और विदेशी भाषा के मध्य किए जाने वाले अनुवाद के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों के अनुवाद की स्थिति विषम और जटिल हो जाती है, क्योंकि भारतीय समाज की अनेकों सामाजिक व सांस्कृतिक बोधसूचक शब्दावली, मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रतिरूप विदेशी भाषाओं में उपलब्ध नहीं होते। उदाहरण के लिए 'गोदान' शब्द का अंग्रेज़ी अनुवाद सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में कठिन है। भारतीय समाज में 'गोदान' अर्थात गाय का दान अनेक संदर्भों में एक परंपरा और विधान है। इसका संबंध मृत्यु संस्कार से भी है। इसलिए विदेशी पाठक के लिए इसका अनुवाद करते समय अनुवादक को 'गोदान' की समूची परंपरा और प्रक्रिया को समझाना होगा और फिर इसके इस परंपरा के लिए शब्दावली का निर्माण करना होगा। 'गोदान' का शाब्दिक अंग्रेज़ी अनुवाद 'गिफ्ट ऑफ काऊ' (gift of cow) सांस्कृतिक संदर्भ में अटपटा और असंगत सिद्ध होगा। इसलिए पाद टिप्पणी में इससे जुड़े भावनात्मक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विधान को समझाना होगा। इस तरह के अनेक संस्कृतिबोधक शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों के अनुवाद की समस्या अंतरभाषिक अनुवाद में उत्पन्न होती है,जिसका समाधान अनुवादक को तलाशना पड़ता है।

जहां तक भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद की स्थिति है, वह उतनी जटिल नहीं जितनी की भारतीय और विदेशी भाषाओं के मध्य प्रकट होती है।

मुहावरों का अनुवाद :

मुहावरा से तात्पर्य उस वाक्यांश अथवा पद से होता है जिसका अर्थ लक्षणा या व्यंजना द्वारा निकाला जाता है। मुहावरों द्वारा किसी भी भाषा समुदाय की सामाजिक और सांस्कृतिक अनुभूति को विशेष शैली में अभिव्यक्त किया जाता है। किसी भी सरल उक्ति को मुहावरेदार शैली में कहने से उसका प्रभाव द्विगुणित हो जाता तथा उसमें एक प्रकार का चमत्कार पैदा होता है जो पाठक या श्रोता को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। मुहावरों के माध्यम से कही गई बात अधिक रोचक, व्यंजक, मार्मिक और सरस होती है। किन्तु एक भाषा के मुहावरों को यथावत दूसरी भाषा में संप्रेषित करना दु:साध्य कार्य है।

किसी भी साहित्यिक पाठ के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों के सटीक और अर्थपूर्ण अनुवाद के लिए अनुवादक को स्रोत और लक्ष्य दोनों भाषाओं के सांस्कृतिक एवं सामाजिक परंपराबोधक शब्दावली, मुहावरे तथा लोकोक्तियों का ज्ञान आवश्यक है। अनुवाद चाहे वह साहित्यिक पाठ का हो अथवा साहित्येतर पाठ का हो, दोनों ही स्थितियों में प्रसंग के अनुसार मुहावरों और लोकोक्तियों के अनुवाद की आवश्यकता होती है।

भारतीय भाषाओं में हिंदी का मुहावरा और लोकोक्ति कोष अति विशाल और व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से युक्त है। हिंदी से अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करते समय लक्ष्यभाषा के मुहावरों के संबंध में ज्ञान अर्जित करना अनुवादक का प्रथम कर्तव्य होता है। हिंदी और तेलुगु भाषाओं के मध्य अनुवाद प्रक्रिया में हिंदी के समकक्ष अथवा समानक मुहावरे तेलुगु में पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं। अधिकांश हिंदी के मुहावरों का शाब्दिक अनुवाद भी सही रूप में काम आ जाता है और हिंदी के मुहावरों के भावानुवाद अधिकांश स्थितियों में उपयोगी सिद्ध होते हैं। इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं -

1. आँख का तारा - कंटि वेलुगु

2. आँखें खोलना - ज्ञानोदयम कलुगुटा

3. आँख भर आना - कंटा तड़ि पेट्टुटा

4. आकाश पाताल एक करना

भूम्याकाषालु एकम चेयुटा

5. ज़मीन आसमान का अंतर

नक्ककी नागलोकानिकी उन्नन्ता तेड़ा

6. आग और पानी का बैर

नीटिकी निप्पुकी उन्ना वैरम

7. आसन जमाना सुस्थिरा स्थानम एर्परूचुकोटम

8. आसमान में छेद होना

आकाशानिकी चिल्लु पड़ुटा

9. आसमान सर पर उठा लेना

आकासान्नी नेत्तिकेत्तु कोनुटा

10. इज्ज़त मिट्टी में मिला देना

मर्यादा मट्टिलो कलुवटा

11. ईद का चाँद होना - नाल्ला पूसा अगुटा

12. गड़े मुर्दे उखाड़ना पाती पेट्टिना सेवान्नि पैकी लागुटा

13. पैर उखाड़ना - मूलालतो पेकलिंचुटा

14. उछल पड़ना - तुल्ली पडुटा

15. ओखली में सिर डालना- रोट्लो तला पेट्टुटा

16. कमर कसना - नडुमु बिगुञ्चुटा

17. कलेजा जलना - गुंडे रगिलि पोवुटा

18. कलेजे मे आग लगाना- गुंडे लो अग्गि रेपुटा

19. कान का कच्चा - चेप्पुडु माटलु विने वाडु

20. कलेजे का टुकड़ा - प्राणानिकी प्राणम

21. कान भरना - चेवि कोरुकुटा

22. कान में डालना - चेविलो ऊदुटा

23. आह भरना - निट्टूर्पु विडुचुटा

24. ईंट का जवाब पत्थर से - देब्बकु देब्बा

25. उन्नीस बीस का अंतर - स्वल्प अंतरम

26. उल्टे छुरे से मूँडना

मोंडी कत्ति तो क्षवरम चेयुटा

27. खून खौलना - नेत्तुर उडिकि पोवुटा

28. कोल्हू का बैल - गानुगा एद्दू

29. कौड़ी कौड़ी चुकाना

अणा पैसालु तो चेल्लिंचुटा

30. किस्मत आजमाना - अदृष्टान्नी परीक्षिञ्चुटा

31. खिचड़ी पकाना - रहस्य मंतनालु चेयुटा

32 आगे कुआं पीछे खाई - मुन्दु नुय्यि वेनुका गोय्यि

कहावतों और लोकोक्तियों का प्रयोग :

कहावत का दूसरा नाम लोकोक्ति है। ये दोनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। कहावत का प्रयोग स्वतंत्र रूप में होता है, जब कि मुहावरे का वाक्य में प्रयोग करने के लिए क्रिया की आवश्यकता होती है। मुहावरा एक वाक्यांश होता है तो कहावत या लोकोक्ति पूरा एक वाक्य। लोकोक्तियां मनुष्य जीवन के अनुभवों का सार होती है। व्यक्ति के अनुभवों और अनुभूतियों को लोकोक्तियों के द्वारा प्रसारित किया जाता है। लोकोक्तियों के प्रयोग से कथन को प्रभावशाली बनाया जाता है। लोकोक्ति की अभिव्यक्ति में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक होती है। लोकोक्तियों के प्रयोग से प्रसंग अधिक अर्थवान बनाते हैं। लोकोक्तियाँ सभी भाषाओं में कथन को पुष्ट करती हैं और संप्रेषण का सार्थक माध्यम बनती हैं। लोकोक्तियों में अनुभूतिपरक अभिव्यंजना होने के कारण इसका प्रभाव पाठक या श्रोता पर सीधे दिखाई देता है और इसके द्वारा विनोदात्मक स्थिति भी पैदा होती है। कुछ लोकोक्तियाँ मनोरंजक भी होती हैं जिससे वातावरण की गंभीरता को कम किया जा सकता है। अभिव्यंजना की दृष्टि से लोकोक्तियाँ जितनी महत्वपूर्ण होती हैं अनुवाद में इसका प्रयोग उतना ही कठिन और जटिल होता है। स्रोतभाषा की लोकोक्तियों और कहावतों का लक्ष्यभाषा में समान रूप से अनुवाद करते समय दोनों भाषाओं के

रीतिरिवाजों, परंपराओं, हास्य-व्यंग्य की प्रयुक्तियों, अर्थ-बिंबों, अलंकारों आदि का ज्ञान अनुवादक के लिए अनिवार्य है। लोकोक्तियाँ सामान्यत: सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक और पौराणिक तथ्यों से संपृक्त होती हैं। इन सभी क्षेत्र के संदर्भों से कहावतों का निर्माण होता है जिसे लक्ष्यभाषा में यथावत संप्रेषित करना अनुवादक का कार्य है।

हिंदी - तेलुगु लोकोक्तियों का परस्पर आदान-प्रदान अनुवाद के धरातल पर तीन रूपों में होता है ।

1. मूल रूप में ग्रहण की गई लोकोक्तियाँ

2. भाव साम्य वाली लोकोक्तियाँ

3. शब्द तथा भाव की समानता वाली लोकोक्तियाँ

उदाहरण -

1. अंडे सेवे कोई, बच्चे लेवे कोई - सोम्मोकारिदी, सोकोकडिदी

2. अंधा क्या जाने बसंत की बहार - गूड्डिवानिकेम तेलुसु वसंत सौरभम

3. अधजल गगरी छलकत जाए - निंडु कुंडा तोणकदु

4. अज्ञानी धन चाहता है, ज्ञानी गुण - अज्ञानिकी धना दाहम ज्ञानिक गुणदाहम।

5. अपना पूत अपने को प्यारा

काकि पिल्ला काकिकि मुददु

6. अंगूर खट्टे हैं - अंडाणी द्राक्षा पुलुपु

7. अपना पैसा खोटा तो परखने वाले का क्या दोष : मना बंगारम मंचिदयिते

कंसालिनी अड़गवलसिना पनि लेदु।

8. अपना माल सभी को बढ़िया लगता है

तामुनिगिंदि गंगा, तावलचिंदी रंभा

9. हीरा हीरे को काटता है

वज्रान्नि वज्रम तो ने कोय्यालि

10. मनुष्य का जीवन पानी का बुलबुला

मानव जीवितम नीति बुड़गवंटिदि

11. आप भला तो जग भला

नोरू मंचिदयिते ऊरु मंचिदि

12. प्रेम अंधा होता है

प्रेमा गुड्डिदी

13. एक थैली के चट्टे बट्टे

अन्नी वक थानुलो मुककले

14. एक म्यान में दो तलवारे नहीं समा सकती- वाका वर लो रेंडू कत्तुलु इमडवू

15. ऊंची दुकान फीका पकवान

पेरु गोप्पा, ऊरु दिब्बा

16. ओखली में सिर दिया तो मूसल से क्या डर रोट्लो तला पेट्टि रोकली पोटू कि भयम एंदुकु ?

17. एक हाथ से ताली नहीं बजती

रेंडू चेतुलु कलिस्तेने चप्पट्लु

18. ईश्वर की गति ईश्वर जाने भगवंतुड़ी लीलालू भगवंतुडिके एरुका

19. कानों सुनी बात आधी झूठ होती है चेवुलतो विन्ना माटा सगम अबद्दम

20. कायर कई बार मरते हैं
पिरिकि वाडु रोजू चस्ताडु

21 जहां चाह वहाँ राह
मनसुंटे मार्गम वुंटुंदि

22 कांटे से कांटा निकलता है
मुल्लुनी मुल्लु तो ने तीयाली

23 काला अक्षर भैंस बराबर
विद्यलेनी वाडु विंता पशुवु

24 चंद्रमा में भी कलंक है
चंद्दुकइना मच्चा वुंटुंदि

25 दीवार के भी कान होते हैं
गोड़ाकि कूड़ा चेवुलुंटाई

26 जब तक सांस तब तक आस
स्वासा वून्नन्ता वरुकु आशा पोदु

27 जहां गुड होगा वहाँ मक्खियाँ होंगी
बेल्लम वुन्ना चोटा ईगलु चेरुकुंटाई

28 जैसा राजा वैसी प्रजा
यधा राजा तधा प्रजा

29 चिराग तले अँधेरा
दीपम वुन्ना चोटे चीकटि वुंटुंदि

30 दूर के ढ़ोल सुहावने
दूरपु कोंडलु नुनुपू

उपरोक्त सभी तेलुगु के मुहावरे और लोकोक्तियाँ अर्थ की दृष्टि से हिंदी लोकोक्तियों और मुहावरों के समरूपी हैं। ये सभी तेलुगु भाषा में भी उतने ही प्रचलित और लोकप्रिय हैं जितने कि हिंदी में। उपरोक्त उदाहरणों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि हिंदी और तेलुगु के मुहावरों और लोकोक्तियों में अभिव्यक्ति के धरातल पर समानता है तथा सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ भी लगभग समान हैं इसीलिए दोनों भाषाओं में समरूपी मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रचलन हिंदी - तेलुगु अंतरभाषिक अनुवाद में सहायक है।

अनुवाद की प्रकृति : कला, कौशल या विज्ञान?

आशीष कुमार

अनुवाद की प्रकृति के संदर्भ में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। कोई इसे कला तो कोई विज्ञान और कई तो इसे शिल्प की श्रेणी में रखते हैं। बहुत सारे विद्वान अनुवाद को मिश्रित विधा के रूप में स्वीकार करते है। वास्तव में अनुवाद एक संशलिष्ट प्रक्रिया है जिसमें एक ओर इसके दोहरे संप्रेषण- व्यापार का संदर्भ मिलता है तो दूसरी ओर इसके क्रिया व्यापार की दोहरी भूमिका दिखाई देती है। इसी प्रकार अनुवाद- सामग्री के रूप में हमें एक ओर सर्जनात्मक व्यापार की अनुपम साहित्यिक रचना मिलती है तो दूसरी ओर तर्क चिंतन के कार्य-कारण संबंधों पर आधारित वैज्ञानिक पाठ प्राप्त होता है। अतः अनुवाद की प्रकृति के संबंध में व्यक्त विभिन्न मतों पर विचार करना वांछनीय होगा।

क्या अनुवाद कला है?

कला के अंतर्गत मनुष्य की वे क्रियाएँ और कृतियाँ आती हैं जिनके सृजन और आस्वादन दोनों में उसे मानसिक आह्लाद मिलता है और उसके सौंदर्य वृत्ति की तृप्ति होती है। कला के माध्यम से मनुष्य लालित्य की सृष्टि करता है और उससे स्वयं आनंदित होता है और दूसरों को आनंदित करता है कला की वस्तु के रूप मनुष्य के अनुभव, भावनाएं और इंद्रिय- बोध सामने आते हैं जो सार्वभौमिक और सार्वकालिक होते हुए भी वैशिष्ट्य के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। इसलिए प्रत्येक कलाकृति निजी वैशिष्ट्य और व्यक्तित्व से संपन्न होती है। अनुवाद को कला मानने का मुख्य आधार यह है कि सहज समतुल्यता की खोज में अनुवादक को अक्सर पुनर्सृजन करना पड़ता है। अनुवाद वस्तुतः शाब्दिक भाषांतर नहीं है। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है और प्रत्येक लेखक की अपनी भावभंगिमा। इसलिए पूर्ण भाषांतर तो संभव नहीं है। अनुवाद एक तरह से पुनरभिव्यक्ति है और लक्ष्य भाषा की अपनी शैली में ही वह संभव है। इस पुनरभिव्यक्ति में अनुवादक की कल्पना, भावप्रवणता, सहजज्ञान और कला का बड़ा हाथ रहता है। अनुवाद को कला मानने वालों में थियोडर सेवरी प्रमुख हैं। उनके अनुसार जो लोग अनुवादक के निजी व्यक्तित्व और सृजनशीलता को स्वीकारते हैं वे अनुवाद को कला मानते हैं। सेवरी ने अपने 'अनुवाद की कला' नामक पुस्तक में अनुवाद को कला मानने के अनेक कारण बताए हैं। उनके अनुसार अनुवाद में 'निकटतम समतुल्यता' की सिद्धि शब्दों और पर्यायों के चुनाव पर निर्भर होती है और यह चुनाव अनुवादक के सौंदर्यबोध एवं व्यक्तित्व पर निर्भर है। उनके अनुसार वैज्ञानिक अनुवाद फोटोग्राफी की कला के समान है जिसमें भी कलाकार की प्रतिभा का बड़ा योग रहता है। अनुवादक का भाषा ज्ञान यांत्रिक नहीं होना चाहिए, बल्कि सहानुभूति अंतरदर्शन और सजगता से युक्त होना चाहिए जो कला मर्मज्ञता के गुण हैं। अनुवाद कला है, इसका सबसे अधिक अनुभव हमें साहित्यिक कृतियों के अनुवाद में मिलता है। तथ्य और सूचना प्रस्तुत करने वाले विज्ञान और उनके शास्त्रों में भी शब्दानुवाद से काम नहीं चल सकता। भावों और विचारों को भाषा के सौष्ठव के साथ प्रस्तुत करना होता है।

साहित्यिक कृतियों का अनुवाद तो अक्सर भाव प्रधान ही होता है। साहित्य में रचना की जिस अंतर्वस्तु को अभिव्यक्ति देनी पड़ती है, इसमें भाषा का अधिकतम संभव अर्थ में प्रयोग करना पड़ता है फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि अभिव्यक्ति पूर्ण हुई है। यही कारण है कि जहां विज्ञान और शास्त्रों आदि में भाषा की अभिधा शक्ति से काम लिया जाता है वही सृजनात्मक भाषा में अभिधा की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना शक्तियों से अधिक काम लिया जा सकता है। साहित्य में जो स्पष्टतः कथित है इसकी अपेक्षा जो उस कथित के पीछे संकेतित है का अधिक महत्व है। अनुवाद में इस संकेतित को पकड़ पाना अत्यंत दुष्कर होता है। इस संकेतित को पाने के लिए अनुवादक को सर्जक कलाकार की भूमिका में उतरना पड़ता है। अनुवादक मूल कृति में निहित बिंब प्रतीक संदर्भों की तलाश करता है। कृति के समग्र सांस्कृतिक संदर्भों की पहचान करता है, उन्हें व्याख्यायित करता है और लक्ष्य भाषा में पुनः सृजन करता है। इस पुनः सृजन की प्रक्रिया में वे कभी तो अपने मूल रूप में ही भाषांतरित होकर आ जाते हैं तो कभी रूपांतरित होकर आते हैं। इस रूपान्तरण की प्रक्रिया में कभी-कभी अनुवादक भटक भी जाता है। अनुवाद को कला मानने का एक अन्य आधार यह है कि मूल कृति कि आत्मा को अनुवाद में उतारने का काम अपने में एक कला है। मशीन कभी भी यह काम पूर्ण सफलता से नहीं कर सकती। कलाकार का वह 'छठा इंद्रिय' या सहज ज्ञान ही है जो कृति के सौंदर्य बिंदु को पहचानकर उसका संप्रेषण कर देता है। कृतिकार के साथ पूर्ण रूप से तदाकार होकर उसकी आत्मा को पहचानने का कार्य वही कर सकता है जिसमें कलाकार जैसी संवेदना हो, सहानुभूति हो। यह कम महत्वपूर्ण बात नहीं है कि दुनियाँ के श्रेष्ठ अनुवादक श्रेष्ठ मौलिक कृतिकार भी थे।

क्या अनुवाद विज्ञान है?

विज्ञान का अर्थ होता है किसी भी चीज़ का विशिष्ट ज्ञान और वैज्ञानिकों की पद्धति यह है गुजरकर कि पहले प्राप्त और अप्राप्त तथ्यों को खोज कर उनका विश्लेषण करते हैं, उनका वर्गीकरण कर उन्हें तर्कसम्मत क्रम में सँजोते हैं और इस प्रक्रिया से ग ऐसे सिद्धांतों और नियमों की खोज करते हैं जो निरपवाद सार्वभौमिक और सार्वकालिक होते हैं। अनुवाद को विज्ञान कि श्रेणी में मानने वाले विद्वानों में नाइडा और ओटिगर प्रमुख हैं। इनके द्वारा अनुवाद को विज्ञान मानने के पीछे दो तर्क हैं। पहला तर्क यह है कि अनुवाद की प्रक्रिया तुलनात्मक भाषा विज्ञान में प्रयुक्त होने वाली प्रक्रिया है। नाइडा के अनुसार अनुवाद में पहले स्त्रोत भाषा के पाठ का विकोडीकरण किया जाता है, इसके बाद विकोडीकरण के द्वारा प्राप्त अर्थ का कोडीकरण के द्वारा लक्ष्य भाषा में पुनर्गठन किया जाता है। इन दोनों प्रक्रियाओं को पूरा करने के बाद स्रोत और लक्ष्य भाषा का वैज्ञानिक पद्धति से तुलनात्मक अध्ययन करके समानताओं और विषमताओं का पता लगाया जाता है। इसके बाद कोडीकरण के द्वारा पाठ के रूप में पुनर्गठन किया जाता है। अनुवाद की यह प्रक्रिया वैज्ञानिक प्रक्रिया है। दूसरा तर्क जो इसी तर्क कि परिणति है यह है कि इस वैज्ञानिक प्रक्रिया को अपनाकर विकल्पों पर नियंत्रण कर कंप्यूटर द्वारा मशीनी अनुवाद संभव है और इस मशीनी अनुवाद में एक सीमा तक सफलता प्राप्त कर ली गई है।

मुझे लगता है कि जिन अर्थों में भौतिकी, रसायन शास्त्र, गणित आदि विज्ञान है उन अर्थों में अनुवाद विज्ञान नहीं है। मशीनी अनुवाद के अर्थ के वावजूद अनुवाद में विकल्पों कि संभावना हमेशा बनी रहती है और मनुष्य द्वारा किए अनुवाद पर अनुवादक की व्यक्तिगत क्षमता,

सूझबूझ और व्यक्तित्व की छाप अवश्य पड़ती है। इसलिए अनुवाद को इस अर्थ में विज्ञान कहा जा सकता है कि उसमें तार्किक और एक सीमा तक निर्वैक्तिक वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया जाता है और उसे यांत्रिक बनाया जा सकता है। अनुवाद के अध्ययन की प्रक्रिया वैज्ञानिक अध्ययन की प्रक्रिया से निकटता रखती है। जिस प्रकार विज्ञान संबंधी अनुशीलन में तथ्य संकलन, तुलना, निरीक्षण, वर्गीकरण, विश्लेषण, नियम निर्धारण आदि कार्य शामिल होते हैं उसी प्रकार की स्थितियाँ अनुवाद कार्य में भी आती रहती हैं। वैज्ञानिक के समान अनुवादक को भी तटस्थ रहना पड़ता है एवं अनुवाद के माध्यम से एक भाषा के कथ्य को दूसरी भाषा में सही ढंग से लाना पड़ता है। इस प्रकार वह सांस्कृतिक भाषा का एक ऐसा संपर्क-सूत्र खड़ा करता है जिसकी उपयोगिता सामाजिक जीवन में अत्यधिक है। वैज्ञानिक प्रयोगशाला में बैठकर मानव-कल्याण कि ओर प्रवृत्त होता है और अनुवादक स्त्रोत भाषा की सामग्री से जूझकर मानव- कल्याण की ओर या नए शब्दों को खोजकर आगे बढ़ता है। वह दो देशों के भाषा साहित्य और संस्कृतिपरक ज्ञान की सरलता, सुबोधगम्यता और दृष्टि की वैज्ञानिकता में प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार अनुवादक कुछ अपवादों को छोड़कर निश्चित नियमों का अनुशरण करता है। यह प्रक्रिया पूरी तरह से वैज्ञानिक है और यदि इसमें वैज्ञानिक नियम न होते तो मशीनी अनुवाद संभव ही नहीं हो सकता था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अनुवाद की संपूर्ण मानसिकता वैज्ञानिक प्रक्रिया की मानसिकता से जुड़ी है और अनुवादक की पूरी पृष्ठभूमि कार्य-कारण संबंध से रहित नहीं है। इसी अर्थ में अनुवाद को विज्ञान कहा जा सकता है।

क्या अनुवाद शिल्प है?

शिल्प के पर्यायवाची के रूप में हुनर, कारीगरी, दक्षता, हस्तकर्म इत्यादि का प्रयोग किया जाता है और माना जाता है कि अभ्यास, प्रशिक्षण और शारीरिक श्रम के द्वारा किसी उपयोगी वस्तु के निर्माण में दक्षता प्राप्त कर लेना शिल्पगत दक्षता है। इसमें सृजनशीलता कि अभिव्यक्ति नगण्य होती है। इसलिए कला की अपेक्षा शिल्प को हीनतर माना जाता है। इसका एक कारण यह भी है कि कला का संबंध लालित्य से जोड़ा जाता है और शिल्प का संबंध उपयोगिता से। ललित कलाओं की रचना में प्राप्त कुशलता कला है और उपयोगी कलाओं के निर्माण में प्राप्त दक्षता शिल्प है। विद्वानों का एक वर्ग अनुवाद को न तो कला मानता है और न ही विज्ञान। यह वर्ग उसे अभ्यास पर आधारित शिल्प या कौशल की श्रेणी में रखता है। इन विद्वानों के मतानुसार अनुवादक तो अनुवादक होता है न कि सर्जक साहित्यकार या तर्कप्रवण वैज्ञानिक। किसी भी द्विभाषिक को प्रयाप्त प्रशिक्षण द्वारा अनुवादक बनाया जा सकता है, जबकि कला और विज्ञान का आधार मात्र प्रशिक्षण नहीं है। अनुवाद को शिल्प मानने वाले विद्वान इसे उपयोगी कला की संज्ञा देते हैं, न कि ललित कला की। इस प्रकार यह प्रायोगिक विज्ञान की श्रेणी में आ जाता है न कि सैद्धांतिक विज्ञान के अंतर्गत। उपयोगी कला और प्रायोगिक विज्ञान का संबंध अभ्यास, शिक्षण, और उसके अनुप्रयोग की दक्षता के साथ जोड़ा जाता है जबकि ललितकला और सैद्धांतिक विज्ञान का संबंध मूलतः सर्जना की साथ। अनुवाद का कार्य न तो किसी संवेदना की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति करना है और न ही इसका लक्ष्य 'सिद्धांत के लिए सिद्धांत' का प्रतिपादन करना। इसके कार्य क्षेत्र की परिधि या तो मूल पाठ का शिल्पगत अंतरण व प्रतिस्थापन है या मूल पाठ में व्यक्त कथ्य कि लक्ष्य भाषा में पुनः अभिव्यक्ति

है। दूसरे शब्दों में जहां सर्जक कलाकार और वैज्ञानिक किसी नए बिंब का निर्माण या प्रतिपत्ति की स्थापना करते हैं वहीं अनुवादक दूसरी भाषा के दर्पण में इनके प्रतिबिंब को प्रक्षेपित करता है। अतः अनुवाद कौशल है न कि कला या विज्ञान। वास्तव में इस मत के अनुसार अनुवाद में अनुवादक के व्यक्तित्व के प्रक्षेपण को नकारात्मक दृष्टि से देखा गया है और इसे आत्माभिव्यक्ति न मानकर अनुवाद तटस्थ विधा के रूप में स्वीकार किया गया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अनुवाद अंशतः कला, अंशतः विज्ञान और अंशतः शिल्प है। इसमे से किस अनुवाद में किसका कितना अंश होता है यह अनुद्य और अनुवादक दोनों पर निर्भर होता है। यदि कविता का अनुवाद कलात्मक नहीं होगा तो उसमें सफलता कैसे मिलेगी? स्वाभाविक है कि काव्यानुवाद में कला तत्व प्रधान होगा। इसके विपरीत यदि विज्ञान के अनुवाद में कलात्मकता लाने का प्रयास किया जाएगा तो अपने लक्ष्य से विचलित हो जाएगा। उसमें तो वैज्ञानिकता आपेक्षित है साथ ही शिल्प का मंजाव और निखार दोनों के लिए आवश्यक है। इसलिए यह जरूरी है कि अनुवादक में वैज्ञानिक तर्कप्रवणता, बौद्धिकता और तटस्थता हो, कलाकार की संवेदनशीलता और सर्जनशीलता हो तथा शिल्पी का प्रशिक्षण और परिश्रमशीलता हो।

संदर्भ- ग्रंथ :

• गोस्वामी कृष्ण कुमार, अनुवाद विज्ञान की भूमिका; राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, 2008.

• गोपीनाथन जी., अनुवाद : सिद्धांत और प्रयोग; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005.

• डॉ. वघान अमरसिंह, डॉ. सुंदरम एन., डॉ. गोविंदराजन एम. (संपादक), अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग; भाषा संगम, चेन्नई, 2004.

अनुवाद सैध्दांतिक पक्ष और विभिन्न परिप्रेक्ष्य

राजेश मून

ईसा पूर्व पहली शताब्दीं में सिसरो के लेखन में अनुवाद चिंतन के बीज मिलते हैं। यह सर्वविदित है कि अनुवाद कार्य संगठित रूप में आधुनिक युग में प्रारंभ हुआ। इसी तरह, अनुवाद सिध्दांत की अपेक्षाकृत सुपरिभाषित पृष्ठभूमि विकसित होना आधुनिक युग की देन है।

अनुवाद सिध्दांत बहुपक्षीय है, जो अनेक परस्पर संबद्ध शास्त्रों की समन्वित पृष्ठ्भूमि पर आधरित है-पाठक संकेत विज्ञान, संप्रेषण सिध्दांत, भाषा प्रयोग सिध्दांत और तुलनात्मक अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान। यह स्प्ष्ट करना भी उचित होगा कि एक ओर मानव अनुवाद और मशीन अनुवाद तथा दूसरी ओर लिखित अनुवाद और मौखिक अनुवाद के व्यावहारिक महत्व के कारण इसके सैद्धान्तिक पक्षों के विषय में अब व्यावस्थित चिंतन शुरू हो गया है। अनुवाद 'पुनरूक्ति','पुनर्व्याख्यान' या 'पुनराभिव्यक्ति' है। एक भाषा में व्यंजित संदेश को दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करना है। अतः आधुनिक युग में अन्नुवाद का आर्थिक और राजनीतिक महत्व अब प्रतिष्ठित हो चुका है।

मानव विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा का प्रयोग करता है लेकिन एक भाषा से दूसरी भाषा में व्यक्त करने के लिए अनुवाद क्रिया की मदद लेनी पडती है। "अनुवाद क्यां है?" के जवाब के लिए अनुवाद शब्द की व्युत्पत्ति पर गौर करना होगा। प्राचीन भारतीय चिंतकों ने अनुवाद के समूचे अनुशासन पर गंभीर विचासविमर्श किया है। पाणिनी से लेकर भर्तृहरि और जैमिनी तक। इन चिंतकों के यहाँ अनुवाद के बारे में व्यस्थित चिंतन की प्रक्रिया मिलती हैं। हालाँकि, इन चिंतकों के अनुवाद के अभिप्राय व्यापक होते थे। अनुवाद, जहाँ, एक साधारण भाषांतर की प्रक्रिया न होकर उसके अर्थ की तह में जाने और दार्शनिक मीमांसा करने, और कही गई बात को प्रमाणित करने तक की जिम्मेदारी होती थी। पाणिनी की अष्टाध्यायी में वर्णित सूत्र 'अनुवादेचर्णनाम' का कुछ टीकाकारों ने यह अर्थ निकाला कि अनुवादसिद्ध बात का प्रतिपादन अथवा कही गई बात का कथन है। इसी तरह भर्तृहरि के कथन 'अनुवृत्तिरनुवादो वा' और जैमीनीय न्यायमाला की उक्ति 'ज्ञातस्य कथनमनुवाद' से आशय क्रमशः 'दुहराने या पुनःकथन' और 'ज्ञात का पुनःकथन' से है।

अनुवाद से अभिप्राय के बारे में भर्तृहरि के उल्लेख का यहाँ एक विशिष्टन महत्व है। भर्तृहरि का संस्कृत भाषा में रचा गया पद्य अपने समय की गहरी पकड़ के लिए निरविवादित है। उनकी सूक्तियाँ तत्कालीन संक्रमण से गुजर रहे समाज की विडंबनाओं पर पैने ढंग से व्यंग्य करती है, और स्पष्ट, प्रतिरोधी भावबोंधों से ओत-प्रोत होते हुए मनुष्य के छुटपन और लोगो की कारगुज़ारियों पर

चोट करती है। उनके सूत्र-वाक्यँ भाषाशास्त्रीय दृष्टि से काफी समृध्द है। छोटे-छोटे वाक्यों में व्यापक अर्थबोध को व्यक्त करने वाली पंक्तियाँ उनकी काव्य-शैली की विशिष्टता है। भाषा और व्याकरणिक नज़रिए से चिंतनशील मस्तिष्क ही ऐसी अदभुत कविताएँ लिख सकता है। और कई विद्यानों का मानना है कि भर्तृहरि व्याकरणाचार्य भी थे। अतः अनुवाद के बारे में उनके सिध्दांत भारत की चिंनत-परंपरा में मील के पत्थर साबित होते है।

भारत के प्राचीन दर्शन-ग्रथों, ख़ासतौर से, न्याय और मीमांसा में 'अनुवाद' शब्द का क़ाफी प्रयोग हुआ है। यद्यपि इसके संदर्भ, आज हिंदी में प्रचलित अनुवाद शब्द की तुलना में बिल्कुल भिन्न है। पहले कही हुई बात के समर्थन में, उन्हें प्रमाणित और पुष्ट करने के लिए दूसरे वचन को अनुवाद कहा गया है। जबकि आज हिंदी में प्रचलित अर्थ के अनुसार,'एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में कहना' अनुवाद है। इस तरह आज अनुवाद शब्द भाषांतर का बोध अधिक देता है जबकि प्राचीन भारतीय दर्शन-ग्रंथों में अनुवाद से अभिप्राय अपने समर्थन में विचारों को और स्पष्ट करना भी था।

भारतीय परंपरा में, बुद्ध साहित्य में भी अनुवाद का उल्लेखनीय योगदान है। बुद्ध ने अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए पाली भाषा को चुना था। उनके जीवनकाल में ही उनके विचारों का प्रभाव दूर देशों में फैलने लगा था। यह सब विद्वान, भाषाविदों, दक्ष अनुवादकों और निष्ठानवान तथा समर्पित शिष्योंव के बग़ैर संभव नहीं था। यहाँ अनुवादक सिर्फ भाषांतर ही नहीं करते थे, बल्कि वे बुद्ध के विचारों की व्याख्याएँ भी किया करते थे। जरूरत पड़ने पर वे बुद्ध के विचारों को सरल और बोधगम्य तरीकों से प्रस्तुत करते थे। भाषा की निर्मिति के समय से ही, सदियों से धर्म और आध्यात्म या अन्य किसी भी तरह के विचारों के प्रचार-प्रसार में अनुवाद की महत्व पूर्ण भूमिका रही है।

अंग्रेज़ी में भाषांतर के लिए ''ट्रांसलेशन''शब्द का प्रयोग होता है। यह हिंदी में 'अनुवाद' का पर्याय जैसा है। लैटिन शब्द 'ट्रांस' और 'लेशन' के युग्म से निर्मित 'ट्रांसलेशन' का शाब्दिक अर्थ है 'पार ले जाना'। अर्थात एक भाषा के पार, दूसरी भाषा में ले जाने की प्रक्रिया। दुनिया की लगभग हर भाषा में अनुवाद के अर्थ को व्यंक्त' करने वाले, व्युत्पत्तिमूलक, शब्द है।

औद्योगिक क्रांति के पश्चात, आधुनिक युग की शुरूआत के साथ ही, अनुवाद के स्वरूप और गति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। न सिर्फ जरूरतों के मामले में फ़र्क आए बल्कि मात्रा और गुण के लिहाज से भी उल्लेखनीय प्रगति हूई। चाहे वह पुराने साहित्यक की पुनर्व्याख्या हो, या फिर बदले हुए संदर्भो में उनकी साहित्यिक तथा भाषाशास्त्रीय प्रासंगिकता की जाँच-पड़ताल के उददेश्य या फिर मशीन के ज़रिए उनके व्यापक प्रचार के लिए विभिन्न भाषाओं में पुस्तंकों के उत्पादन के मामले हों। सभी क्षेत्रों में अनुवाद की सार्थकता स्थापित हो चुकी थी। इसकी शुरूआत, यद्धपि, मध्यकाल से ही हो गई थी। भारत में, फ़ारसी भाषा के प्रचलन से इस दिशा में एक नए युग का सवेरा देखने को मिलता है। युरोप में बाइबल के बहुत अच्छे अनुवाद हुए। फलोरा रास एमॉस ने अपनी पुस्तक 'अर्ली थियरीज ऑफ ट्रांसलेशन' में यूरोप में अनुवादों और प्रतिपादित सिद्धांतों के बारे में विस्तृत वर्णन किया है। सोलहवीं शताब्दी में काफी संख्या में अनेक प्रकार के अनुवाद हुए। अनुवादकों ने अपने अनुभवों के आधार पर अनुवाद सिद्धांत का प्रतिपादन भी किया।

अनुवाद का जब एक व्यवस्थित अनुशासन विकसित होना प्रारंभ हुआ तो अनेक विद्वानों ने अनुवाद को परिभाषित किया। इसमें प्रक्रिया और प्रक्रियागत परिणामों के आधार पर परिभाषाओं में भी वर्गीकरण किए है।

एक भाषा से प्राप्तय भाषिक सामग्री को दूसरी भाषा में ढालने की प्रक्रिया और उसके परिणामों को अनुवाद कहते है। "एक भाषा में व्यषक्तक भावों, विचारों को यथासंभव समतुल्यक और सहज अभिव्यक्ति द्वारा किसी अन्यं भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है। " अनुवाद कर्म नहीं किया जाता तो अन्य भाषाओं में रचे गए ज्ञान-विज्ञान के बारे में क्या व्यक्ति कुछ जान पाता? क्या उसे आंशिक तौर से या पुरी तरह से आत्मसात कर पाता? अनुवाद कर्म आरंभ नही होता तो मनुष्य अपनी एक ही भाषा तक सीमित रह जाता। और तब मनुष्य समाज का विकास असंभव होता। डॉ॰ जी गोपीनाथन ने कुछ ऐसे ही मंतव्य व्यक्त करते हुए अनुवाद को एक तकनीक माना है जिसका अविष्कार मानव ने बहुभाषिक स्थितियों की विडंबनाओं से बचने के लिए किया था।

मानव के पास आयु, समय और संसाधनो की एक सीमा रहती है। हर व्यक्ति संसार की प्रत्येक भाषा नहीं सीख सकता। ऐसी स्थितियों में अनुवाद एक ऐसा बेहतरीन माध्यम है जिसके ज़रिए मनुष्य और मनुष्य समाज अन्य भाषिक समाजों से संपर्क स्थापित करता है। अनुवाद की अपूर्णता के संबंध में कोई चाहे जो भी कहे, लेकिन अनुवाद विश्व के सभी कार्यो से अधिक महत्वपूर्ण और महानतम काम है।

अनुवाद आदान-प्रदान के सशक्त माध्यम के बतौर सांस्कृतिक एकीकरण (सांस्कृतिक सेतू) उपलब्धि है। अनुवाद से ही संसार का साहित्य, संस्कृति, प्रगति और परंपराओं तथा रीति-रिवाज आदि की जानकारी संभव है। विश्व की एकता की संकल्पना तब तक यथार्थ में परिणिति नहीं हो सकती है, जब तक कि विभिन्न समाजों और राष्ट्रों के नागरिकों को एक-दूसरे के बारे में जानकारियाँ उपलब्ध नहीं होती है। और जानकारियों का आदान-प्रदान का एक सशक्त जरिया अनुवाद ही हो सकता है। इसलिए, अनुवाद को विश्वि-संपर्क माध्यम के रूप में स्थापित करना अनुवाद अनुशासन की एक अहम जरूरत है।

अनुवाद में, भाषिक और भाषातर संकेतों का प्रयोग होता है। भाषेतर अनुवाद में भाषा की दो संरचनाएँ होती है। पहली, बाहय और दूसरी आंतरिक। बाहय संकेत में किसी प्राणी का चित्र किसी भाषा के शब्द में अनुवाद है। आंतरिक संकेत में मन में उदित संवेदना की अभिव्यक्ति होती है। जैसे, किसी दुर्घटना को देखकर, प्रकृति के किसी दृश्य को देखकर, या किसी वस्तु को हाथ लगाकर। इस प्रकार, अनुवाद शब्द की व्यापक परिधि में तीनों कोटियों के अनुवादों का स्थान है। समभाषिक अनुवाद, अन्यभाषिक अनुवाद और अंतरसंकेतपरक अनुवाद। इन तीनों के अपने अपने सैध्दांतिक आधार है।

निष्कर्ष -

अनुवाद मूल कृति में निहित बिंबो, प्रतीकों संदर्भो को तलाशता है, कृति के समग्र सांस्कृतिक संदर्भो को पहचानता है, उन्हें व्याख्यायित करता है और लक्ष्य भाषा में उन्हें पुनः सृजित करता है। इस पुनः सृजन की प्रक्रिया में वे कभी तो अपने मूल रूप में ही, भाषांतरित होकर आ जाते है, कभी रूपान्तरित होकर आते हैं। (इस रूपान्तरण की प्रक्रिया में अनुवादक कभी-कभी भटक भी जाता है।) इस विवेचन के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है

कि, अनुवादक मात्र पुनर्रचना नहीं करता वरन सफल अनुवादक बहुत बडी सीमा तक कलाकार होता है और सफल अनुवाद, कला।

संदर्भ ग्रंथ -

1. बासनेट, सूसान, ट्रांसलेशन स्टफडीज, पृ. १३

2. सेवरी, थियोडोर, द आर्ट ऑफ ट्रांसलेशन, लंदन, केप १९५७

3. जैकोब्स्न,एरिक,ट्रांसलेशन,अ ट्रेडिशनल क्राफ़्ट,नॉर्दिस्कफ फॉर्लाफ,कोपेनहेगन, १९५८

4. निदा, यूजेन, ट्रवर्ड ए साइंस ऑफ ट्रांसलेटिंग, ई जी ब्रिल,लिदेन, १९६४

5. गोस्वासमी,कृष्णरकुमार,अनुवादविज्ञानकीभूमिका,राजकमलप्रकाशन,नईदिल्ली,,२००८

6. कुमार, सुरेश, अनुवाद विज्ञान की भूमिका, वाणी प्रकाशन, नई दिल्लीई, २००७

7. गोपीनाथन, जी., अनुवाद, सिध्दांित और प्रयोग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००१

8. टंडन,पूरनचंद्र और सेठी,हरीश कुमार,अनुवाद के विविध आया,तक्षशिला प्रकाशन,नईदिल्लीा,२००५

9. वारल्फाम विल्सव, नॉलेज एंड स्किल्सा इन ट्रांसलेटस बिहैवियर, जॉन बेंजामिन पब्लिशिंग कंपनी, अमस्टृर्डम, १९९६

10. शर्मा,रातमणि,अनुवाद विज्ञान, सिध्दां त और प्रयोगिक संपर्क, संजय बुक सेंटर, वाराणसी

11. पालीवाल, रीतारानी, अनुवाद प्रक्रिया एवं परिदृश्यि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली ,२००४

12.उपाध्यादय,भगवत शरण, भारतीय संस्कृरतिके स्ञोत, पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, नईदिल्ली, २००३

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के अनुवाद की समस्याएँ

मिलिंद पाटिल

अनुवाद यानि कि एक स्त्रोत भाषा से दूसरी लक्ष्य भाषा में किसी पाठ या कथन को ले जाने को अनुवाद कहा जाता हैं। इस अनुवाद में उस स्त्रोत भाषा के सभी भाव, विचार एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के परिवेश के साथ उसकी व्याकरणिक संरचना एवं गठन को भी लक्ष्य भाषा की प्रकृति अनुसार ढालना पड़ता हैं। तभी वह एक अनुवाद कहलाता है। यानि की लक्ष्य भाषा की प्रकृति अनुसार स्त्रोत भाषा का अनुवाद करना होता है जहाँ मूल का अर्थ बना रहे जोकि लक्ष्य भाषा पाठक को मूल पाठ में लिखे पाठ का अर्थ समझ सके। यह संपूर्ण कार्यकलाप पाठक को ध्यान में रखकर किया जाता है जहाँ मूल पाठ का अनुवाद होता है। अगर इसे विद्वानों की परिभाषा में परिभाषित करें तो कह सकते हैं की- "मूलभाषा के संदेश के समतुल्य संदेश को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने की क्रिया को अनुवाद कहते है। संदेशों की यह मूल्य समता पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से तथा निकटतम और स्वाभाविक होती है"- नायडा। नायडा के इस कथन से ज्ञात होता हैं कि अनुवाद में मूलभाषा पाठ के संदेशों को यथावत दूसरी लक्ष्य भाषा पाठ में रखना होता है। इसी अनुवाद संकल्पना ने सिद्धांत को भी जन्म दिया जहाँ विश्लेषण, अंतरण एवं पुनर्गठन को एक स्त्रोत भाषा से दूसरी लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय की जाने वाली प्रक्रिया को कहाँ जाता है। इस नायडा के मूल सिद्धांत के आधार पर ही अन्य विद्वानों ने भी सिद्धांत की रचना की। यह सिद्धांत साहित्यिक और साहित्येतर पाठ पर भी लागू होता है।

इस परिभाषा को देखें तो अनुवाद का यह एक सिद्धांत है। परंतु सिद्धांत और प्रविधि की बात करें तो एक मूल भाषा पाठ को दूसरी लक्ष्य भाषा पाठ में अनुवाद करने में समस्याएँ उत्पन्न होती है। यहाँ अनुवाद को विभाजित करें तो पाते हैं कि यहाँ इसके दो रूप महत्त्वपूर्ण हैं- एक साहित्यिक है तो दूसरा गैर साहित्यिक यानि साहित्येतर। साहित्य में मानविकी से संबंधित सभी रचनात्मक साहित्य यानि कथा, कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास, काव्य, एकांकी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावर्णन, महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक काव्य, इ. का समावेश होता है वहीं साहित्येतर में तकनीकी, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सरकारी कामकाज की भाषा एवं कार्यालयों की भाषा का अंतर्भाव होता है। इन साहित्य के अनुवाद की ही चर्चा की जाती है जहाँ समस्या उत्पन्न होती है और समाधान निकालना होता है। यह समस्याएँ पाठ के अनुवाद के समय विभिन्न स्तर पर (जैसे शब्द, पद, पदबंध, व्याक्य एवं अर्थ) दिखाई देता हैं। इन समस्याओं को हल कर के ही आगे बढ़ा जाता है। तभी वह अनुवाद मूल का अर्थ देने में सक्षम होता है। वैसे तो अनुवाद के दों भाग साहित्यिक और साहित्येतर में अपनी-अपनी अलग समस्याएँ हैं।

वैसे तो अनुवाद की समस्या और समाधान की चर्चा तभी शुरू हुई जब विश्व में प्रथम अनुवाद का कार्य आरंभ हो गया। विश्व में अनुवाद की सुयोग्य शुरूआत यह बाइबल के अनुवाद से मानी जाती है जहाँ बाइबल के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किए जा रहे थे। परंतु उतरोत्तर ज्ञान की विभिन्न विधाओं का आविष्कार होना और उस ज्ञान को अन्य भाषी समाज तक पहुँचाने का कार्य अनुवाद का था। सो अनुवाद ने यह कार्य पूर्ण करने का संकल्प लिया और आज तक यह कार्य जारी है।

सारांश - अनुवाद सिद्धांत और संकल्पना के आधार पर जब साहित्यिक कृति का अनुवाद होता है तभी समस्या खड़ी होती है। एक स्त्रोत भाषा पाठ के सभी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों का अनुवाद दूसरी लक्ष्य भाषा पाठ में करना होता है। सैद्धांतिक रूप में कहने के लिए जीतना यह आसान है उतना ही यह कठिन कार्य है। किसी एक संस्कृति के प्रतीकों को किसी दूसरी संस्कृति के प्रतीकों में ढालना या अनुवाद करना संभव ही नहीं है। चूंकि हर एक संस्कृति के अपने-अपने प्रतीक होते हैं और इन प्रतीकों की अपनी-अपनी मान्यता होती है। इस मान्यता की स्थापना दूसरी संस्कृति में कर ही नहीं सकते। अपितु इसे फुट नोट के माध्यम से नीचे दर्शाया जा सकता है। कहने का तात्पर्य है कि मूल रूप में संस्कृतिक अभिव्यक्तियों का अनुवाद कठिन है।

परंतु इस सिद्धांत और संकल्पना के आधार पर जब साहित्यिक कृति का अनुवाद होता है तभी समस्या खड़ी होती है। पहले कथन के अनुसार एक स्त्रोत भाषा पाठ के सभी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों का अनुवाद लक्ष्य भाषा पाठ में करना होता है। सैद्धांतिक रूप में कहने के लिए जीतना यह आसान है उतना ही यह कठिन कार्य है। किसी एक संस्कृति के प्रतीकों को किसी दूसरी संस्कृति के प्रतिकों में ढालना या अनुवाद करना संभाव ही नहीं है। चूंकि हर एक संस्कृति के अपने-अपने प्रतीक होते हैं और इन प्रतीकों की अपनी - अपनी मान्यता होती है। इस मान्यता की स्थापना दूसरी संस्कृति में कर ही नहीं सकते। अपितु इसे फुट नोट के माध्यम से नीचे दर्शाया जा सकता है। कहने का तात्पर्य है कि मूल रूप में संस्कृतिक अभिव्यक्तियों का अनुवाद कठिन है।

सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में मूल रूप में त्योंहारों, पर्व, मान्यताएं इ. विषयों का अंतर्भाव होता है। इस त्योहार, पर्व, मान्यताओं अमान्यताओं का प्रभाव वहाँ के साहित्य पर देखा जा सकता हैं। अगर साहित्य की बात करें तो कथा, कहानी, कविता, कविता, नाटक, उपन्यास, काव्य, एकांकी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावर्णन महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक काव्य इ. में इन सांस्कृतिक अभिव्यक्तिओं को देख सकते है। इस सांस्कृतिक अभिव्यक्तिओं के माध्यम से ही संदेश को लक्ष्य भाषा में पहुँचाया जाता है। प्रस्तुत इस आलेख में साहित्यिक के सांस्कृतिक अभिव्यक्ति में आनेवाली समस्याओं की चर्चा की गई है।

काव्यानुवाद की समस्याएँ

वैसे तो कविता के अनुवाद को लेकर काफी विवाद रहा है। ऐसे बहुत सारे विद्वानों की धारणा यही हैं कि कविता का अनुवाद हो ही नहीं सकता। इसमें तो अनुवादक को वंचक भी कहा गया है। कविता का अनुवाद करना एक कठिन कार्य है किंतु यह असंभव भी नहीं है। विश्व में अभी तक कई हजार कविताओं का

अनुवाद किया गया हैं और अभी भी अनुवाद है और यह नित्य क्रम में चल रहा है। काव्यानुवाद एक तरह का भावानुवाद ही होता है जिसमें ज्यादा तर मामलों में कवि ही अनुवाद करता है या कविता की संवेदना वाला व्यक्ति अनुवाद करता है। इस अनुवाद में संवेदना का होना अति आवश्यक होता है। इस कारण काव्यानुवाद में तठस्थता बनाए रखना बड़ी ही समस्या है। कविता में शब्द के स्थान पर प्रतीकों का प्रयोग बहुतायत में किया जाता है। इसमें एक संस्कृति के प्रतीक को दूसरे संस्कृति के प्रतीक के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता। चूंकि हर एक संस्कृति के प्रतीक भिन्न होते है और इनकी अपनी मान्यताएं होती है।

इस सब के अलावा छंदबद्धता, बिम्ब विधान, कल्पना, मधुरता, लय, संरचना, अलंकारादि भी काव्यानुवाद को जटिल कर समस्याएं पैदा करते हैं। अनुवाद करते समय मूल पाठ के इन गुणों को लक्ष्य पाठ में उतारना भी समस्याओं का जनक होता है।

उदाहरण के लिए अगर भारतीय परिप्रेक्ष्य में कोई कवि गंगा के ऊपर कविता करता है और गंगा का भाव उस कविता में आता है और उसका दूसरी भाषा में जब अनुवादक अनुवाद करता हैं तो उस दूसरी भाषा में गंगा जैसी नदी का भाव आना जरूर है या उस दूसरी भाषा में गंगा जैसी पवित्र और मान्य नदी का प्रतिक खोजना जरूरी होगा। अगर गंगा जैसी प्रतीक नहीं मिला और वैसे ही उसे रखा गया तो अलग से लक्ष्य भाषा पाठक को गंगा की महत्ता के विषय में समझाना होगा।

शैली का रक्षण

कविता में शैली का अनुरक्षण भी एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। कविता का अनुवाद गद्य में किया गया हो या पद्य में लेकिन अनुवादक को भाषागत शब्द चयन चयन में अननुवादिता की स्थिति तैयार करता है। कवि अपने कविता में शब्दों का चयन यह चुन-चुन कर करता है जिसमें ऐसे कुछ शब्द भी होते हैं जिसका कोशीय अर्थ तो मिलता है परंतु कुछ ध्वनिगत अर्थ भी होता है। इस कारण हर कविता का अनुवाद कोशार्थ स्तर पर ही होता है क्योकि हर एक भाषा में समान स्तर पर शब्द नहीं होते जिनका अर्थ एवं संबंध एक ही स्तर पर हो। इस स्थिति में लक्ष्य भाषा की प्रकृति अनुसार किसी एक शब्द या पर्याय को लिया जाता है। इसके निष्कर्ष में कह सकते हैं कि कविता का अनुवाद करना एक कठिन कार्य है किंतु यह असंभव कार्य भी नहीं है।

मिथक

प्रत्येक देश की भाषा में प्रयुक्त मिथक उनके अपने होते हैं, जहाँ उनकी कुछ मान्यताएं होती हैं। इन मिथकों के द्वारा ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाती का जातीय अवचेतन अंतरित होते रहता है। इन मिथकों का दूसरी लक्ष्य भाषा में उतार पाना बहुत ही कार्य है।

नाट्यानुवाद की समस्याएं

मंचनीयता की पूर्व-शर्त से जुड़ी यह विधा कभी-कभी काव्यानुवाद जितनी ही जटिल हो जाती है क्योंकि नाट्य विधा का मंचन पक्ष इसे बहुआयामी बना देता है। नाटक का लक्ष्य पूरा हो इसके लिए लेखन से बाहर के कई वाह्य तत्व जैसे अभिनेता और निर्देशक भी इसमें शामिल होते हैं। मंचनीयता को पूरा करने के लिए नाटककार को

रंगमंच की आवश्यकताओं को दिमाग में रखना पड़ता है। यह इसकी रचना प्रक्रिया को जटिल बना देता है।

नाटक का अनुवाद करने में उसकी संवादात्मक प्रकृति को बनए रखना एक समस्या है क्योंकि उसके पात्रों के समस्त गुणों को लक्ष्य भाषा के पात्रों में ठीक उसी तरह से दिखना चाहिए। समस्या यह है कि वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र संस्कृति की भिन्नता के प्रतीक होते हैं और उनको मूल रचना से लक्ष्य रचना में पुर्नजन्म लेना होता है। यह अनुवादक के लिए समस्याजनक हो जाता है क्योंकि उदाहरण के लिए भारतीय परिवेश में प्रेमचंद के उपन्यासों में चर्चित पात्रों के चरित्र को दर्शाने के लिए अंग्रेज़ी में उसी प्रकार का कोई कार्य प्रतीक खोजना होगा।

इसी तरह से भारतीय प्ररिप्रेक्ष्य में नौकर व स्वामी के बीच के संवाद को यूरोपीय भाषाओं में नौकर द्वारा स्वामी के नाम/उपनाम के साथ 'मिस्टर' पूर्वसर्ग लगाकर संवादों को प्रस्तुत किया जा सकता है लेकिन हिंदी में ऐसा संभव नहीं है। बल्कि हिंदी में ऐसा करना नाटक के प्रवाह को बाधित करेगा व पढ़ने वालों को यह अजीब सी अनूभूति देगा।

मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भी नाटकों में व्यापक प्रयोग होता है और इन्हें लक्ष्य भाषा में पुनःस्थापित करना एक कठिन कार्य साबित होता है। नाट्यानुवाद की सफलता के लिए अनुकूल मुहावरों और लोकोक्तियों का लक्ष्य भाषा में चयन करना जरूरी होता है। अभिनेता नाटक में संवादों के माध्यम से भावों को प्रकट करता है, अर्थात इसमें शब्दों का चयन यह सोच कर किया जाता है कि अभिनेता संवाद प्रस्तुत करते समय किस शब्द को कैसे बोलेगा और उच्चारण की ध्वनि के भाव क्या होंगे इनकी स्थिति स्पष्ट करनी होती है। स्त्रोत भाषा के संवादों के इस भाव या विशेषता को अनुवादक द्वारा लक्ष्य भाषा में उतार पाना एक विकट समस्या होती है।

कथानुवाद की समस्याएं

कथा साहित्य में कहानी, लघु कथा, उपन्यास का अंतर्भाव होता है। कविता तथा नाटक की ही तरह कहानी, उपन्यास अथवा कथा साहित्य में सर्जनात्मक का स्तर किसी भी रूप से कम या अधिक नहीं होता है, इसीलिए कथानुवाद किसी भी तरह से सामान्य प्रकिया नहीं है। कथा लेखन के शैली का अपना एक विशिष्ट एवं शैलीगत प्रारूप होता है। इसमें साहित्य की अन्य विधाओं के गुण भी समाहित रहते हैं। जिस तरह से नाटक के पात्र अपनी संस्कृति व पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसी तरह से कथानुवाद में भी पात्रों की अपनी एक भूमिका होती है।

कथा साहित्य में पूरे पाठ के अर्थ को एक इकाई के रूप में प्रस्तुत व ग्रहण करने से ही उसका अर्थ स्पष्ट होता है। यानि कि एक संपूर्ण पाठ श्रुंखला के रूप में होता है जो आपस में एक दूसरे के साथ जुड़कर अर्थ प्रदान करता है। इस पाठ के तालमेल को लक्ष्य भाषा में अनुवाद करते समय कायम रख पाना एक समस्या के रूप में होता है।

साहित्य की अन्य विधाओं के अनुवाद की तरह ही इस विधा में भी अनुवादक को कथ्य के विभाजन तथा शिल्पगत प्रयोग पर चिंतन मनन करना पड़ता है। अनुवादक को लक्ष्य भाषा में अनुवाद करेट समय कभी कुछ जोड़ना पड़ता है तो कभी कुछ हटाना पड़ता है। इस सारे कार्य और गतिविधि के साथ उसे मूल पाठ के भाव तथा अर्थ को यथावत लक्ष्य भाषा में बनाए रखना पड़ता

है। स्रोत व लक्ष्य भाषा में सही प्रतीकों का चयन कथा अनुवाद में उतना ही कठिन और समस्याप्रद होता है जैसा अन्य अनुवाद में होता है। किसी हिंदी कहानी में हिंदु विवाह के सभी क्रिया कलापों को प्रतीक रूप में दूसरी भाषा में उतारना जहां पर इस तरह के प्रतीकों की रचना की गई हो, यह मुश्किल होता है। ऐसे स्थिति में फुट नोट या विश्लेषित कर बताना पड़ता है। अन्य विधाओं की तरह इस तरह से कथा साहित्य के अनुवाद की समस्याएँ होती है।

अन्य विषय

इन विषयों के अलावा भी अन्य सृजनात्मक साहित्य में भी अनुवाद की समस्याएँ होती है। चूंकि इन विषयों में विधागत एवं स्वरूपगत भिन्न -भिन्न क्षेत्र होते है। इस कारण इनके अनुवाद की समस्याएँ भिन्न होती है। इन विषयों में मुख्य तौर पर आलोचना, निबंध, आत्मकथा, जीवनी, यात्रा साहित्य, रेखाचित्र,रिपोर्ट, डायरी, इ. का समावेश होता है। इन विषयों में प्रयुक्त शैली भाव प्रधान होता है। इस कारण इन विषयों के अनुवाद की समस्याएँ होती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि किसी भी सांस्कृति के साहित्य में उस संस्कृति के प्रतीक एवं मान्यताओं का भरपूर मात्रा में प्रयोग किया जाता है। इन प्रतीकों का अनुवाद दूसरी संस्कृति के साहित्य के पाठ में करना कठीण कार्य होता है। यहाँ अनुवादक को फुट नोट के माध्यम से या अन्य रूप में विश्लेषित करके देना पड़ता है। कहने का तात्पर्य है कि एक अनुवादक के सामने किसी कृति के दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय सांस्कृतिक अभिव्यक्तिओं को किस तरह से दूसरी भाषा के पाठक को अवगत कराया जाए, यह प्रश्न बना रहता है।

संदर्भ

1. जादौन, डॉ. रामगोपाल सिंह : प्रयोजनमूलक भाषा और अनुवाद, 2010, आकाश पुब्लिशर्स, गाजियाबाद।
2. जादौन, डॉ. रामगोपाल सिंह : अनुवाद विज्ञान, 2011, शांति प्रकाशन, रोहतक।
3. नौटियाल, डॉ. जयंती प्रसाद : अनुवाद सिद्धांत एवं व्यवहार, 2006, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. गोपीनाथन. जी : अनुवाद: सिद्धांत एवं प्रयोग, 2001, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. अग्रवाल, कुसुम : अनुवाद शिल्प : समकालीन संदर्भ, 2008, साहित्य सहकार, दिल्ली।
6. तिवारी, भोलानाथ : अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत एवं प्रविधि, 2009, किताबघर, नई दिल्ली।
7. रणसुभे, सूर्यनारायण : अनुवाद का समाजशास्त्र, 2009, अमित प्रकाशन, गाज़ियाबाद।

प्रयोजनमूलक क्षेत्र में अनुवाद की समस्याएँ

बृजेश कुमार चौहान

अनुवाद एक ऐसा विषय है जिसकी आवश्यकता हर क्षेत्र में है, जिस प्रकार प्रयोजनमूलक क्षेत्रों का विकास हो रहा है, अनुवाद की आवश्यकता और बढ़ती जा रही है। कोई भी भाषा सिर्फ साहित्यिक क्षेत्र तक सीमित नहीं होती उसके अनेक प्रयोजनमूलक क्षेत्र होते हैं, जिसमें भाषा का प्रयोग किया जाता है। उसका अन्य भाषाओं में अनुवाद भी किया जाता है। भूमंडलीकरण के दौर में प्रयोजनमूलक क्षेत्रों का काफी विस्तार हुआ है। प्रयोजनमूलक क्षेत्र के अंतर्गत वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी, विधि, प्रशासनिक, कार्यालयी, वाणिज्य, व्यावसायिक, विज्ञापन, मीडिया, बैंकिंग, चिकित्सा क्षेत्र आदि आते है। इन क्षेत्रों में अनुवाद कार्य हो रहा है। विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में ज्यादा तर सामग्री अंग्रेज़ी में उपलब्ध होती है, किन्तु अनुवाद के माध्यम से अन्य भाषाओं में सामाग्री उपलब्ध कराई जाती है, जिससे सभी पाठक वर्ग को पढ़ने में आसानी हो। विज्ञान के क्षेत्र में नित-दिन नई-नई खोजें हो रही हैं, जैसे अन्तरिक्ष यान, ग्रहों की खोज, अंतरिक्ष में स्पेस स्टेशन बनाना आदि खोजों की सहायता से मनुष्य कई चीजों को समझ रहा है, इसी प्रकार नए रहस्य खोज रहा हैं, जिसमें नई-नई शब्दावली का विकास हो रहा है। अनुवादक के सामने शब्दावली को ले कर समस्या बनी रहती है। वैज्ञानिक अनुवाद में साहित्यिक भाषा का प्रयोग नहीं होता है। वैज्ञानिक क्षेत्र में अनुवाद करते समय इस क्षेत्र में प्रयोग होने वाली भाषा का प्रयोग किया जाता है। अनुवादक वैज्ञानिक विषयों का तभी अनुवाद कर सकता है, जब उसके पास वैज्ञानिक क्षेत्र की जानकारी हो। तकनीकी क्षेत्र के अनुवाद में भी अनुवादक को शब्दावली की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए, जिससे वह तकनीकी क्षेत्र का अनुवाद कर सकें। विधि कार्यों से संबंधित हिंदी में न्यायालय और कानून संबंधी साहित्य शामिल है। इसमें विधेयक, अधिनियम, क़रारनामा आदि साहित्य आता है और प्रत्येक क्षेत्र का भाषाई रूप अलग-अलग होता है। विधि क्षेत्र में आनेवाले विषयों का अनुवाद करते समय पारिभाषिक शब्दावली और संरचना पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है। "फारसी और अंग्रेज़ी के प्रचलित शब्दों को यथारूप ही हिंदी अनुवाद में प्रयोग करना उचित है। विधि साहित्य में प्रचलित हिंदी का स्वरूप साहित्यिक हिंदी के रूप में नहीं है। विधि साहित्य में प्रयुक्त शब्द अन्य भाषाओं के हैं, लेकिन उनके अर्थ आम जनता के द्वारा जाने और समझे जा रहे हैं, ऐसे में इन शब्दों के हिंदीकरण की आवश्यकता नहीं है।" विधि के क्षेत्र में ज्यादा तर काम अंग्रेज़ी भाषा में होता है। इस क्षेत्र में उपलब्ध साहित्य अनुवाद के माध्यम से ही उपलब्ध हो पाया है।

प्रशासनिक और कार्यालयी क्षेत्र में जो अनुवाद होता है, उनकी अपनी शब्दावली और वाक्य रचना होती है, उसमें अनुवाद द्वारा दूसरी भाषा की शब्दावली को समझने में मदद मिलती है। वाणिज्यिक और व्यावसायिक क्षेत्र में जो भाषा का प्रयोग होता है, वह पूरी तरह कारोबारी भाषा होता है। इन क्षेत्रों में भी अनुवाद कार्य हो रहा है। समाचार पत्रों में वाणिज्यिक भाषा का बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग हो

रहा है। बाजार भाव, में उतार चढ़ाव की खबरें समाचार पत्रों में छपती रहती हैं, जैसे- सोना गरम, चाँदी लुढ़की, चाँवल नरम, दाल गरम, प्याज ने रुलाया आदि, प्रकार की शब्दावली का प्रयोग होता है, जिसमें अनुवादक को क्षेत्रों की शब्दावली को समझ कर अनुवाद करना होता है, यदि अनुवादक इन शब्दों के प्रयोगों या अर्थों को नहीं समझ पाया तो वह अनुवाद करने में सक्षम नहीं हो सकता, उदा. अगर अनुवादक को यह समझ नही आया की यहाँ पर प्याज ने रुलाया का अर्थ हैं प्याज के दामों में हुई वृद्धि न कि प्याज ने किसी इन्सान को मार के रुलाना। यही अंतर अगर अनुवादक नहीं समझ पाए तो वह सफल अनुवाद नहीं कर सकता। मीडिया और विज्ञापन के क्षेत्र में भी अनुवाद का महत्त्व बढ़ रहा है| मीडिया का क्षेत्र ऐसा है, जिसमें सूचनाओं को कई भाषाओं में लोगों तक संप्रेषित करने के लिए अनुवाद सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रशासनिक और कार्यालयी क्षेत्रों में कामकाज के लिए एक निश्चित शब्दावली होती है। कार्यालयी भाषा की संरचना साहित्य से भिन्न है। "जिसके अंतर्गत सरकार को देश की आर्थिक, राजनौतिक सुरक्षात्मक, शैक्षणिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि दृष्टियों से प्रशासन का भार संभालना पड़ता है।" कार्यालयी अनुवाद करते समय अनुवादक को ध्यान देना जरूरी होता है कि मूल पाठ की सामग्री किस प्रकार की है, यदि अनुवादक मूल पाठ की सामग्री को अच्छे से समझ लेगा तो अनुवाद करने में उसे कोई परेशानी नहीं होगी| कार्यालयी भाषा की वाक्य रचना सुव्यवस्थित या क्रमबद्ध होती है, यह वाक्य रचना हिंदी या अंग्रेज़ी में होती है किन्तु उसका स्वरूप अंग्रेज़ी का होता है। "कार्यालयी ढांचा अंग्रेजों से विरासत में मिला है इसी कारण इसका अनुवाद भी अंग्रेज़ी से हिंदी में आया है।" हर कार्यालयी क्षेत्र की अपनी भाषा होती है, जिसमें प्रसासन से संबंधित कार्य होता है। किंतु अंग्रेज़ों के आगमन से भाषा में परिवर्तन से भाषा अंग्रेज़ी हो गई जिससे लोगों को कानून की भाषा समझने में कठिनाई होती थी। इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए विधि क्षेत्र में अनुवाद कार्य होने लगा।

भूमंडलीकरण के दौर में प्रयोजनमूलक क्षेत्र में निरंतर विकास हो रहा है| जिसमें नए-नए शब्द और नई अभिव्यक्तियाँ सामने आ रही है, जिससे अनुवादक के सामने चुनौती का विषय खड़ा होने लगता है। प्रयोजनमूलक क्षेत्रों का अनुवाद करते समय अनुवादक के सामने कई तरह की समस्याएँ आती हैं। जैसे- विज्ञान की भाषा में पानी को H2O कहते हैं, जबकि सामान्य भाषा में पानी, जल, नीर आदि कहते हैं| प्रयोजनमूलक क्षेत्रों का अनुवाद करने से पहले अनुवादक को विषय और पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान होना आवश्यक होता है, अन्यथा अनुवादक के सामने समस्याएँ उत्पन्न होती है। हर भाषा की प्रकृति दूसरे भाषा से भिन्न है। हर भाषा की संरचना, शब्दावली, वाक्य रचना अलग होती है, जरूरी नहीं की हर अनुवादक सभी भाषा का ज्ञाता हो और सभी क्षेत्रों का ज्ञान उसे हो, अनुवादक को सबसे पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि जिस क्षेत्र का अनुवाद कर रहा है, उस क्षेत्र की भाषा को वह अच्छे से समझे और पारिभाषिक शब्दावली पर अच्छी पकड़ बनाए, उसके बाद अनुवाद करें|

पर्यायों को लेकर अनुवादक के सामने काफी समस्या आती है, जिसका अनुवाद करने में अनुवादक अर्थ का अनर्थ करने लगता है। प्रयोजनमूलक क्षेत्रों में ऐसे कई शब्द है, जो दूसरे क्षेत्रों में अलग अर्थ देते है, जिसका अनुवाद करने में अनुवादक के सामने काफी समस्याएँ

आती है| यदि अनुवादक किसी बैंकिंग क्षेत्र के पाठों का अनुवाद कर रहा है, तो सबसे पहले उसे बैंकिंग क्षेत्र से संबंधित शब्दावली को अच्छे से समझना होगा, तभी वह बैंकिंग पाठों का अनुवाद कर सकता है| अन्यथा उसके सामने शब्दावली और भाषिक संरचना को लेकर अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होगी| अनुवादक को भाषा की जानकारी के साथ-साथ विषय की जानकारी होना आवश्यक है| तब जाकर वह सही अनुवाद कर सकता है| आम बोल-चाल की भाषा में पर्याय को लेकर काफी समस्या आती है जैसे- कमल के कई पर्याय हैं, कमल- पंकज, जलज आदि। जल का - पानी, नीर, अमृत, अंबु, तोय आदि।

यदि अनुवादक किसी वैज्ञानिक पाठ का अनुवाद कर रहा है, तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि भाषा की जानकारी के साथ-साथ उसे विषय की भी जानकारी हो और वह अच्छा अनुवाद करें। अनुवाद करते समय यदि अनुवादक की विषय पर अच्छी पकड़ है, तो वह आसानी से अनुवाद कर सकता है। अन्यथा विषय का ज्ञान न होने के कारण अनुवादक सही अनुवाद नहीं कर सकता। विषय से संबंधित शब्दों के चयन में सतर्कता रखनी पड़ती है। अन्यथा उसके सामने अनेक समस्या आ सकती है। "प्राणीविज्ञान के तीन शब्द poison, venom, और toxin सामान्य पाठक के लिए तीनों शब्द के लिए एक अर्थ हो सकता है जहर किन्तु विषय विशेषज्ञों के लिए तीनों शब्द का भिन्न अर्थ है। प्राणिविज्ञान में poison का प्रयोग विष के लिए होता है रासायनिक प्रतिक्रिया के कारण भी हो सकता है, venom को साँप, बिच्छु मधुमक्खी आदि जीव धारियों के विष के रूप में लेते हैं और toxin के लिए आविष रखा गया है।" यदि अनुवादक विषय विशेषज्ञ होगा, तो इन शब्दों के अर्थ को समझ कर आसानी से अनुवाद कर लेगा| अन्यथा उसके सामने इन शब्दों को लेकर समस्या उत्पन्न होगी|

वाणिज्यिक क्षेत्र काफी विस्तृत है, इसमें अनेक प्रकार की अभिव्यक्तियाँ आती हैं। वाणिज्यिक क्षेत्र का अनुवाद करते समय अनुवादक को विषय पर अच्छी पकड़ रखना बहुत आवश्यक होता है, तभी अनुवादक सही अनुवाद कर सकता हैं अन्यथा शब्दावली को लेकर समस्या उत्पन्न होने लगती है, जैसे account के लिए हिंदी में 'लेखा' है लेकिन बैंकिंग क्षेत्र में 'खाता' शब्द का ही प्रयोग दिखाई देता है| credit के लिए 'शाख' या 'श्रेय' किन्तु व्यापार के क्षेत्र में 'ऋण' होता है| security का सामान्य अर्थ है 'सुरक्षा' किन्तु व्यापार के क्षेत्र में 'जमा' करना होता है| अनुवाद करते समय अनुवादक को इन पारिभाषिक शब्दों को ध्यान में रख कर अनुवाद करना आवश्यक होता है|

बैंकिंग क्षेत्र में अनुवाद करते समय पारिभाषिक शब्दावली को लेकर समस्या आती है, जैसे बही के लिए बैंक के क्षेत्र में (book) होता है और सामान्य अर्थ में book के किए किताब ऐसे कई शब्द हैं जिसका अन्य क्षेत्रो में दूसरा अर्थ निकलता है, जिससे अनुवादक के सामने शब्दावली को लेकर काफी समस्या आती है, जैसे- खाता (account) सामान्य अर्थ में विवरण, गणना, मांग (call) सामान्य अर्थ में पुकार, मियादी (fixed) व्यापार में अंतिम मूल्य, तिजोरी (chest) सामान्य अर्थ में सीना, विवरण (statement) अन्य विधि क्षेत्र में बयान होता है, निवल (Net) खेल के क्षेत्र में जल आदि| अनुवादक को यदि इन पारिभाषिक शब्दावली की अच्छी जानकारी है तो अनुवाद करने में कोई परेशानी नहीं होगी अन्यथा पर्याय को लेकर समस्या बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रयोजनमूलक हिंदी : माधव सोनटक्के, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, द्यितीय संस्करण, 2004.

2. अनुवाद विज्ञान कि भूमिका कृष्ण कुमार गोस्वामी राजकमल प्रकाशन, 2008.

3. प्रयोजनमूलक हिंदी के विविध रूप : डॉ. रजेंदर मिश्र , राकेश शर्मा –तक्षशिला प्रकाशन प्रथम संस्कारण 2005.

4. प्रयोजनमूलक हिंदी के विविध रूप : डॉ. राजेंद्र मिश्र, राकेश शर्मा -तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रयोजनमूलक हिंदी : विनोद गोदरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007.

5. अनुवाद सिद्धांत की रुपरेखा : सुरेश कुमार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005.

6. प्रयोजनमूलक हिन्दी–संदर्भ और प्रयुक्ति विश्लेषण : आर.एस. सर्राजू, मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 2006.

संप्रेषण में कोड मिश्रण एवं कोड परिवर्तन

नेहा मनोहरराव सूपारे

जब मनुष्य संप्रेषण करता है तो वह भाषा प्रयोग करते समय एक भाषा में दूसरी भाषा या भाषा की बोलियों के तत्वों को मिला कर प्रयोग करता है, तो इस भाषिक स्थिति को कोड-मिश्रण कहते हैं। जब कोई वक्ता मंच पर व्याख्यान या भाषण देता है, तो वक्ता की जिस भाषा पर ज्यादा पकड़ होती है, उसके प्रयोग के साथ दूसरी भाषा के कोड़ों का प्रयोग बीच-बीच में करता रहता है, जिससे वह श्रोता को अपने व्याख्यान में सकेंद्रित रखता है| कोड मिश्रण वह होता है जो एक भाषा में दूसरी भाषा के तत्वों मिला देना तथा कोड परिवर्तन में एक भाषा बोलते-बोलते दूसरी भाषा के वाक्य बोल जाना| कोड परिवर्तन में वाक्य के बीच में मिश्रण नहीं किया जाता है| एक भाषा के वाक्य को बोलते-बोलते दूसरी भाषा का पूरा का पूरा वाक्य बोल

जाना कोड परिवर्तन कहलाता है, जबकि कोड मिश्रण में वाक्य के बीच में दूसरी भाषा या बोली का प्रयोग किया जाता है|

किसी भी भाषा का कोड-मिश्रण चार प्रकार से हो सकता है, जैसे – भाषा का भाषा में किया जाने वाला मिश्रण, भाषा में बोली का मिश्रण या बोली में दूसरी बोली का मिश्रण या बोली में किसी भाषा का भी मिश्रण किया जाता है| दो या दो से अधिक भाषाओं के प्रयोग की क्षमता रखने वाला-समाज अपने भाषा व्यवहार में जो अपने विचारों को समाज में इस प्रकार व्यक्त करना चाहता है कि वह हमेशा आकर्षण का केंद्र बना रहे| इस लिए वह सम्प्रेषण करते समय भाषा में अन्य भाषाओं का कोड मिश्रण करता रहता है| जब व्यक्ति अपने घर-परिवार में भाषा का प्रयोग करता है, तो वह अनौपचारिक भाषा का प्रयोग करता है, जब वह अपने पेशे से जुड़े लोगों से मिलता है, तब वह औपचारिक भाषा का प्रयोग करता है| भारत में मुख्यतः हिंदी और अंग्रेज़ी के साथ ही क्षेत्र विशेष की भाषा बोली जाती है| जिसमें हर भाषा में दूसरी भाषा का कोड-मिश्रण पाया जाता है| जब दो मित्र एक-दूसरे से मिलते है तब वह कोड़-मिश्रित भाषा का ही प्रयोग ज्यादा करते है|

उदा. मूवी देखने चलेंगे|

मार्केट जाना है|

क्या तुम मेरे साथ डिनर पर चलोगे?

आज का क्या प्लान है?..... आदि|

जब वक्ता-श्रोता के बीच कोड समान हो तो संप्रेषण के लिए स्थिति और संदर्भ के अनुसार वे दोनों एक कोड से दूसरे कोड और दूसरे से पहले कोड के द्वारा भाषा के माध्यम से संप्रेषण करते रहते है| कोड मिश्रण और कोड परिवर्तन को रोनाल्ड ने इस प्रकार समझाया है –"जब

द्विभाषिक आपस में इस प्रक्रिया से जुडते है तो वास्तव में वे एक तीसरे कोड का प्रयोग कर रहे होते है।"

रंगमंच से जुड़ा व्यक्ति या कोई व्यक्ति जो व्याख्यान या भाषण दे रहा हो, वह श्रोताओं को अपने साथ बांधकर रखने के लिए ऐसी भाषा का ही प्रयोग करता है, जो श्रोता सुनना चाहते हो, या जिससे वो परिचित हो। जब कोई नाटक या व्याख्यान चल रहा हो, तब उसे सुनने के लिए यह आवश्यक नहीं कि किसी भी एक ही भाषा के श्रोता वहा मौजूद हो, उस समय सभी श्रोताओं को अपने साथ बांधे रखने के लिए मिली-जुली भाषा का प्रयोग करता है।

जब किसी वस्तु या उत्पाद को समाज तक पहुंचाना होता है तब मनुष्य तकनीकी की सहायता लेता है। वह अपने वस्तुओं को इंटरनेट या प्रसार माध्यमों की सहायता से लोगों तक पहुंचाता है। भारत एक बहुभाषी देश है इस कारण किसी भी वस्तु को जब समाज तक पहुंचाया जाता है, तब उसे कई भाषाओं में अनूदित कर या दो या दो से अधिक भाषाओं के कोड़ का मिश्रण कर के अधिक आकर्षित बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यह इसलिए किया जाता है कि जब वह वस्तु इंटरनेट या प्रसार माध्यमों की सहायता से समाज तक पहुंचे तो समाज को वह भाषा समझने में सुविधा हो और वह वस्तु समाज को अपनी ओर आकर्षित कर सकें, जिससे वह लोगों में अपना स्थान बनाए रख सकें।

भाषा के विभिन्न रूप है, जिससे व्यक्ति अपने विचारों को प्रकट करता है, जैसे – बोल-चाल की भाषा – इसमें मनुष्य किसी भाषा का जिसे वह जन्मजात उपहार स्वरूप मिली हो या समाज द्वारा मिली हो, उसका प्रयोग करता है। कई व्यक्ति जन्म से ही एक साथ दो या दो से अधिक भाषा-भाषी लोगों के बीच में रहने के कारण दो या उससे अधिक भाषाएँ एक साथ सिखाता है, किन्तु इन भाषाओं के साथ वह इन भाषाओं से बनी कोड़-मिश्रित भाषा का भी प्रयोग करने लगता है, जो उससे संबंधित बहुभाषी समाज में प्रचलित हो जाती है।

> "सैद्धांतिक धरातल पर कोड़ मिश्रण भाषा के चार स्तरों पर होता है – इकाई के स्तर पर, वाक्य के स्तर पर, मुहावरें के स्तर पर और संकरता के स्तर पर।" जैसे – भात, खाना, माहुर, खटना, लतियाना..... आदि। क्रियाएँ जो बोलियों के साथ-साथ हिंदी वाक्य-रचनाओं में भी प्रयोग की जाती है।

एक भाषिक कोड़ के अंतर्गत एक ही भाषा प्रयोग करते समय वह उस भाषा से संबंधित बोलियों का प्रयोग निरंतर करता रहता है। संप्रेषण कर्ता या श्रोता इस बात पर कितना गौर करते हैं या नहीं करते यदि इस पर गंभीरता से विचार किया जाए तो बात स्पष्ट हो जाएगी। यदि हिंदी भाषा का ही सिर्फ उदाहरण ले तो उसमें अवधि, ब्रज, भोजपुरी आदि भाषाओं के कोड़ का प्रयोग निरंतर दिखाई देता है।

जैसे – हिंदी भाषा में जो बोलियाँ है उनकी इकाइयों के शब्दों को भी हिंदी में सम्मिलित किया जाता रहा है। शिक्षित समाज बोली-समुदायों से जुडने के लिए ऐसी मिश्रित भाषा का प्रयोग करता है। साथ ही बोली समुदाय इस प्रकार का कोड़ मिश्रण अपनी दैनंदिन भाषा में आदतों के रूप में करता है। शिक्षित समुदाय इस प्रकार के कोड़ मिश्रण का प्रयोग इसलिए भी करते है, ताकि बोली

समुदायों से अपने आप को जोड़ने मे उन्हे सुविधा हो| भाषा के इस कोड़ मिश्रण को शिक्षित समुदाय स्थितिजन्य कोड़ मिश्रण भी कहते हैं, जिसका प्रयोग क्षेत्रीय भाषा या बोली समुदायों में किया जाता है| हिंदी भाषा में हिंदी कि उपबोलियों का हस्तक्षेप दिखाई देता है, जिसमें अन्य बोलियों में प्रयुक्त कई शब्दों का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है, जैसे वह उसी भाषा के शब्द हो। "सैद्धांतिक धरातल पर कोड़ मिश्रण भाषा के चार स्तरों पर होता है – इकाई के स्तर पर, वाक्य के स्तर पर, मुहावरें के स्तर पर और संकरता के स्तर पर|" जैसे – भात, खाना, माहुर, खटना, लतियाना..... आदि| क्रियाएँ जो बोलियों के साथ-साथ हिंदी वाक्य-रचनाओं में भी प्रयोग की जाती है| उसने भात खाया, जहर माहुर खा के उलट गया..... आदि| इसी प्रकार मुहावरों के स्तर पर कह सकते है – टोटका कर रहे हो क्या?, तुम तो बहुत अफलातून हो, वो तो सर पर पहाड़ ले के पैदा हुआ है..... आदि|

कभी-कभी कुछ शब्दों के सुविधा और उच्चारण के अनुसार भी दूसरी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वे शब्द प्रयोगनुसार काफी प्रचलित हो जाते हैं। "इस मिश्रण में अंग्रेज़ी संज्ञा शब्दों की संख्या सबसे अधिक है। नाते-रिश्तों के नामों में अंकल, आंटी, वाइफ, कज़िन, नेफ़्यू, इन-लॉज आदि।"

'अंकल आए हैं।

आंटी घर पे नहीं है।

श्याम की वाइफ की तवियत खराब है।

ये तुम्हारे कज़िन है?'

रंगों के नामों के साथ भाषा प्रयोग करते समय कोड मिश्रण ज्यादा दिखाई देता है,

जैसे – 'कौन सा कलर है?

रेड कलर का ड्रेस लेना।'

खेल-कूद के क्षेत्र में खेल को रोचक बनाने के लिए और लोगों को आसानी से समझ में आ सकें, इसलिए जो समाज में प्रचलित शब्द है, उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जाता है। खेल-कूद के क्षेत्र में भाषा को रोचक बनाने के लिए कोड मिश्रित भाषा का प्रयोग बराबर किया जाता है, जैसे- कल के मैच में सबसे ज्यादा रन सचिन ने बनाए। भारत ने टेस्ट मैच में लगातार अपनी पकड़ बनाए रखी| अगला टेस्ट सीरीज भारत और श्रीलंका के बीच है| भारत के गेंदबाज ने पाकिस्तान के विकेट बहुत जल्दी गिरा दिए|

व्यक्ति सामान्य रूप से भाषा का प्रयोग करते समय एक ही भाषा के अंतर्गत विभिन्न कोड़ों का प्रयोग करता है किन्तु व्यक्ति इस बात पर गंभीरता से विचार नहीं करता| यदि गंभीरता से विचार किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा की व्यक्ति संप्रेषण करते समय निरंतर नए कोड़ का प्रयोग करता रहता है|

हिंदी- अंग्रेज़ी कोड-मिश्रण और कोड-परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारण यह है कि हिंदी में अंग्रेज़ी भाषा की स्वीकृति और उसका प्रचालन, या हिंदी में शब्दावली का न होना, या अश्लीश शब्दों के प्रयोग से बचने के लिए कोड-मिश्रण एवं कोड-परिवर्तन का प्रयोग किया जाता है|

अंग्रेज़ी शब्दावली के कोड-मिश्रण के पीछे हिंदी भाषा-समुदाय की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं| एक तो अंग्रेज़ी के सामान्य शब्दों की स्वीकृत एवं उनका प्रचलन|

कोड परिवर्तन द्विभाषिकता की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है| द्विभाषियों में यह प्रवृत्ति हमेशा दिखाई देती है कि एक भाषा का व्यवहार करते-करते बीच-बीच में दूसरी भाषा का व्यवहार करने लगते हैं| "कोड परिवर्तन को संप्रेषण कि एक सामान्य-प्राप्त युक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है कोड परिवर्तन के उदाहरणों से भाषाओं की वाक्य-रचना की प्रक्रिया, भाषा के स्नायुतंत्रगत गठन तथा, पदबंध-संरचना की मनोवैज्ञानिक यथार्थता का परिचय मिलता है|"

कोड परिवर्तन की स्थिति ज्यादा तर पड़े लिखे समाज में दिखाई देती है| भारतीय समाज में यह स्थिति है कि अपनी रेप्युटेशन जमाने के लिए प्रयोक्ता विभिन्न संदर्भों और सामाजिक भूमिकाओं से मुक्त होकर संदर्भानुसार कोडों का प्रयोग करता है। एक भाषा प्रयोग करते समय दूसरी भाषा का प्रयोग संप्रेषण करते समय वाक्य और प्रोक्ति के स्तर पर करते हैं और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जानबूझ कर अपनी बात पर बल देने के लिए कोड परिवर्तन करते रहते हैं|

जैसे – मुझे मार्केट जाना पसंद है, आई लव शॉपिंग

आज तुम्हारी परीक्षा है? ऑल द बेस्ट!

मुझे इस कॉम्पिटीशन में जितना ही है, एवरी थिंग इज फेयर इन लव अँड वॉर |

संदर्भ सूची –

1. हिंदी भाषा चिंतन प्रो. दिलीप सिंह वाणी प्रकाशन 2009

2. भाषा का संसार प्रो. दिलीप सिंह, वाणी प्रकाशन.

3. भाषा अध्ययन विविध पक्ष. संपादक शिवेंद्र किशोर वर्मा, दिलीप सिंह, आलेख प्रकाशन दिल्ली 2005

4. हिंदी विविध व्यवहारों की भाषा. सुवास कुमार वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2007 हिंदी की भूमिकाएँ . डॉ. गोपाल शर्मा

हिंदी-अंग्रेजी अनुवाद में पुनरुक्ति शब्द प्रतिचयन की समस्य

शिल्पा

आज के सूचना क्रांति के युग में संगणक एक महत्व पूर्ण उपकरण है, जिसके माध्यम से मानव कम से कम समय में कार्य कर लेते हैं। संसार के सम्पूर्ण ज्ञान को जानने के लिए अनुवाद आवश्यक है। समग्र ज्ञान किसी एक भाषा में समाहित नहीं है। बहुभासिक समाज में जिसमें अनेक भाषाएँ है,भाषा का उद्देश्य संप्रेषण करना है। अनुवाद केवल दो समकालीन समाजों को ही नहीं जोड़ता बल्कि पूर्व में रहे समाजों की संस्कृतियों से पश्चातवर्ती संस्कृतियों से भी परिचित कराती है। अनुवाद समस्त विश्व को व्यापार, संस्कृति, अनुसंधान, दर्शन, राजनीति आदि को एकीकृत करता है। यह संसार को आचार-विचार, व्यापार, वाणिज्य, अनुसंधान, दर्शन, शिक्षा, समाज, राजनीति, संस्कृति, परंपरा, आधुनिकता, रीति-रिवाज के अनेक पक्षों को जोड़ता है। भाषाविज्ञान के अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अंतर्गत अनुवाद विज्ञान का अध्ययन किया जाता है।

"एक भाषा की पाठयसामग्री की दूसरी भाषा के समानार्थक पाठयसामग्री द्वारा प्रतिस्थापित करना अनुवाद कहलाता है।"-कैटफोर्ड

"अनुवाद मूलभाषा की सामग्री के भावों की रक्षा करते हुए उसे दूसरी भाषा में बदल देना है "(To translate is to change into another language retaining the sense.")। - सैमुएल जॉनसन

अनुवाद का मतलब कायिक मूलभाषा की सामग्री के भावों को दूसरी कायिक भाषा में बदल देना है। अनुवाद व्याकरण में मूल और लक्ष्य दोनों भाषाओं की व्याकरणिक संरचनाओं का विवरण और विश्लेषण होता है। यह विश्लेषण भाषा के सभी स्तरों पर किया जाता है –ध्वनि, लिपि, व्याकरण, शब्द, अर्थ। भाषा की संरचना से तात्पर्य सामाजिक व्यवहार में प्रचलित भाषा–रूप से है। भाषा के आंतरिक पक्ष से है। हिंदी भाषा की शब्द-कर्म व्यवस्था(Word-Order) –कर्ता-कर्म-क्रिया होता है और अंग्रेजी भाषा की शब्द-कर्म व्यवस्था- कर्ता-क्रिया-कर्म होता है। भाषा संरचना के तीन आयाम होते हैं –ध्वनि,व्याकरण और अर्थ। ध्वनि के अंतर्गत स्वन (Phone) और स्वनिम (Phoneme), व्याकरण के अंतर्गत शब्द / रूपिम (Word / Morpheme) आता है। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में पुनरुक्ति शब्दों का बहुत अधिक प्रयोग होता है।

पुनरुक्ति शब्द यौगिक शब्दों का एक भेद है और इनमें से बहुत से सामासिक भी हैं। यौगिक शब्दों का एक रूप युग्म शब्द है। युग्म का अर्थ है -जोड़ा। जब कोई शब्द अपने समानार्थी,विलोमार्थी अथवा मिलते-जुलते शब्द के साथ जोड़ा बनाकर प्रयुक्त होता है, तब उसे युग्म कहते हैं।यह रूपवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें शब्द के दुहराने पर उपसर्ग और प्रत्यय का ध्वन्यात्मक अभिलक्षण प्राप्त होता है। इस ध्वन्यात्मक प्रक्रिया में पुनरावृति होना एक छदम है, जो रूपविज्ञान का एक विशिष्ट केन्द्र है। पुनरुक्ति के लक्षण जन्म के पश्चात ही बच्चों में अधिकतर सुनने को मिलता है। जैसे –पापा,मामा,दादा,नाना,दादी,नानी इत्यादि। जब किसी शब्द को ज्यों-का-त्यों या उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन करके दुहराया जाता है तो वह प्रक्रिया पुनरुक्ति कहलाती है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण आदि शब्दों से पुनरुक्ति शब्दों का निर्माण होता है।

संज्ञा - गाँव-गाँव, भाई-भाई, गली-गली, रंग-रंग, आदमी-आदमी आदि।

विशेषण- बड़े-बड़े, पके-पके, नए-नए, फीकी-फीकी, काले-काले आदि।

सर्वनाम- कौन-कौन, कोई-कोई, जो-जो आदि।

क्रिया -हँसता -हँसता, देखते-देखते, आते-आते आदि।

क्रिया विशेषण- धीरे-धीरे, ऊपर-ऊपर, नीचे-नीचे, हाथ-हाथ आदि।

अव्यय- कहाँ-कहाँ, किधर-किधर, अन्दर-अन्दर, ऊपर-ऊपर आदि।

पुनरुक्ति शब्द भाषाविज्ञान की एक रूपवैज्ञानिक प्रक्रिया है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण आदि शब्दों से पुनरुक्ति शब्दों का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया की खोज ग्रीक में हुई। पुनरुक्त शब्दों की पहचान इनकी उपयोगिता के कारण भाषा में सदा से बनी रही है। शब्दों की पुनरुक्ति से वाक्य या कथन में स्पष्टता और विशिष्टता के साथ-साथ अनेक प्रकार के मनोभावों की अभिव्यक्ति होती है। पुनरुक्ति सभी पद-भेदों में मिलती है।

इसके भेद निम्न हैं-

पूर्ण पुनरुक्ति (Complete Reduplication) को इस प्रकार वर्गीकरण किया जाता है-

व्याकरणिक वर्गीकरण के आधार पर वर्गीकृत पुनरुक्त शब्दों को पुनः दो उपवर्गों में विभाजित किया जाता है

1.1. समान शब्द भेदवाले और 1.2. प्रतिध्वन्यात्मक शब्द

अपूर्ण पुनरुक्ति (Partial Reduplication)

2.1.इको शब्द (Echo words) और

2.2. मध्य प्रत्यय में पुनरुक्ति (Reduplication with an Infix)

अर्थ के आधार पर – विलोम शब्द(Antonym),

पर्याय शब्द(Synonym) और

वर्गीय शब्द (Generic)

पूर्ण पुनरुक्ति- जब कोई एक शब्द एक ही साथ लगातार दो बार प्रयुक्त हो उसे पूर्ण पुनरुक्ति कहते हैं।

समान शब्द भेदवाले- संज्ञा की पुनरुक्ति –

उदा: वह घर जाता है। He goes home.

वह घर-घर जाता है। He goes house to house/ door to door.

इन दोनों वाक्य में पहले वाक्य में घर शब्द से अपने घर जाने का बोध हो रहा है और दूसरे वाक्य में घर-घर शब्द से प्रत्येक का बोध हो रहा है । जब इसका अंग्रेजी अनुवाद देखेगें तो हमें यह देखने को मिलेगा He goes home. He goes house to house/ door to door.

यात्री चलते-चलते थक गए। (Walking continuously)

हमें बैठे-बैठे नींद आने लगी।(Sitting continuously)

सर्वनाम की पुनरुक्ति

अपना-अपना –Own,

क्या-क्या- What,

कौन-कौन-Who,

कोई-कोई-Any,

जो-जो-That,

सो-सो- That,

हिंदी वाक्य-तुमने रात को क्या खाया।

अंग्रेजी अनुवाद- What you have eaten at night.

हिंदी वाक्य-तुमने रात को क्या-क्या खाया।

अंग्रेजी अनुवाद -What you have eaten at night.

क्रिया की पुनरुक्ति

जाते-जाते-While going,

खाते-खाते-While eating,

सोते-सोते-While sleeping

विशेषण की पुनरुक्ति

काले-काले-Black,

अच्छे-अच्छे –Good,

छोटे-छोटे- Small

क्रियाविशेषण की पुनरुक्ति

कुछ-कुछ- Something,

हिंदी वाक्य- दोनों चीजें अलग हैं।

अंग्रेजी अनुवाद -Two things are different.

हिंदी वाक्य -दोनों चीजें अलग-अलग हैं।

अंग्रेजी अनुवाद -Two Things are different.

विस्मयादिबोधक की पुनरुक्ति- अच्छा-अच्छा! सब ठीक हो जाएगा।

प्रतिध्वन्यात्मक शब्द- संवाद की स्थिति में किसी व्यक्ति के वाक्य में अनुकरणात्मक शब्द उत्पन्न होता है

उदा: भों-भों-Bark of a dog,

हा-हा- Laughing

अपूर्ण पुनरुक्ति – जब सार्थक,निरर्थक शब्दों के मेल से युग्म शब्द बनते हैं तो उसे अपूर्ण पुनरुक्ति कहते हैं।

इको शब्द (Echo Word)- दो पुनरुक्ति शब्दों में एक का अर्थ होता है और दूसरे का अर्थ नहीं होता है।

उदा: चाय-वाय-Tea,

हिंदी वाक्य -चाय लाओ।

अंग्रेजी अनुवाद- Bring tea.

हिंदी वाक्य -चाय-वाय लाओ। (चाय के साथ कुछ और समान जैसे-बिस्कुट, मिक्चर आदि।)

अंग्रेजी अनुवाद -Bring tea.

मध्य प्रत्यय में पुनरुक्ति

जब दो पुनरुक्ति शब्द के बीच में मध्य प्रत्यय शब्द होता हैं तब उसे रूपवैज्ञानिक परिवर्तन कहते हैं ।

उदा:-हाथों-हाथ-Immediately,

रातोंरात, कानोंकान- Without anybody's knowledge,

हिंदी वाक्य- रातोंरात वह लखनऊ पहुंच ही गया। (रहस्य का भाव)

हिंदी वाक्य- इसके बाद वे दिनोंदिन प्रगति करते गए।

अर्थ के आधार पर

पर्याय शब्द- पर्याय शब्द उसे कहते हैं जो एक ही चीज, बात या भाव का बोध करता है।

बाग-बगीचा(Garden),

धन-दौलत(Wealth)

हिंदी वाक्य -उसके पास बहुत धन्दौलत है ।(समृद्धि का भाव)

विलोम शब्द- किसी संदर्भ में जिन दो शब्दों के अर्थ एक-दूसरे के विपरीत हो ,उसे विलोम शब्द कहते हैं।

लेन–देन-Dealing

हिंदी वाक्य -मैं लेन-देन के मामले को तुरंत सामाप्त कर लेती हूँ।(रहस्य)

वर्गीय शब्द- वर्गीय शब्द उसे कहते हैं जो एक ही वर्ग में होते हैं ।

उदा:- दाना-पानी- Food

पुनरुक्ति शब्दों की समस्या

शाब्दिक द्वि-अर्थकता (Lexical Ambiguity)- घर-घर (प्रत्येक घर), प्रत्येक घर(कौन सा घर)-कारखाना घर,प्रसासनिक घर, सरकारी घर, अकादमिक घर, रेंट घर, अस्पताल घर, बच्चो का घर,जानवरों का घर इत्यादि।

मानव जब अनुवाद करता है तो मानव समझ सकता है की कोई भी शब्द के दो अर्थ होते हैं क्योंकि जन्म से मनुष्य संस्कार और अनुभव ग्रहण करता है जिसका उपयोग कर वह अनुवाद कर लेता है।कोई भी मशीन पूरी तरह से मानव बुद्धि की जगह नहीं ले पाया है इसलिए मशीनी अनुवाद की प्रक्रिया में मानव के हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ती हैं,इसके दो कारण हैं- प्राकृतिक भाषा की द्वि –अर्थक्ता और सांसारिक ज्ञान। मशीन को समझने में कठिनाई होती है वह यह नहीं समझ पाता की शब्द के दो अर्थ होते हैं इसी प्रकार पुनरुक्ति शब्द 'अपना-अपना' के लिए अंग्रेजी शब्द own का प्रयोग होता है और केवल 'अपना' शब्द के लिए भी own शब्द का ही प्रयोग होता है। दूसरा पुनरुक्ति शब्द जो-जो और सो-सो के स्थान पर that अंग्रेजी शब्द का प्रयोग हो रहा है । पुनरुक्ति शब्दों में भी वाक्य और अर्थ के आधार पर द्वि-अर्थक्ता पाया जाता है । इसको दूर करने के लिए मशीन को नियम निर्धारण करना होगा जिससे, मशीन भी मानव की तरह कार्य कर सके।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. बाहरी, हरदेव: व्यावहारिक हिंदी व्याकरण, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1982।
2. ओझा, त्रिभुवन: हिंदी में अनेकार्थता का अनुशीलन, विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1994।
3. कपूर,बद्रीनाथ: लोकभारती प्रामाणिक हिंदी कोश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,1998।
4. अग्निहोत्री, रमा कांत(अनुवादक: अनुशब्द): हिंदी एक मौलिक व्याकरण ,वाणी प्रकाशन,प्रथम संस्करण 2013
5. सिंह, सूरजभान, : अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद व्याकरण प्रभात प्रकाशन,दिल्ली संस्करण 2006।
6. Abbi, Anvita : Semantic Grammar of Hindi (A Study In Reduplication), Bahari publication private limited ,1980.
7. Abbi, Anvita: A Manual of Linguistic Field Work and Structures of Indian Languages, Lincom Europa, 2001.
8. Kachru, Yamuna Aspects of Hindi Grammar, 1980, Manohar Publications.
9. Koul, Omkar, Moden Hindi Grammar: Dunwood Press2008.

हिंदी से मराठी भाषा शिक्षण में अपसरण

अर्चना बलवीर

पिछली शताब्दी तक बहुभाषी होना व्यक्ति की सांस्कृतिक संपन्नता का द्योतक था। अतः अन्य भाषा के रूप में भाषा का अध्ययन-अध्यापन एक सीमित वर्ग के कुछेक व्यक्तियों तक ही संकुचित था। परंतु आज की स्थिति सर्वथा भिन्न है। द्वितीय भाषा के रूप में भाषा की जानकारी आज सांस्कृतिक संपन्नता का द्योतक नहीं रह गयी है। वरन् अब वह एक व्यावहारिक आवश्यकता भी बन गयी है। अन्य भाषा को हम कभी संपर्क भाषा के रूप में सीखना चाहते हैं और कभी शैक्षिक भाषा के रूप में, हम उसे कभी अंतरराष्ट्रीय संबंधों के निर्वाह के लिए अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में ग्रहण करना चाहते हैं और कभी तकनीकी विषयों की जानकारी के लिए। इसमें संदेह नहीं कि आज हम एक दो प्रमुख भाषाओं की जानकारी केवल इसलिए नहीं करना चाहते कि उस ज्ञान के फलस्वरूप उस भाषा में रचित उच्च साहित्य का रसास्वादन कर सकें अपितु इसलिए भी करना चाहते है कि अन्य भाषा-भाषी व्यक्तियों के जीवन को व्यापक स्तर पर समझें, उनके साथ हम बृहत्तर स्तर पर जीवनगत उपलब्धियों का आदान-प्रदान कर सकें| (डॉ. रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव , भाषा शिक्षण, 2005, पृ-91)

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व अन्य भाषा का शिक्षण कराते समय प्रायः व्याकरण एवं अनुवाद-पद्धति का प्रयोग किया जाता था तथा भाषा-अध्यापन का आधार उसका लिखित रूप होता था, उसका उच्चरित रूप नहीं। भाषा-शिक्षण से तात्पर्य भाषा का लिखना एवं पढ़ना माना जाता था। विद्यार्थी पहले वर्ण सीखता था और उन्हीं की सहायता से बाद में शिक्षित साहित्य का पढ़ना सिखाया जाता था। संक्षेप में किसी अन्य भाषा के शिक्षण का उद्देश्य उसके लिखित साहित्य को पढ़ने एवं भाषा को लिखने की भी योग्यता प्रदान कराने पर केंद्रित था।2(ब्रजेश्वर वर्मा, भाषा शिक्षण और भाषा-विज्ञान, 1998, पृ-43)

अन्य भाषा, शिक्षण के आरंभ काल में मातृभाषा एवं अन्य-भाषा के ध्वनि-प्रक्रियात्मक अंतरों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि यदि प्रशिक्षणार्थी एक साथ भाषा के गठन, शब्दावली, अर्थ एवं ध्वनियों की समस्याओं से आबद्ध हो जाता है, तो वह ध्वनि-प्रणाली की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान देता है। वह नयी भाषा की ध्वनियों का अपनी मातृभाषा से मिलती-जुलती ध्वनियों के अनुरूप उच्चारण करके कार्य सिद्ध करना चाहता है। एक बार ध्वनियों का अशुद्ध उच्चारण सीख लेने पर बाद में उनका निवारण करना अत्यंत दुष्कर कार्य है। 3 (ब्रजेश्वर वर्मा, भाषा शिक्षण और भाषा-विज्ञान , 1998, पृ-48)

हिंदी में कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं जो मराठी में नहीं हैं और मराठी में कुछ ऐसी ध्वनियाँ है जो हिंदी में प्रयुक्त नहीं होती| हिंदी की उत्क्षिप्त ध्वनियाँ—ड़, ढ़ आदि| वहीं मराठी की 'ळ' ध्वनी हिंदी में प्रयुक्त नहीं होती है|

भाषा-शिक्षण में अपसरण

द्वितीय अथवा अन्य भाषा के रूप में जब भाषा को सीखते या सिखाते हैं। तो अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। क्योंकि दोनों भाषा में समानता ही हो यह जरूरी नहीं विभिन्नताएँ भी देखने को मिलती हैं।

द्वितीय तथा अन्य भाषा के रूप में हिंदी तथा मराठी भाषा सीखने वालों को कुछ विशेष शब्दों का ज्ञान कराने के लिए उन्हें वाक्य में आवश्यक रूप में प्रयुक्त करना पड़ता है। इससे भाषा की स्वाभाविकता को क्षति पहुंचती हैं और भाषा में कृत्रिमता आती है। उदाहरण- 'मैं चाकू से अमरूद काटता हूं, मुझे तीन मीटर कपड़ा नापकर दीजिए।' इसी प्रकार 'श्याम तुम किताब पढ़ो' के उत्तर में विद्यार्थी का कथन जी, मैं किताब पढ़ रहा हूं', एकदम गलत है। यदि इस क्रिया में सातत्य बोधक मानें तो अध्यापक द्वारा दी गई आज्ञा गलत है और यदि क्रिया को 'रह' होने पर भी इसे सातत्य अपूर्ण पक्ष न मानकर नित्य अपूर्ण पक्ष मानना चाहें तो इसका रूप होना चाहिए 'जी अच्छा, मैं (किताब) पढ़ता हूं।4(डॉ. मुकेश अग्रवाल, अन्य भाषा शिक्षण, 2001, पृ-192)

लिंग-वचन की दृष्टि से भी हिंदी का कुछ वैशिष्ट्य है। उदाहरण- कुछ संज्ञाओं के पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग, दोनों रूप होते हैं। तो कुछ में सिर्फ एक ही रूप होता है। यथा पुल्लिंग लड़का का स्त्रीलिंग रूप लड़की होगा परंतु चींटा का स्त्री चींटी नहीं हो सकता। ये दोनों भिन्न प्रकार के कीट हैं। इसी प्रकार पुल्लिंग 'मामा' का स्त्री रूप 'मामी' होगा परंतु 'कोयल' का स्त्री रूप 'कोयली' नहीं हो सकता उसे नर कोयल और मादा कोयल ही कह सकते हैं।

परंतु मराठी भाषा में कुछ संज्ञाओं के पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग ये तीन रूप होते हैं। जैसे- मुगला (पु.), मुगली (स्त्री), मुले (नपुं.)। इसी प्रकार हिंदी के चींटा को मराठी में माकोड़ा कहते हैं। इसका बहुवचन रूप 'माकोडे' है। इसी प्रकार हिंदी में वचन-परिवर्तन के समय कुछ संज्ञा, विशेषण शब्दों का परिवर्तन स्पष्टतः लक्षित होता है। ऐसी स्थिति में यदि विद्यार्थी 'घोड़ा' के आधार पर 'आम' में भी परिवर्तन कर दे तो कठिनाई उत्पन्न हो सकती है- चार घोड़े लाओ। चार आमे (आम) लाओ।

मराठी में हिंदी के संज्ञा शब्द 'आम' को 'आंबा' कहते हैं और उसका बहु. रूप 'आंबे' है।

उदाहरण-

हिंदी - चार आम लाओ।

मराठी – चार आंबे आण।

हिंदी - बाजार से आम खरीदे हैं।

मराठी – बजरातुन आंबे विकत घेतले।

हिंदी - आम बहुत मीठा है।

मराठी - आंबा खूब गोड आहे।

हिंदी - आधा दर्जन आम लाओ।

मराठी - अर्धा डजन आंबे आना।

मराठी - आंबे गोड आहेत।

हिंदी - आम मीठे हैं।

मराठी – 1 मे पासून युरोपात आंब्यावर बंदी।

हिंदी – 1 मई से यूरोप में आम पर बंदी।

मराठी – सर्वाधिक निर्यात इंग्लॅण्डला होते।

हिंदी – सबसे ज्यादा निर्यात इंग्लॅण्ड में होता है।

इस वाक्य में हम देखें कि मराठी का 'आंबे' हिंदी में 'आम' शब्द का एक वचन रूप ही होता है भले ही उसके बाद का विशेषण 'मीठे' बहुवचन का रूप प्रदान कर रहा है। परन्तु मराठी में 'गोड' विशेषण का रूप नहीं बदल रहा । मराठी के वाक्य में 'इंग्लंडला' और हिंदी में 'इंग्लॅण्ड में' दोनों के परसर्ग में अंतर है।

उसी प्रकार हिंदी के शब्द --

एकवचन	बहुवचन
घड़ी	घड़ियाँ
अलमारी	अलमारियाँ
रेखा	रेखाएँ

पेड़	Ø
झूला	झूले
थाली	थालियाँ
प्याज	Ø

मराठी के शब्द

एकवचन	बहुवचन
कांदा	कांदे
कपाट	Ø
रेषा	Ø
माकोडा	माकोडे
आंबा	आंबे

यह कुछ ऐसे हिंदी के शब्द हैं जिनका एकवचन रूप है तो बहुवचन रूप नहीं। और म्राठी में भी कुछ इसी तरह के रूप हम देख सकते हैं। उहदाहरण-

हिंदी - रेखा

मराठी - रेषा

हिंदी - रेखा खींची है।

मराठी - रेषा फाडल्या आहे।

हिंदी - कॉपी में रेखाएँ खींची हैं।

मराठी - वह्यात रेषा फाडल्या आहे।

हिंदी - पन्ना

मराठी - पान

हिंदी - कॉपी/पुस्तिका का पन्ना फट गया।

मराठी - वहीच पान फाटल।

हिंदी - पेड़ का पत्ता।

मराठी - झाडाच पान

हिंदी - पेड़ से पत्ता गिर गया।

मराठी - झाडाच पान पडल।

हिंदी - पेड़ से पत्ते गिर गए।

मराठी - झाडाची पानं पडलित।

हिंदी में पन्ना, पत्ता, और पान यह अलग-अलग शब्द हैं परंतु वहीं हम मराठी में देखें तो इन तीनों के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त होता है 'पान'। परंतु वाक्य में प्रयुक्त होकर यह अलग-अलग अर्थ प्रकट करता है।

उदाहरण-

हिंदी - खाने वाला पान।

मराठी - खायच पान।

हिंदी - आपने खाने के बाद पान खाया।

मराठी - तुम्ही/आपण जेवल्या नंतर पान खाल्ल।

हिंदी में 'का' परवर्ती प्रधान संज्ञा के लिंग, वचन तथा कारक से प्रभावित रहता है और उसके कुल तीन रूप उपलब्ध हैं- का, की, के। हिंदी की भाँति मराठी में भी 'चा' ('का' का पर्याय) परवर्ती प्रधान संज्ञा के लिंग, वचन तथा कारक के अनुसार रूप बदलता है। लेकिन मराठी में इसके चार रूप हैं – चा, ची, चे, च्या। 5(डॉ. अम्बादास देशमुख, हिंदी-मराठी की व्याकरणिक कोटियां, 1990, पृ- 302)

हिंदी – 1. राम का भाई आया है।

2. राम के पिताजी आए हैं।

3. राम की माताजी आयी हैं।

मराठी – 1. रामाचा भाऊ आला आहे।

2. रामाचे वडील आले आहे।

3. रामाची आई आली आहे।

4. रामाच्या घरी दोन गाई आहे।

उसी प्रकार शरीर के अवयव की हम बात करें तो दोनों भाषाओं में विभिन्नता देखने को मिलती है -

उदाहरण-

हिंदी - हाथ

मराठी - हात

हिंदी - हाथ में दर्द है।

मराठी - हात दुखते आहे।

हिंदी - हाथों में दर्द है।

मराठी - हातात दुखत आहे।

हिंदी - पैर में दर्द है।

मराठी - पाय दुखत आहे।

हिंदी - पैरों में दर्द है।

मराठी - पायात दुखत आहे।

यहाँ हम संरचना के स्तर पर देखें तो जहाँ हिंदी वाक्य में 'हाथ' में दर्द है, वहीं मराठी में 'हात दुखत आहे' है। हिंदी वाक्य में हाथ 'में' परसर्ग के बिना वाक्य पूर्ण नहीं हो सकता वहीं मराठी में इसकी आवश्यकता ही नहीं हां, वहीं जब बहुवचन की बात करें तो दोनों में 'हाथों में', 'हातात' दोनों भाषा में 'में' के प्रयोग के बिना वाक्य पूर्ण नहीं हो रहा है।

हिंदी- झूला, झूले।

मराठी- पाळना, पाळने। हिंदी- मुझे झूला दो।

मराठी- मला झोका दे।

हिंदी- मुझे झूला दो।

मराठी- मला झोके दे।

इस वाक्य में हिंदी में शब्द नहीं है वही मराठी में 'झोके' शब्द का प्रयोग करके बहुवचन रूप बनता है। यहाँ भी अपसरण देखा जा सकता है।

निष्कर्ष के रूप में देख सकते हैं कि हिंदी से मराठी भाषा सीखते समय किस तरह की समस्या आती है। हालाँकि दोनों भाषा देवनागरी में ही लिखी जाती है और दोनों इंडो आर्यन परिवार की है परन्तु दोनों के शब्दों में और परसर्गों में भी भिन्नता देखने को मिलती है। दोनों भाषा के वर्तनियों में भी अंतर देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ -

1. श्रीवास्तव रविंद्रनाथ, भाषा शिक्षण, 2005, पृ-91

2. वर्मा ब्रजेश्वर, भाषा शिक्षण और भाषा-विज्ञान, 1998, पृ-43

3. वर्मा ब्रजेश्वर, भाषा शिक्षण और भाषा-विज्ञान, 1998, पृ-48

4. अग्रवाल मुकेश, अन्य भाषा शिक्षण, 2001, पृ-192

5. देशमुख अम्बादास, हिंदी-मराठी की व्याकरणिक कोटियां, 1990, पृ- 302

''साहिबां तूं माड़ी कीती नीं जे पता हुदा तूंइंज करनी मैं लयोंदा नाल भरावां नूं''

(पंजाबी किस्सा काव्यों के अनुत्तरित स्त्री प्रश्न और पंजाब में स्त्री की स्थिति)

हरप्रीत कौर

पंजाब सूफीयों, पीरो, फकीरों की धरती रहा हैं। पंजाब के लहलहाते खेत, जीवंत संस्कृति, जिंदादिली, लौहड़ी, बसंत तीज त्यौहार उत्सव उसे दूसरे प्रदेशों से अलग करते हुए जीवंत और कर्मठ प्रदेश सिद्ध करते हैं। ''पंजाब प्रेम और अलमस्ती की भूमि है। सात नदियां और अनगिणत प्रेम कहानियां हैं। यह है पंजाब गेहूं के लहलहाते खेत और खेतों में 'हीर' गाती और दुपट्टा औढ़े दौड़ती भागती लड़कियां। गाड़ियों के दौड़ने लायक खेतों की चोडी मेंड और मेंड़ के किनारे हहाता हुआ पानी उगलता पम्पिंग सेट। कहीं थ्रेशर मशीन से उड़ता हुआ भूसा तो कहीं जलते अलाब के चारों ओर घेरे में गिद्दा नाचती महिलाएं। यह है पंजाब। यहां पंजाब कहने से बोध विभाजन पूर्व के पंजाब से है। यही वह पंजाब है यहां महाभारत का सब कुछ समाप्त कर देने वाला युद्ध लड़ा जाता है, तो इसी पंजाब की भूमि पर मन को विश्राम कर देने वाली ऋग्वेद की ऋचाएं रची जाती हैं। इसी पंजाब में जहां एक और पानीपत की तीन-तीन लडाइयां लड़ी जाती हैं। नादिर शाह का खूनी खेल चलता है। तो दूसरी ओर प्रेम का पाठ पढ़ाने वाले शाह हुसैन, बुल्लेशाह, शेख फरीहुद्दीन जैसे सूफी सन्त पैदा हो जाते हैं। यही वह पंजाब है जिसने भारत-पाकिस्तान विभाजन के दंश को सबसे ज्यादा तल्खी से महसूस किया तो इसी पंजाब में 'हीर' जैसी अमर प्रेमकथा रचने वाले वारिस शाह और 'शाह-जो-रसालो' रचने वाले शाह अब्दुल लतीफ मिद्हई भी मिल जाते हैं, यह है पंजाब बेफिक्री और अलमस्ती की पहचान वाला पंजाब। यह सचमुच एक विचित्र बात है कि किसी एक क्षेत्र में इतनी विविधताएं एक साथ मौजूद हैं।

समाजशास्त्रीयों के लिए पंजाब की पंजाबियत ओर इसकी अलमस्ती शोध का विषय रही है। इतिहासकार इस मस्ती और सूफियाना जीवन-शैली का उत्स उन विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमणों में देखते हैं। आक्रांता आते, लूटते और वापिस लौट जाते। बस पिसता रहता पंजाब का आम जन-जीवन। जिन्दगी का कुछ ठिकाना नहीं रहता कि कब कोई नादिर शाह आ जाए और कब समाप्त हो जाए यह जीवन लीला। बस जी लो जितना जीवन है। कल किसने देखा है। यही फलसफा था जीवन का इसलिए हर पल जीना सीख लिया पंजाबी जीवन ने। शायद इसीलिए पंजाबी जीवन में संघर्ष एक बीज तत्व रहा और पंजाबी जीवन शैली एक जुझारू जीवन शैली बनकर उभरी। समाज शास्त्री तो यह भी मानते हैं कि पंजाब की यह सुफियाना बेफिक्री और कलन्दर जैसी अलमस्ती का मूल भी इसी असुरक्षा की भावना 'सेंस ऑफ़ इन्सेक्योरिटीं' वाले जीवन

का बाई प्रोडक्ट है। अगर ऐसा है तो साहित्य के लिए यह छद्मवेश में एक वरदान की तरह ही रहा है।"

संतो में गुरूनानक ने पहली बार लोगों के स्त्री के प्रति पुरुष के रवैये को जांचा पड़ताला और सामाजिक यथार्थ को पहचाने का प्रयास किया। उन्होंने स्त्री को सम्मान देते हुए कहा-

अ. नारी निंदा न करे, नारी नर की खान
नारी ते नर होत है, प्रभू प्रहलाद समान।

ब. नारी जननी जगत की पाल पोस के पोष।
मूरख राम विसार कर तांहि लगावे दोष।

स्त्री पर दोषों की गठरी रखकर पुरूष अपने अच्छे-बुरे जीवन का दोष भी उसी पर लगाता है गुरूनानक ने सन्यास में गृह त्याग जैसी कोई बात नहीं कही उन्होंने कहा कि गृह त्याग करके तपस्या करने से बेहतर है कि अपने भीतर का काम, क्रोध, लोभ त्यागने का प्रयास करें । जहां गृह त्याग की बात न हो वहां स्त्री साधना मार्ग में बाधा नहीं मानी जा सकती गुरूनानक ने यही सिद्ध करने का प्रयास किया। जिसका प्रभाव पंजाब पर ही नहीं बल्कि देशभर में देखा गया। स्त्रियों की सामाजिक स्थितियों में सुधार की रूपरेखा का निर्धारण भी संत काव्य का ही एक हिस्सा है। संत काव्य में यह पहली बार गुरूनानक के यहां दिखाई देता है कि गृहस्थ जीवन को सराहा गया। उन्होंने उन तमाम पाखंडो आडम्बरों की तरफ भी ध्यान दिया जिनकी तरफ कबीर ने इशारा किया था, गुरूनानक ने स्थापित कर दिया कि स्त्री समाज का जरूरी अंग है। उसका निरादर नहीं किया जाना चाहिए। पंजाब में गुरू काव्य के कारण चली यह लहर दूसरे प्रांतों से भिन्न है। एक किस्से के अनुसार गुरू हरगोविंद जब नामक फकीर परिवार सहित कश्मीर से गुजरात जा रहे थे जहांगीर ने गुरू जी से प्रश्न किया। औरत क्या फकीरी क्या? हिंदू क्या पीरी क्या? पुत्र क्या बैराग क्या दलित क्या त्याग क्या?

ते उन्होंने उत्तर दिया

'औरत ईमान, दौलत गुजरान
पुत्र निशान, फकीर न हिंदू न मुसलमान'

एक तरफ यहाँ गुरू काव्य में स्त्री को बराबर का दर्जा दिया गया है वहीं दूसरी और 'कर्ता पुरख निरभो निरवैर अकाल मूरत अजूनी सैभ भंग' कहकर पुरुष को कर्ता घोषित करने वाली उक्तियाँ भी साथ साथ चलती रही| जबकि मध्यकालीन साहित्यिक जगत में अन्य प्रांतो की अपेक्षा पंजाब में स्त्री को तमाम अधिकार दिऐ गऐ अमृतपान में भी उन्हें बराबरी का दर्जा दिया गया जो आज तक बरकरार है।

गुरुनानक की यह घोषणा "सो क्यों मंदा आखीऐ/ जित जमें राजान। "

अर्थ (उस स्त्री को बुरा क्यों कहा जाऐ जिसने बड़े बड़े राजाओं, महाराजाओं, संतो को जन्म दिया हो।)मध्यकालीन संत काव्य में स्त्री को आध्यात्मिक मार्ग में रूकावट माना गया। कबीर ने कहा 'नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग
कबीरा तिन की कौन गति, नित नारी को संग

तुलसीदास ने कहा

'नारी मरी घर संपति नासी
मूंड मुंडाए भए सन्यासी

दादूदास, मलूकदास, पलटूदास कबीर, रैदास, गुरूनानक इस काल के संत हुए। एक तरफ स्त्री को कामिनी कहा गया तो दूसरी तरफ उसे जीवात्मा का प्रतीक या अल्लाह भी माना गया। डा. सैल कुमारी लिखती हैं- 'भक्ति युग की सब धाराओं में नारी के दो रूप दिखाई देते हैं-साधाराण और विशेष। पहला रूप लौकिक और यथार्थ है और दूसरा काल्पनिक, पारलौकिक, और आदर्श।

दूसरे रूप के संम्बन्ध में सारे भक्त कवि एक सुर में घृणा प्रकटाते हैं। ये क्रोध और हिंसा से भरी हुई भावना है। भक्त कवियों ने स्त्री को माया का ही साक्षात् रूप माना है। नारी को सर्पिणी, बाघिन, विष की वेल आदि विशेषणों से नवाजा है। भक्त कवियों का विश्वास है कि स्त्री में काम प्रवृति अधिक होती है। इसी कारण माता और जननी पर भी विश्वास करना उचित नहीं।" पुत्र मोह के चलते ही देखा जाता है कि आशीर्वाद स्वरूप 'दूधो नहाओ पुतो फलों' या 'आठ पुत्रों को जन्म दो' जैसे वाक्य कहे जाते हैं। पुत्री जन्म की कामना वहां नही है।

पंजाब पीरों - फकीरों की धरती रहा है। ईश्क हकीकी से ईश्क हकीकी की यात्राओं का वर्णन करने वाले इन फकीरों की वाणी से ही वहां का किस्सा काव्य पोषित होता रहा है। हीर रांझा, सस्सी पुन्नु, सोहणी-महिवाल, आदि किस्सा काव्य प्रेम के उच्चतम आदर्शों को रेखांकित करते हैं। देखना यह है कि इन किस्सा काव्यों में स्त्री किस रूप सामने आती है। कवियों ने नायिकाओं का सौन्दर्य वर्णन करते हुए किस परम्परा का संकेत दिया है। नख-शिख वर्णन करते हुए 'मिरजा साहिबां ' के रचयिता पीलू ने साहिबा के सौंदर्य का वर्णन करते हुए लिखा है -

साहिबां गई तेल नूं गई पसारी दी हट्ट
फड़ न जाणे तकड़ी, हाड़ न जाणे बट्ट
तेल तलावे भूल्ला वाणीयां दित्ता शहद उलट
वणज गवा लऐ वाणीयां, वल्लद गवाऐ जट्ट"

(साहिबां तेल लेने पंसारी की दूकान पर गई, दुकानदार उसके सौन्दर्य को देखकर आश्चर्यचकित है, वह लकड़ी और वाट -पकड़ना ही भूल गया, तेल के स्थान पर शहद तोलकर दे देता है जाट भी अपने बैल खो बैठा है)

पंजाबी किस्सा काव्यों में नायिकाओं की खूबसूरती में हिन्दी साहित्य की तरह स्थूल और सूक्ष्म पक्ष किस्सा काव्यों में दिखाई पड़ते हैं । श्रृंगार की परम्परा का निर्वाह दिखाई देता है

वारिश शाह जब हीर लिखते हैं तो उन पर जागीरदारी सामंती युग का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। नख-शिख वर्णन में वारिस ने रीतिकालीन परंपरा का निर्वाह किया है।

"लै के सट्ठ सहेलियां नाल चल्ली, हीर, मडती रूप गुमान दी जी / वुक्क मोतियां दे कन्नी छणकदे सन/ कोई हूर ते परी दी शान दी जी/ कुड़ती सूट्टे दी हिक्क दे नाल फब्बी/ होश रही न जिमीं असमान दी जी वारसशाह मीआं जट्ट लोहड लुट्टी/ भरी किवर हंकार गुमान दी जी,/ केही हीर दी करे तारीफ शायर,/ मत्थे चमकदा हुस्न मेहताव दा जी/ नैण नरगसी/ मिरग ममोलड़े नें / गलां टहकयां फुल्ल गुलाब दा जी।"

(अर्थ हीर अपनी साथ साठ सहेलियां लेकर जा रही है गुमान से भरी हुई कानों में मुट्ठी भर मोती छणक रहे हैं परी, हूर लग रही है। लाल रंग की चोली सीने से चिपकी है। उसे आसमान और धरती का होश नहीं है, वारिश शाह कहते हैं वह हाय तौबा कराने वाली जट्टी है, जिसमें अहंकार गुमान भरा हुआ है। उसकी तारीफ कोई शायर कैसे करेगा, उसके माथे पर मेहताव चमक रहा है।)

"देखने की बात है कि वारिस शाह ने जिस हीर को प्रेम की प्रतीक बनाकर पेश किया है उसे गुमान और अहंकार से भरी स्त्री के रूप में भी चित्रित किया है। हीर रांझा में हीर दब्बू स्वभाव की स्त्री नहीं है, बल्कि वह समाज की गढ़ी नैतिकताओं के साथ कभी समझौता नहीं करती। 'दूसरे पुरूष से विवाह हो जाने, फिर विधवा हो जाने के बाद भी वह प्रेमी के रूप में रांझे को स्वीकार करती है, यह अवश्य है कि पंजाबी के इन किस्सा काव्यों का अन्त त्रासदी में होता है, जहां दोनों पात्र मर जाते हैं, पर हारते

नहीं है। हीर , सस्सी, सोहणी कोई भी स्त्री समाज के आगे समर्पण नहीं करती। सस्सी तो पुन्नु की खोज में ही दम तोड देती है। फिर पुन्नु भी मर जाता है, हीर रांझा में भी हीर की मृत्यु पहले दिखाई गई है, रांझे से विवाह करने की जिद के कारण उसके भाई उसे जहर देकर मार देते है, फिर रांझा भी उसी कब्र में दफन हो जाता है।

सोहणी महिवाल की प्रेमकथा में भी सोहनी रोज झनां नदी को पार कर महिवाल से मिलने जाती थी। तैरने के लिए वह घड़े का इस्तेमाल करती थी, सोहनी के लिए यह एक बड़ा कदम था कि ससुराल में रहते हुए सास और ननद को यह पता चला की वह रात में घडे के सहारे झनां नदी को पार करके महीवाल से मिलने जाती है, उन्होंने उसका घड़ा बदल दिया उसके स्थान पर कच्ची मिट्टी का घड़ा रख दिया सोहनी जैसे ही झनां में उतरने लगी मिट्टी पानी में घुलने लगी और सोहनी डूबकर मर गई, बाद में महीवाल भी उसी पानी में डूब जाता है। साहिबां मिरजा का किस्सा थोडा अलग है। साहिबां मिंरजा के तीर छुपा देती है और मिर्जा मर जाता है बाद में वह कहती है' - (वही) "हाऐ हाऐ/ मैंडया लाड्या/ कित्त बल्ल करे चलाण/ छड् गओं विच उजाड़ वे/रोही आऊंदी खाण/ वे दरदां दे साथीआ कुझ तां हक पहचाण"

(मिरजा के मरने पर वह कहती है । हे मेरे प्रेम तुम कहां चले गऐ, मुझे उजाड़ में ही छोड़ गए । दुख में साथ देने वाले मेरा कुछ न कुछ अधिकार तो पहचानो साहिबा ने मिरजा के साथ घर से भागकर घर तो छोड़ दिया, पर घर का मोह नहीं छोड पाई थी, वह नहीं जानती थी कि उसके भाई निहत्था मिरजा पर भी हाथ उठाएंगे, वरना शायद वह उसके तीर न छुपाती यह इस कथा का छुपा हुआ पक्ष है|

पितृसत्तात्मक ढांचे मे पला यह स्त्री पात्र जीवन के उस कटू यथार्थ के अधिक निकट दिखाई देता है, जहां स्त्री को प्रेम की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता कतई नहीं है। नैतिकता की पैरोकार बनी पितृसत्ता यहां अपने क्रूरतम रूप में दिखाई देती है। किस्सा काव्य से पहले पंजाबी कविता आध्यात्मिक व सुधारात्मक, आत्मा परमात्मा विषय चिंतन धाराओं के धरातल पर खड़ी दिखाई देती है। सत्तरहवी और अठारवीं सदी के मध्यकालीन पुनर्जागरण काल की सभी प्रेम रचनाएं पंजाबी साहित्य की अमूल्य निधि हैं, वारिस शाह की 'हीर' हाशिम की सस्सी, फजल शाह की सोहनी महिवाल, पीलू की 'मीर्जा साहिबां आदि रचनाएं

"इन प्रेम कथाओं की विशेषता कथाओं की नायिकाओं में निहित है। जैसा कि प्रारम्भ में ही चर्चा की गई है कि पंजाब एक कृषि प्रधान क्षेत्र है और रहा है, उदाहरण के लिए, जब आज के अत्याधुनिक कहे जाने वाले 21 वीं सदी के समाज में भी प्रेमी प्रेमिकाओं को मार डालना सामान्य सी बात हो गई सी दिख रही है, और हैरत तो तब और भी होती है जब इसतरह की हत्या को समर्थन देने वाले लोग भी उसी समाज से उठ खड़े होते हैं (हाल ही में हरियाणा में घटित दुर्भागयपूर्ण घटना का संदर्भ लें) कोई सामान्य समझ का व्यक्ति भी यह अन्दाजा लगा सकता है कि 17 वीं और 18 वीं सदी के दौरान जब ये रचनाएं हो रही थी समाज किस प्रकार का रहा होगा। इस आलोक में यह देखना और इसका विश्लेषण करना बहुत महत्वपूर्ण है कि उन कथाओं की नायिकाओं में कितना जुझारूपन था।

पंजाब की इन प्रेम कथाओं में एक बात गौरतलब है कि लगभग सभी रचनाओं में नायिकाएं जुझारू हैं। और प्रेम के मुखर इजहार में नायकों से ज्यादा बढ़-चढ़कर आगे आई हैं। मध्यकालीन समाज वर्जनाओं में जकड़ा समाज था। सभी प्रेमकहानियों का अन्त एक सा ही दिखाई देता

है। पर सबसे ज्यादा नैतिक दबाव स्त्री पर है। रांझा, महीवाल, पुन्नु तो बाद में मरते हैं। पहले उनकी प्रेमिकाएं मरती हैं। फिर भी इन किस्सा काव्यों के स्त्री पात्रों को बहादुर और दिलेर जरूर दिखाया गया है यही एक विशेषता है जो पंजाबी किस्सा काव्यों को नया स्वरूप प्रदान करती है।अनुज के शब्दों में-"मिरजां साहिबां के किस्से मे थोड़ा अलग रंग जरूर दिखाई देता है। साहिबां मिरजा के तीर छुपा देती है ताकि मिरजा साहिबां के भाइयों पर तीर न चला सके। और मिरजा निहत्था होने के कारण मारा जाता है-एक लोकगीत में- मिरजा मरते वक्त साहिबां से कहता है -

"साहिबां तूं माडी कीती नी/जे पता हुदा तूं इंज करनी/मैं लयोंदा नाल भरावां नूं"

(साहिबा तुमने मेरे तीर छुपाकर बहुत बुरा कर दिया। अगर मुझे पता होता तुम ऐसा करोगी मैं अपने साथ अपने भाइयों को लेकर आता)

पंजाबी किस्सा काव्यों से भिन्न साहिबां मिरजा की नायिका नैतिकता की जकड़न में जकड़ी हुई दिखाई देती है। भाइयों के प्रति मोह के कारण वह नहीं चाहती कि मिरजा उसके भाइयों पर आक्रमण करे, महिलाओं की स्थिति सदैव नारकीय रही। प्रेम का मुखर इजहार तो दूर वे विनिमय की वस्तु बनी हुई अश्वेत गुलामों से भी बदतर जिन्दगी जी रही थी।अनुज के शब्दों में "ऐसे में एक 'हीर' मिलती है जो मुखर होकर कहती है कि "मुझे हीर नहीं, धीधो रांझा पुकारो" यह 'हीर' ही होती है - जब जबरन उसकी शादी की जा रही है तब शादी की वेदी पर बैठकर भी वह काजी की सत्ता को चुनौती देने का साहस रखती है। हीर कहती है "काजी साहब दुख इस बात का है कि आप जैसे लोग बड़ी आसानी से अपने धर्म और विश्वास को गिरवी रख देते हैं।" यह बहुत महत्वपूर्ण इस अर्थ में भी है क्योंकि वह काजी महज एक काजी नहीं है बल्कि वह सामाजिक वर्जनाओं का जिसे 'हीर' खुलेआम चुनौती देती है। कथा का यह प्रसंग भी महत्वपूर्ण है कि हीर सामाजिक और धार्मिक वर्जनाओं के प्रतीक बन चुके अकेले काजी को ही चुनौती नहीं देती बल्कि वह अपने सथियों की सेना बनाकर सत्ता के प्रतीक सरदार नूरा से भी लड़ती है और उसे परस्त करती है। जब 'सस्सी पुन्नू' की सस्सी को यह मालूम हो जाता है कि वह बादशाह आदमखान की बेटी है जो परिस्थितिवश उस धोबी के घर पलती बढ़ती है। तो वह उस धोबी को छोड़कर नहीं चली जाती बल्कि उसी घर में रहती है। इस तरह 'सस्सी' आत्मोसर्ग और नैतिकता का उच्चस्तरीय 'पैराडाइम' गढ़ती है। इस तरह 'सोहनी-महिवाल' का इज्जत वेग का फकीर हो जाता है और नदी के पार एक झोंपडी में रहने लगता है। लेकिन 'सोहनी' वैराग नहीं लेती, वह लड़ती है परिस्थितियों से, इस समाज से इस समाज की वर्जनाओं से, लेकिन यह कहने का अर्थ यह नहीं है कि इज्जत बेग अर्थात महिवाल में आत्मोसर्ग का भाव नहीं, क्योंकि यह महिवाल ही है जो सोहनी के लिए मछली पकड़ने हेतु अपने शरीर का मांस काट डालता है। कथा में सोहनी का आगे बढ़कर नदी पार करना और फिर उसी दौरान डूब कर मर जाना कथा के कई आयामों की परत-दर-परत मीमांसा करते हैं।

पंजाब की इन कथाओं में सामाजिक बन्धनों और वर्जनाओं के विरूद्ध नायिकाओं द्वारा किया जाने वाला विरोध नायकों से ज्यादा तलख ओर मुखर दिखाई देता है 'काजी' और 'नूरा' से लड़ने का काम 'हीर' करती है जबकि कीचम शहर की ओर नंगे पांव दौडकर 'सस्सी' ही जाती है। उसी तरह नदी पार करने का साहस 'सोहनी' दिखाती है जबकि प्रेमी के साथ घोड़े पर चढ़कर भाग जाने ओर

अपने सीने से खंजर घांेप लेने का साहस 'साहिबां' ही दिखा पाती है।"

यह ध्यान देने की बात है कि इन कथाओं की नायिकाएं कहीं भी समाज से भागती नहीं है। उनमें पलायन नहीं है। उनमें एक नकार है। वर्जनाओं के प्रति सामाजिक जड़ताओं के प्रति। ये नायिकाएं मरती भी हैं। तो स्वयं नहीं मरती, कहीं आत्महत्या नहीं करती बल्कि उन्हें मारा जाता है धोखे से या फिर उन्हें मजबूर किया जाता है मर जाने को 'साहिबा' भी यदि अपने सीने में खंजर घोंपती है तो इसलिए नहीं कि वह मिर्जा को मार डालने वाले अपने भाइयों से लड़ नहीं पाती, बल्कि इसलिए खून खराबा नहीं करना चाहती। इन कहानियों का विश्लेषण और भी कई कोणों से किया जा सकता है और विद्वानों द्वारा आगे किया जाएगा भी लेकिन यह एक तथ्य है कि पंजाब की ये कथाऐं मूलत: नायिकाओं की कथाएं हैं, नायिकाओं को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं और इसमें सन्देह नहीं कि ये कथाएं सदियों तक पंजाब के नारी समाज का सर गर्व से ऊंचा करेगी।'

इस प्रकार पंजाब के किस्सा काव्य ही बाद की पंजाबी कविता की पृष्ठभूमि में प्रेम के उदात्त स्वरूप को प्रकट करते रहे यही कारण है कि बाद की पंजाबी कविता में प्रेम और समर्पण के गूढ, गहन जीवंत बिम्ब देखने को मिलते हैं। पंजाब को इन्हीं किस्सा काव्यों के कारण हीर-रांझे की धरती कहा जाता है। आधुनिक पंजाबी कविता में भाई वीर सिंह, धनीराम चात्रिक प्रो. पूरन सिंह, भाई मोहन सिंह राजेन्द्र सिंह वेदी, अमृता प्रीतम इसी प्रेम की परंम्परा के कवि रहे इन किस्सा काव्यों का जिक्र समाज के व्यापक परिवेश को जानने के लिए वहां प्रचलित कथाओं, किस्सो, मिथकों को जानना भी जरूरी है। जिस समय पंजाबी साहित्य में किस्सा काव्यों की रचना हुई थी उस समय मुगलों की हुकुमत थी। हिंदी साहित्य में यह काल रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। सामंती, जागीरदारी समाज में जहां एक तरफ स्त्री को वस्तुकरण की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है वस्तुकरण की इस प्रक्रिया में एक तरफ तो पुरूष स्त्री के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध दिखाई देता है दूसरी तरफ समाज द्वारा वह स्त्री निन्दा की पात्र घोषित कर दी जाती है। किस्सा काव्यों में लगभग यही त्रासदी दिखाई देती है। प्रेम के उदात्त चित्रण के साथ-साथ स्त्री वह तमाम दंश झेलती दिखाई देती है जो इस पितृसत्तत्मक समाज व्यवस्था में विद्यमान हैं। जिन्हें भोगने के लिए वह अभिशप्त है। जिनसे मुक्ति का कोई विकल्प नहीं है। विकल्प है तो मीरा की तरह भक्ति का एकमात्र रास्ता।

दूसरा यह कि इन किस्सा काव्यों के स्त्री पात्रों की स्वतंत्रता भावुक और रोमांटिक स्तर पर खड़ी दिखाई देती है जबकि किसी भी मनुष्य की स्वतंत्रता का संपूर्ण ढ़ांचा अर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक आधारों पर ही खड़ा हो सकता है। स्त्री पात्रों की यह भावुकता उन्हें उस जकड़न से मुक्त नहीं करती जिसे पितृसत्ता औजार के रूप में इस्तेमाल करती है। और फिर किस्सा काव्यों में दर्शाया प्रेम प्रथम दर्शन या रूप का बखान सुनने के बाद उत्पन्न प्रेम के रूप में सामने आता है यानि विकल्पहीन समाज में स्त्री के पास अन्य कोई विकल्प नही है। यही स्थिति इन प्रेम काव्यों को त्रासदी के रूप में प्रकट करती है। मिरजा के मर जाने के बाद साहिबा के पास अन्य कोई विकल्प नहीं है। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आधार पर लिखा गया यह काव्य स्त्री पात्रों को विस्तृत फलक प्रदान नहीं करता। किस्सा काव्यों में स्त्री की खुलकर निन्दा नहीं की गई हां प्रेम का विरोध करने वाले नैतिकता के पैरोकार

प्रेम का विरोध करते दिखाई देते हैं - जैसे एक स्थान पर मिरजा साहिबा का रचनाकार पिलू कहता है -

(मिरजा सिआलां मुड आ गया, रंन साहिबां दा चोर) इस पंक्ति में स्त्री को जायदाद के रूप में दर्शाते हुए कवि कहता है मिरजा, साहिबां को चोरी करके ले गया

अन्य पंक्ति में -

'बुरे सियालां दे मामले, बुरी सयाला दी राह
बुरीयां सयालां दिआं औरतां जादू लैंदीयां पा
चडदे मिरजे खान नूं बंझल देंदा मत (पाठ के अनुसारः स्मृति आधारित पंक्तियां)

मिरजा साहिबां से विवाह करना चाहता है तो बंझल जट उसे समझाता है साहिबा सयाल गांव की है। बंझल जागीरदारी समाज का पैरोकार है, मिरजे से कहता है। साहिबां अच्छी औरत नहीं है, बल्कि सयाल गांव की हर औरत बुरी है, साहिबां भी बुरी है |

यानि समाज द्वारा गढ़ी गई अच्छे होने की परिभाषा में साहिबां कहीं फिट नहीं हो पा रही। इस प्रकार इन किस्सा काव्यों में कई स्थानों पर एक तरफा मत पुरूष पात्रों का दिखाई पड़ता है (स्त्रियों के चरित्र के संबंध में) स्त्रियों द्वारा प्रतिरोध का स्वर तब दिखाई पड़ता है जब उन्हें उनके प्रेमी से दूर कर दिया जाता है।

मकवूल की हीर एक स्थान पर कहती है -

"औरतों की नींदा मत करो, सभी औरतें बुरी नहीं होती हैं| औरतें तो रावी नदी की तरह पवित्र है पर गैर का कोई विश्वास नहीं है। औरत तो आम की गुठलियां है उनके बिना संसार चल नहीं सकता।"

यहां हीर औरत का पक्ष तो रखती दिखाई देती है लेकिन साथ ही 'शुचिता' की मांग कर रहे समाज के सामने अपने पवित्र होने को भी स्वीकार करती है, जिसे स्त्री मुक्ति की मुक्मल आवाज नहीं कहा जा सकता मकवूल का रांझा कहता है - रांझा आखदा रन्नां नफा नहीं /रंना नाल न दोस्ती लाइए नी/मरदां सच्चयां नू चा करन झूठे/ बारे रन्न दे मूल न जाइए नी |

(प्रेम के उदात्त किस्सा काव्यों में भी पुरूष जो नायक के रूप में है स्त्री की वफा पर उंगली उठाता नजर आता है। रांझा कहता है स्त्रियों के साथ रहने से कोई लाभ नहीं स्त्रियों से दोस्ती नहीं करनी चाहिए, सच्चे पुरूष को भी झूठा सिद्ध करने में माहिर स्त्रियों से कोई जीत नहीं सकता)

"आखर रंन्ना दी जात बेबफा हुंदी, मैं डिट्ठा ऐ खूब आजमा हीरे
सुखन रासती आखया मुकबले ने, नहीं रन्ना को मेहर वफा हीरे।"

(रांझा हीर से मुखातिब होकर कहता है, मुझे स्त्रियों पर विश्वास नहीं है, वे तो स्वभाव से ही बेवफा होती हैं)

पुरूष प्रधान समाज में औरत सदैव से ही दोषी है। प्रश्न उठता है कि उदात्त प्रेम का आधार रहे स्त्री पात्रों के चरित्र पर सवाल उठाता यह पुरूष वर्ग उस उदात्त प्रेम का अधिकारी कैसे हो सकता है? जिसमें एक पक्ष के समर्पण पर पुरा संदेह है। यह दंश भोगने वाली स्त्री इन किस्सा काव्यों की नायिका है। वारिस शाह की 'हीर' अधिक लोकप्रिय रही। राजशाही पूंजीवादी समाज में जहां स्त्री दोयम दर्जे पर मानी जाती रही, वहां विवाह का आधार प्रेम हो ही नहीं सकता, वारिस शाह अपने काव्य में 'हीर' को रांझे से ऊचा स्थान देते हैं। फिर भी वारिस शाह ने अपनी कविता में हीर को दोयम दर्जे की सिद्ध किया है। यहां प्रेम का आदर्श और भावुकता का संबंध है तो वारिस शाह की हीर उस पर खरी उतरती है। परंतु जीवन के विस्तृत फलक पर वह दिखाई नहीं देती। एक स्थान पर तो रांझे के मुंह से कवि ने यहां तक कहलवा दिया कि-

रंन (औरत) फकीर ओर तलवार, घोड़ा इन चारों का विश्वास नहीं किया जा सकता, जीवन में ऐसा कोई भी क्षण आ सकता हे जब ये चारों वार कर सकते हैं । आदमी तो नेकी से भरा हुआ जहाज है, औरत बुराइयों की बेदी है जो अपने मां बाप का नाम डूबो देती है।

इस प्रकार ईश्क हकीकी ही से ईश्क मजाजी की संत काव्य परंपरा से ग्रहण किऐ गऐ प्रेम के उदात्त तत्व का आधार लिए रांझे के मुंह से अविश्वास की भाषा सुनकर किस्सा काव्यों की उस गंभीरता व उदात्त रोमानियत पर भी बडे. सवाल खडे. किऐ जा सकते हैं। वारिस शाह के काव्य में जोगी भी औरत की निन्दा करते दिखाई देते हैं। वारिस की हीर कई स्थानों पर विद्रोही की भुमिका में है। रांझे को ही अपना पीर फकीर, पैगंबर, मुर्शिद मानती हीर राठीयों की बेटी का विवाह कुम्हार के घर नहीं हो सकता, प्रेम की इसी एकनिष्ठता में उसे अपने में और रांझे में कोई फर्क नजर नहीं आता हीर एक स्थान पर कहती है - मैने ख्वाजा की दरगाह पर बैठकर कसम खाई है, रांझे के अलावा किसी और से प्रेम या विवाह करूं तो मुझे नर्क मिले'

उधर भगवान सिंह की हीर भी अपना दीन ईनाम रांझे को ही मानती है। हीर रांझे से अधिक धैर्यवान और विद्रोही है। वह ससुराल जाने के बाद अपनी ननद से कहकर रांझे को बुलवाती है। वह प्रेम की एकनिष्ठता में मां बाप काजी और अन्य रिश्तेदारों का मुकाबला करती है। पंजाबी साहित्य को सबसे जिन्दादिल नायिका 'हीर' है रांझा कई स्थानों पर औरत जात को गालियां देता है परन्तु हीर प्रेम का निर्वाह करते हुए समाज के साथ लोहा लेती नजर आती है।

हीर रांझा का किस्सा उस समय के पंजाब का सामाजिक, राजनैतिक , यथार्थ का बेहद संवेदनशील आख्यान है। इस प्रकार अन्य किस्सा काव्यों में भी तत्कालीन समाज के यथार्थ का चित्रण है। जिसमे पितृसत्ता अपने क्रूरतम रूप में दृष्टव्य है। पितृसत्ता की इस जकड़न के कारण ही यह प्रेम काव्य टैजेडी (त्रासदी) में तब्दील हो गऐ। अपनी समृद्ध व लम्बी परम्परा में किस्सा काव्यों में महिवाल का प्रसंग भी उतना ही प्रसिद्ध रहा है। जितना कि हीर रांझा का किस्सा। शाह हुसैन न और हाशिम ने सोहनी महिवाल लिखा हाशम के बाद कादरयार फजलशह, भगवान सिंह, पालसिंह ने लिखे। सोहणी भी हीर की तरह विद्रोही प्रवृति के साथ काव्य मे आती है। सस्सी पुन्नु की लोक कथा मे एक महत्वपूर्ण बात सामने आती है। वह यह है कि अन्य किस्सा काव्यों या लोकथाओं में प्रेम की शुरूआत नायक द्वारा की जाती है वहीं सस्सी पुन्नु प्रसंग में नायिका प्रमुख रूप से उभरती है क्योंकि यहां सस्सी को स्वप्न दर्शन व चित्र दर्शन द्वारा प्रेम होता है। सस्सी पर सबसे पहले किस्सा हाफिज वरखुरदार ने लिखा। फिर हशमशाह, सुंदरदास ,फजल शाह, गुलाम रसूल ने लिखा। हाशिम की सस्सी प्रसिद्ध रही।

किस्सा काव्य से अलग लोकगीतों पर नजर डाली जाए तो पंजाबी लोकगीत पंजाबी संस्कृति को व्यक्त करने का दम रखते हैं | बेटे के पैदा होने पर गाऐ जाने वाले लोक गीतों में हम भली शांति देख सकते हैं कि वहां लड़कियों की स्थिति क्या है पंजाबी के लोक गीतों को समृद्ध करने वाला पक्ष स्त्री है। इन गीतो में जहां एक तरफ पंजाब की समृद्धि की प्रत्येक संभावना का रेखाचित्र है वहीं दूसरी तरफ तीखी आलोचना का हिस्सा ये लोकगीत एक स्त्री की स्वतंत्रता उसकी स्वायत्तता से परे उस समाज में हो रहे स्त्री दमन के प्रत्यक्ष दस्तावेज हैं। अपने दमन के गीत गाती ये स्त्रियां इन्हीं लोकगीतों की पंक्तियों पर गिद्दे के

रूप में नाचती हैं तो कौन बौद्विक होगा जो पने दमन पर हंस हंस नाच रही स्त्री की दशा पर रो न देगा एक गीत जहां एक स्त्री के ऊंट पर बैठ जाने मात्र से ही घर की लाज चली गई।

"टांडा टांडा टांडा/"बंतो दे मितरां ने/बोता बीकानेर तो लयांदा/बंतो उते चढ़ गई/बोता रेल बराबर जांदा/बंतो दे बापु ने/बंतो दी गल संहारी/सिर तो पग लाह के/चुक के परे मारी/घड़ा न चुकाइयो मित्रो/इसदी, पिंड दे मुंडे नाल यारी

(भावार्थ:- बंतो के दोस्तों ने, बीकानेर से ऊंट लाया है बंतो ऊंट पर बैठ गई तो पिता विरोध के रूप में अपनी पगड़ी उतारकर फेंक देता है। और गांव के लड़के कहते हंै कोई भी बंतो के सिर पर घड़ा मत रखना। उसकी केाई भी सहायता नहीं करेगा, क्योंकि बंतो की मित्रता गांव के किसी लड़के के साथ है। (स्मृति के आधार पर)

यह कैसा समाज है जो एक लड़की को अपने आस पड़ोस उसके गांव के संगी साथियों द्वारा लाऐ गऐ ऊँट पर बैठने की स्वतंत्रता, भी नहीं देता। अंतिम पंक्तियों में तो यह तक कह दिया गया है कि इस लड़की को घड़ा उठाने में कोई लड़का मदद न करना, क्योंकि इस लड़की की दोस्ती गांव के किसी लड़के से है। मतलब यह लड़की अच्छी नहीं है। समाज द्वारा गढ़ी गई अच्छे होने की तमाम परिभाषाएं यहां लागू होती हैं। वहां स्त्री प्रताड़ित होगी पुरूष नहीं। पंजाब में इस गीत पर ज्यादातर भंगडा होता है। मतलब एक पुरूष इस बोली को लम्बी आवाज (हेक) में गाएगा और फिर सामुहिक नाच होगा। अक्सर ऐसी बोलियों पर स्त्रियां नाचती है एक अन्य दृश्य में बेटी बाप से कहती है -

"छोटे नाल ना ब्याहीं बाबला
छोटा खरा शोदाई
डंगरा दे विच मंजा डाहवे
वड़े जेठ दा भाई "

(पिता जिस घर में तुम मेरे लिए वर देखने जा रहे हो वहां के छोटे लडके से मेरी शादी न करना वह तो बहुत आवारा है। पशुओं के साथ ही चारपाई डालकर सो जाता है) अगले ही दृश्य में वह उसे स्वीकार करती हुई कहती है -

टुरया तां जानैं वे, गल सुण जा खोल के
भैण नियाणी वे, वर मंगदी टोल के।

(भाई वर ढूँढने जा रहे हो, मेरी एक बात सुन कर जाना, तुम्हारी बहुत छोटी है, वह अपना वर खुद ही ढंूढना चाहती है। एक अन्य दृश्य में - पिता लड़की के लिए लड़का ढूंढने निकलता है और गाड़ी भरकर लड़कों को ले आता है कहता है बेटी पसंद कर ले।

"बारी बरसी खटण गया सी/ ते खट के लयांदी चांदी/धीऐ नी पसंद कर लै/ गड्डी भर मुडयां दी लयांदी।

बेटी को कोई लड़का पसंद नही आता। तो वह कहती है। -

बारी बटसी खटण लोई/ते खट के लयांदी ऐई/सारी गड्डी मोड बाबला/मेरे हाण दा मुंडा न कोई

(पिता सारी गाड़ी वापिस भेज दो, इसमें तो मेरी उम्र का एक भी लड़का नहीं है।)

पंजाब के विरसे का अंग ये लोकगीत स्त्री के प्रश्नों के सामने मूक हैं।

एक अन्य दृश्य में - लडकी मां से कहती है।

(मेरा पति शराबी है, मुझसे मेरे सारे गहने मांगता है, पोस्त पीता है, मां कहती है उसे गहने मत देना तो बेटी कहती है मां तुम मुझे पैदा ही न करती, न मेरा ब्याह होता न "भंग, पोस्त पीदंडा माऐ/तिन सेर रोज दा -----/ना तू जमदी मांऐ/न तू ब्याहूँदी/न लड लगदा माएं/भंगी पोस्ती। (स्मृति आधारित)

पंजाब अपनी समृद्धि व खुशहाली के लिए जाना जाता है साथ ही वहां नशीले पदार्थों के अधिक सेवन के कारण

महिलाओं की स्थिति और भी भयंकर है। शराब के नशे में पति द्वारा पीटा जाना एक त्रासदी है। शराब पीना शान-शोकत का पतीक मानने वाले पुरूषों के खिलाफ कहीं-कहीं कुछ लोकगीत दिखाई देते हैं जहां घर की महिलांए प्रतिरोध करती हैं ।

क्या पंजाब वास्तव में अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक राजनैतिक, समसामायिक निर्मितियों में ऐसा ही है, जहां खेत-खलिहानों में गीत गाते, गिद्दा, भांगडा करते युवा वर्ग हैं, क्या वहां आज भी बुल्लेशाह की हीर गाते हुए बेफिक्री में जीवन जीते लोग हैं। नहीं ऐसा नही है। यह एक कड़वा सच है कि पंजाब अपनी समृद्धियों में जैसा दिखाई देता है वैसा नहीं है। आज छोटा, बड़ा हर किसान विदेश चला जाना चाहता है, क्योंकि अब पैदावार के मुकाबले महंगाई बढ़ गई है, शिक्षा पर खर्च करने के लिए उनके पास पैसा नहीं है कि वे अपने बच्चों को पढ़ा सकें , इसलिए वे अपनी जमीन बेचकर या कर्ज लेकर अपने बच्चों को विदेश भेज देना चाहते हैं, ताकि उनकी तरह उनके बच्चों को जीवन भर खटना न पडे। ग्लोबलाइजेशन ने जो सपने दिखाऐ हैं उन्हें एक किसान दिन भर खेतों में काम करके पूरा नहीं कर सकता, इससे बेहतर विदेश में जाकर मजदूरी करके पैसा कमाने को मानता है। क्योंकि वहां कम मेहनत पर अधिक पैसा कमाया जा सकता है। चंड़ीगढ़ जैसे बडे शहरों में कोलेज, स्कूल उतने नहीं है जितनी संख्या में विदेशों में भेजने वाले सेन्टर हैं। जितनी संख्या मे 'आईलैटस' की कोचिंग देने वाले प्राइवेट संस्थान हैं। बीए. एम.ए. करने के बाद बेरोजगार बैठने से या खेतों में काम करने से बेहतर विकल्प युवाओं को आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड का बीजा लेना लगता है।

चंड़ीगढ के एक वीजा सलाहाकार से बात करने पर ऐसे आश्चर्यजनक आंकडे सामने आऐ "बारहवीं के बाद कोई आगे की पढ़ाई नहीं करना चाहता है, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड का बीजा आईलैटस के बाद आसानी से मिल जाता है,इसलिए वे अंग्रेजी सीखना चाहते हैं एक महीने में 50 नऐ स्टूडेंट आते हैं जिनमें से 25 आसानी से अंग्रेजी सीख लेते हैं , उन्हें बीजा भी आसानी से मिल जाता है, 25 लड़के-लड़कियां ठेठ ग्रामीण इलाकों से आते हैं अंग्रेजी सीखने में उन्हें कठिनाई होती है, कई लड़के लड़कियां सालों आइलैटस की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पाते"

यह है वास्तविक स्थिति क्योंकि उनके पास इतनी डिग्रियां नहीं हैं कि वे सरकारी नौकरियों के लिए इन्तजार करें विदेश जाने के चक्कर में पंजाब में अनमेल विवाह अभी भी एक समस्या है। जो लोग शिक्षा के बल पर विदेश नहीं जाना चाहते वे चाहते हैं कि उनकी बेटी की या बेटे की शादी विदेश में हो जाए। कई ऐसे तथ्य सामने आऐ हैं यहां विदेश एन.आर.आई. निवासी भारतीय लड़का शादी करने के बाद अपनी पत्नी को साथ नहीं ले गया (दहेज लेकर शादी की), और पांच छः साल इन्तजार करने के बाद लड़की को पुनर्विवाह करना पड़ा कई ऐसे केस हैं यहां लड़कियों ने आत्महत्या कर ली। सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर बढ़ रही दहेज प्रथा आज भी यथावत है, उच्च शिक्षा प्राप्त लड़के-लड़कियां पंजाब में उतने नहीं है जितने विदेशों में चले जाने वाले हैं ऐसे असंख्य विज्ञापन हैं, जहां विदेशी लड़के-लड़कियों की तलाश दिखाई देती है, ताकि विदेश में जाकर मेहनत मजदूरी से पैसा कमाया जाऐ यह स्थिति इसलिए ही है क्योंकि जमीने इतनी कम हैं कि उतनी पैदावार हो नहीं पाती जितनी जरूरतें हैं, विदेश जाने विज़ा लगवाने के चक्कर में कई छोटे किसान कर्जदार हो जाते हैं ऐजेन्ट विदेश भेजने के नाम पर उनसे पैसा ले लेते हैं, या (ब्लैक) गैर कानूनी तरीके से समुद्री रास्तों से

लड़कों को विदेश भेज दिया जाता है, इस समय पंजाब सबसे ज्यादा इसी समस्या से झूज रहा है, अपनी मौलिकता खो रहा यह प्रदेश आने वाली तमाम समस्याओं से अचेत है। लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि दहेज प्रथा जैसी सामाजिक रूढियों के कारण सामाजिक प्रतिष्ठा का ढ़ोल पिटते मां बाप शिक्षा पर पैसा खर्च करने से बेहतर दहेज देकर अच्छा कमाने वाला वर ढूंढना ज्यादा पसंद करते हैं। फिर भी पहले की अपेक्षा स्त्री शिक्षा में इजाफा हुआ है। लिंगानुपात तीसरी समस्या है अर्थात अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रति एक हजार महिलाओं की तुलना में पुरूषों की संख्या को लिंगानुपात कहा जाता है।

डा. मनोहर अगनानी के शब्दों में "भारत में ब्रिटिश शासन काल के दौरान जब अंगे्रज जनगणना आयुक्तों के माध्यम से जनगणना कार्य प्रारंभ कराया गया तो उन्होंने पाया कि भारत में महिलाओं की संख्या पुरूषों की तुलना में कम है। इसी कारण तत्कालीन प्रशासन ने इस अनुपात को नापने के तरीके बदल दिऐ। अब भारत ही एकमात्र ऐसा देश है, जहां अभी भी यह गणना अंतरराष्ट्रीय मापदंडों से भिन्न मापदंडों के अनुसार की जाती है। कुछ राज्यों का लिंगानुपात 2001 के अनुसार पंजाब 798, हरियाणा 819, दिल्ली 868, गुजरात 883, हिमाचल प्रदेश 896, उत्तरांचल 908, राजस्थान 909, महाराष्ट्र 913 उत्तर प्रदेश 916, शिशु लिंगानुपात में यह गिरावट चिंताजनक है। वर्ष 1991 में देश में एक भी ऐसा जिला नहीं था जिसका लिंगानुपात 800 से कम हो जबकि सन् 2001 मं 14 जिलों मे यह अनुपात 800 से कम दर्ज किया गया। इसी प्रकार वर्ष 1991 में केवल एक ही जिले शिशु लिंगानुसार 800 - 849 के बीच था, परंतु अब यह आंकडा 32 जिलों में 850 - 899 के बीच का शिशु लिंगानुपात दर्ज किया गया है। 800 से कम शिशु लिंगानुपात- 800 से कम शिशु लिंग अनुपात वाले भारत में 14 में से 19 जिले शिशु लिंगानुपात निम्नानुसार है-

पंजाबः- फतेहगढ साहिब 766, पटियाला 777, मनसा 782, बठिंडा 785, कपूरथला 785, संगरूर 786, गुरदासपुर 789, अमृतसर 790, और रूपनगर 794

हरियाणाः- कुरूक्षेत्र 771, अंबाला 782, सोनीपत 788, कैथल 791, और रोहतक 799

800 से 849 के मध्य शिशु लिंगानुपात

हरियाणाः- झण्सर 801, यमुनानगर,806, पानीपत 809, करनाल 809, रेवाडी 811, सिरसा 817, जींद 816, महेन्द्रगढ 818, फतेहाबाद 828, पंचकुता 829, हिसार 832, भिवाडी 841

पंजाबः- जालंधर 806, नवांशहर 808, मुक्तसर 811, फरीदकोट 812, फिरोजपुर 822

पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, गुजरात, हिमाचल प्रदेश में लड़कियों की संख्या 900 से भी नीचे दिखाई दे रही है। राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश उत्तरांचल, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में भी स्थिति भयावह व चिंताजनक है, जिसमें सुधार करना निसंदेह कठिन है। इसके पहले कि परिस्थितियां नियंत्रण से बाहर हो जाएं आवश्यकता इस बात की है कि समाज में सभी वर्ग कुछ दीर्घकालीन व दूरगामी उपाय करें। देश में सबसे अधिक खराब स्थिति वाले 14 जिले अर्थिक रूप से संपन्न पंजाब और हरियाणा के उत्तरी मैदानी क्षेत्रों के हैं। यहां के शिशु लिंगानुपात से न जाने कितनी लड़कियों की गैर-मौजूदगी का पता चलता है।

पंजाब इस राज्य में प्रति 1000 लड़कों की संख्यामात्र 798 है। पंजाब के किसी भी जिले मंे यह अनुपात 1000 लडकों के पीछे 822 लडकियों से अधिक नहीं है शेष जिलों में शिशु लिंग अनुपात 800 से कम है तथा शेष जिलों में

शिशु लिंगानुपात 800 से 822 में बीच है फतेहगढ साहिब में शिशु लिंगानुपात मात्र 766 है। जबकि अधिकता 822 फिरोजपुर में है।

हिमाचल प्रदेश	-	कांगडा 836 अना 837
जम्मू कश्मीर	-	जम्मू 816 कठुआ 814
मध्य प्रदेश	-	भिण्ड 832 मुरैना 837
दिल्ली	-	दक्षिण-पश्चिम 846
महाराष्ट्र	-	कोल्हापुर 839

धार्मिक समुदायों में लिंगानुपातः- कुछ समुदायों में बेटियों केा अवांछनीय माना जाता है। परिस्थितियां इस सीमा तक जटिल हैं कि या तो लडकियों को जन्म ही नहीं लेने दिया जाता उन्हें शिशु अवस्था में ही मार दिया जाता है। सिख समाज में शिशु लिंगानुपात 786/1000 है। हिंदुओं में शिशु लिंगानुपात 825/1000 है परंतु कुछ विशेष भौगोलिक अंचलों में हिंदू जनसंख्या में भी यह अनुपात 850 से भी नीचे गिर चुका है।

धार्मिक समुदाय	सभी	हिंदू	मुस्लिम	ईसाई	सिख
	बौद्ध	जैन	अन्य		
शिशु लिंगानुपात	927	925	950	964	786
	942	870	976		

हरियाणा:- इस राज्य में शिशु लिंगानुपात प्रति 1000 लडकों की तुलना मंे मात्र 819 लडकियां है। हरियाणा में 1991 में जनगणना की स्थिति अधिक खराब हुई है। राज्य में 19 जिलों में से 5 में 800 से कम, 12 में 800 से 849 के मध्य तथा शेष दो मं 900 से कम शिशु लिंगानुपात है। कुरूक्षेत्र 771 अंबाला 782 सोनीपत 788 कैथल 791 रोहतक 799 अधिक चिंतनीय स्थिति वाले जिले हंै। जिन पर तत्काल ही ध्यान दिया जाना आवश्यक है। ”

इस तरह पंजाब में लगातार कम हो रही लड़कियों की संख्या से स्त्री के प्रति उस समाज का रवैया स्वत: स्पष्ट हो जाता है|

अब देखना यह है कि क्या पंजाब वास्तव में अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, निर्मितियों में ऐसा ही है जहां खेत-खलिहानों में समृद्धि के गीत गाऐ जाते है। नहीं, यह उस पंजाब की केवल उपरी तस्वीर है। उसे हम इस तरह देख सकते हैं कि अब हर छोटा बडा किसान विदेश चले जाना चाहता है। क्योंकि अब पैदावार के मुकाबले मंहगाई बढ़ गई है, पंजाब में ज्यादातर लड़कियां विदेश में विवाह करने की इच्छुक दिखाई देती है इससे अनमेल विवाह को भी बढावा मिला है। पंजाब मे लगातार कम हो रही लडकियों की संख्या चिन्ता का विषय है। 2001 की गणना क अनुसार, लिंगानुपात 798 है, विधवा विवाह आज भी वहां उस तरह से स्वीकार्य नहीं है जैसे होना चाहिए। 'करेवा' प्रथा का विकराल रूप आज भी वहां मौजूद है। छोटे किसान भी कर्ज लेकर अपनी बेटी की शादी विदेश में करना चाहते हैं ताकि उसके साथ में भी विदेश जा सकें। विदेशो में पलायन करता पंजाब सब खेत-खलिहानों के प्रति उतना समर्पित नहीं है जितना कि पहले हुआ करता था, क्योंकि वह विदेशों में व्यापार के माध्यम से अधिक पैसा कमा सकता है। चंडीगढ, लुधियाना, पटियाला, आदि जगाह पर अंग्रेजी सीखने वाले जितने इंस्टीट्यूट हैं उतने वहां स्कूल काॅलेज नहीं है, 12वीं के बाद वहां हर विद्यार्थी लड़की हो या लड़का, अंग्रेजी में दक्षता के लिए काॅलेज की पढ़ाई छोडकर आईलैट्स की पढाई करना पसंद करता है उन्हें आसानी से कनाडा, अमेरिका, न्यूजीलैण्ड या फिर आॅस्ट्रेलिया व दुबई का वीज़ा मिल जाता है।

पंजाब में ज्यादातर मृत्यु नशीले पदार्थों के सेवन से होती है, जिससे विधवाओं की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। कुल मिलाकर इस समाज में भी महिलाओं की स्थिति बहुत बेहतर और बदतर एक साथ है, बहुत सी ऐसी लड़कियाँ है जो विदेश चले जाने पर भी उन्हीं सभी कामों को करती हैं जो भारत के ज्यादातर परिवारों की महिलाओं के हिस्से में आते हैं घर की देखभाल, बच्चों की परवरिश आदि, उच्च शिक्षा में महिलाएँ कम दिखाई देती हैं ऐसे ही संगीत के क्षेत्र में कुछ उदाहरणों को यदि छोड़ दिया जाए तो आज भी पंजाब की स्वर्ण स्त्रियां इस पेशे में नहीं के बराबर हैं। यही स्थिति पंजाबी फिल्मों की भी है। चित्रकला और लेखन में भी कंही महिलांए दिखाई देती है। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक पक्षों के अध्ययन के बाद इतना कहा जा सकता है कि इस समाज में स्त्री परिवार की आधार स्तंम्भ रही है। वह घर की केन्द्रिय धूरी रही पर वह कभी भी निर्णायक और नेतृत्वकर्ता नहीं रही। समाज की विकासमान स्थितियों ने उसको धीरे-धीरे स्वतंत्रता का रास्ता दिखाया और वह जड़ताओं को तोड़ते हुए समाज में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने में कामयाब हुई है। और उसने समाज के बने बनाऐ इन मापदंडों को तोड़ने का प्रयास किया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ शैल कुमारी, आधुनिक काव्य में नारी, 1951,पृ.सं 7
2. पीलू ,मिर्जा साहिबां, पृ.सं 12
3. हीर वारिस, डॉ जीत सिंह शीतल, 1963,पृ. 38
4. अनुज, पंजाब की प्रेम कहानियां, नया ज्ञानोदय, प्रेम महाविशेषांक, प्रेम का लोकपक्ष-5 नबंबर 2009, संपादक रविन्द्र कालिया पृ.सं. 44
5. हीर मुकवल, भाषा विभाग,पंजाब नोट्स 1961 पृ.सं.13
6. डॉ मनोहर अगनानी, कहाँ खो गई बेटियाँ ,वाणी प्रकाशन, 2007, पृ.सं. 22, 30

मणिपुरी बाल साहित्य का इतिहास

देवराज

उपलब्ध ऐतिहासिक सामाग्री के आधार पर वाङ्खैमयुम तोमचौ सिंह ने मणिपुरी भाषा में बाल साहित्य लेखन की शुरुआत की थी। सन् 1959 में प्रकाशित इबेनपोक्की वारि उनकी पहली बाल-साहित्य विषयक पुस्तक थी। सन 1960 में उनकी दूसरी पुस्तक ग्रहयात्रा प्रकाशित हुई। इनमें से पहली पुस्तक में मणिपुरी समाज में प्रचलित लोक कथाओं का बालकों को ध्यान में रखकर पुनर्लेखन किया गया है, अर्थात ये री-टोल्ड कथाएँ हैं, जो जिज्ञासा, आकस्मिक घटना परिवर्तन, मानव और मनवेतर शक्ति के विभिन्न आश्चर्यजनक प्रभावों, पुश-पक्षियों की विस्मयकारी भूमिकाओं तथा मनोरंजन आदि तत्त्वों से भरपूर हैं। इबेनपोक्की वारि का अर्थ है, दादी की कहानियाँ। लेखक ने दादी की ओर से कहानी कहने का लाभ उठा कर यत्र-तत्र प्रत्यक्ष-परोक्ष उपदेश एवं शिक्षाओं का भी विधान किया है और हल्के-फुल्के रूप में गाँवों, जंगलों तथा नगर-जीवन की जानकारी देकर बालकों का ज्ञान बढ़ाने का प्रयास किया है।

वाङ्खैमयुम तोमचौ सिंह की दूसरी पुस्तक काल्पनिक विज्ञान कथाओं के माध्यम से बच्चों की कल्पना शक्ति का विकास करने के उद्देश्य से लिखी गई है। उन दिनों यद्यपि किसी ग्रह पर मनुष्य के कदम नहीं पड़े थे, किन्तु इस दिशा में सोवियत रूस और अमेरिका जैसे देशों के वैज्ञानिक महत्त्वाकांक्षी योजनाओं पर कार्य कर रहे थे। इससे प्रकृति और ब्रह्मांड के रहस्यों पर विजय पाने की मनुष्य की दबी हुई आकांक्षा आदिम गुफाओं और आधुनिक प्रयोगशाला से बाहर मौखिक और लिखित भाषा में कुलांचे भर रही थी। ग्रह यात्रा शीर्षक पुस्तक में उसी का एक रूप दिखाई देता है, जो बालकों को विज्ञान संबंधी रुचि से भी जोड़ता है।

सन 1961 में लालबाबू सिंह द्वारा लिखित अड़ाङ् सभा, (बालकों की सभा), खुनजा सभा (गाँव की सभा) और मतमगी मङाल (युग प्रकाश) शीर्षक तीन बाल-पुस्तकें प्रकाश में आई। इन सभी में बच्चों के लिए मनोरंजक और शिक्षाप्रद कहानियाँ संकलित हैं। कुछ कहानियों में सरल शैली में मणिपुरी जन-जीवन, संस्कृति और इतिहास की जानकारी भी दी गई है। इस विषयवस्तु की दृष्टि से लाइमयुम कृष्णचन्द्र शर्मा की पुस्तक अङाङ्गी लमजिङ् वारि (बाल दिग्दर्शक कथाएँ) और हिजम याइमा की रचना, थौ नाफबा खरगी वारि (कुछ वीरों की कथाएँ) भी उल्लेख योग्य हैं। उसी काल में छपी ये कृतियाँ बालकों के लिए बड़ी उपयोगी जानकारी से युक्त हैं। इनके मूल में बाल-मानस को प्रारंभ से ही अपने समाज और संस्कृति संबंधी मूल्यों से जोड़ने का भाव भी झलकता है।

बीसवीं सताब्दी के सातवें दशक के प्रारंभ में ही मणिपुरी बाल-साहित्य को प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक चेतना से संपन्न बनाने का प्रयास भी देखने को मिलता है। यह सर्वज्ञात है कि भारतीय मनीषा का सार-तत्व रामायण-महाभारत की रचना के रूप में प्रस्तुत हुआ था।

इनमें इतिहास, पुराण, धर्म, संस्कृति, दर्शन, राजनीति, लोक, समाज, व्यक्ति, न्याय और सबसे बढ़कर जीवन-संघर्ष की चुनौतियों को स्वीकारने के दृढ़ संकल्पों से जुड़े मूल्य विद्यमान हैं। इन विशेषताओं के कारण ये महाग्रंथ आज तक भी विविध रूपों में सभी के प्रेरणा-स्रोत बने हुए हैं। बालकों के जीवन को जीवन के आदर्शों के साथ ही उनको यथार्थ से जोड़ने के लिए भी इनका उपयोग दीर्घ काल से किया जा रहा है। मणिपुरी भाषा में सर्वप्रथम अयेकपम श्यामसुंदर सिंह ने अङाङ्गी रामायण (बाल रामायण) और अङाङ्गी महाभारत (बाल महाभारत) के रूप में राम कथा तथा महाभारत-कथा का बालकों के बौद्धिक विकास हेतु सरल भाषा-शैली में पुनर्लेखन किया। कुछ वर्षों बाद मणिपुर में हिंदी प्रचार आंदोलन के प्रारम्भिक कार्यकर्ताओं में से एक, तेमेल आबीर सिंह ने भी अङाङ्गी महाभारत नाम पुस्तक की रचना की। राजकुमार सनतोम्बा सिंह ने महाभारत कथा को बच्चों के लिए प्रस्तुत करते समय चित्रों का प्रयोग भी किया। उनके द्वारा री-टोल्ड शैली में रचित अङाङ्गी महाभारत पुस्तक में विभिन्न प्रसंगों के चित्र दिये गए हैं। इसका उदेश्य बालकों की रुचि के साथ ही उनकी कल्पना व कलात्मक रुचि का विस्तार करना भी है।

इक्कीसवीं शताब्दी में मणिपुरी बाल-साहित्य अपनी विकास-यात्रा को आगे बढ़ाते हुए नएनए मार्ग तलाश रहा है। उदाहरण के लिए सन् 2002 में मणिपुरी बाल-साहित्य में एक ऐसी पुस्तक शामिल हुई जिसमें तेरह भाषाओं की बालकथाओं का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। कुंजो निङोम्बम द्वारा तैयार की गई इस पुस्तक, ख्वाइदगी फजबा वारीमचा तराहु मदोई में असमीया (अनंत देव शर्मा), बंगला (सत्यजीत राय), अंग्रेज़ी (रस्किन बॉण्ड), गुजराती (पन्नालाल पटेल), हिंदी (भीष्म साहनी), कन्नड (त्रिवेणी), मलयालम (तारुणीकान्त पिल्लै), मराठी (वी. आर. भागवत), ओड़िया (शांतनुकुमार आचार्य), पंजाबी(गुरुबख्श सिंह), तमिल (सुंदर रामस्वमी), तेलुगू (रा॰ सोमराजन) और उर्दू (सिराज अनवर) की बाल कहानियों का मणिपुरी अनुवाद उपलब्ध है। हम समझ सकते हैं कि मणिपुरी भाषा के इस बाल-साहित्य लेखक ने अपनी मातृ भाषा को समृद्ध बनाने के लिए अत्यधिक परिश्रम किया है। इस प्रकार के और भी प्रयास होने चाहिए।

निश्चित रूप से बाल-साहित्य के क्षेत्र में यह प्रयास नवीन और अधिक वैज्ञानिक कहा जा सकता है।

सन 1965 में सगोलसेम इंद्रकुमार ने बालकों के लिए अरबगी अहिङ् (अरब की रातें) पुस्तक प्रस्तुत की। इसकी कहानियाँ अरेबियन नाइटस की विभिन्न कथाओं के आधार पर लिखी गई हैं, अत: इनमें जिज्ञासा के साथ ही रहस्य-रोमांच विद्यमान है। सन 1966 में इंद्रकुमार की एक और रचना पिनकियो का प्रकाशन हुआ। पिनकियो एक रोमांचकारी पात्र है, जिसे केंद्र में रखकर लेखक ने अनेक बालोपयोगी कथाओं का ताना-बाना तैयार किया है। यह प्रकाशन कथा-क्रम (स्टोरी-सिरीज) शैली में हुआ। सगोलसेम इंद्रकुमार आकाशवाणी में कार्यक्रम अधिकारी थे और बाद में उप निदेशक बने। स्वाभाविक रूप से वे भाषा के बालोपयोगी श्रवण और संप्रेषण पक्ष से अच्छी तरह परिचित थे। उनकी ये कहानियाँ आकाशवाणी के बाल कार्यक्रम में सुनाई जाती थीं। बच्चे इनमें आनंद प्राप्त करते थे।

सन 1966 में ही तंफासना देवी (राजकुमारी तंफासना) की पंचतंत्र शीर्षक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसके नाम से ही

स्पष्ट है कि इसमें विष्णु शर्मा के पंचतंत्र की पशु-पक्षियों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने वाली कथाओं से प्रभावित कहानियाँ हैं।

सन 1968 में फाञ्जौबम गुलाप बाबू ने बाल-साहित्य के क्षेत्र में कदम रखा। उनके आने से मणिपुरी बाल-साहित्य के विस्तार की भूमिका तैयार हुई। उन्होंने बालकों के लिए नोङ्हौ लैहौ शीर्षक पुस्तक लिखी। इसमें सृष्टि के प्रारंभ की कथा कही गई है। इसमें बताया गया है कि खोयुम लाईनिङ्थौ प्रथम के माध्यम से पाँच तत्वों (मायाङ् मङा), अतिया (आकाश), लैपाक (भूमि), मैइ (अग्नि), नूङ्शित (वायु), इशिङ् (जल) का निर्माण हुआ। इसके पश्चात पा (सोररेन सिदबा) और पी (लैमरैन) का अवतरण हुआ। पुस्तक में इससे आगे सृष्टि के अस्तित्व में आने की कथा है। लेखक ने कथा की प्रस्तुति लीला नाट्य की भाँति की है।

सन 1968 में ही मणिपुरी बाल-साहित्य लेखन के क्षेत्र में लौबुकतोङ्बम रघुमणि शर्मा के रूप में एक ऐसे प्रतिभाशाली लेखक ने कदम रखा, जिसने विषय वैविध्य और परिमाण, दोनों ही दृष्टियों से आज तक के इतिहास में सबसे अधिक बाल-साहित्य की रचना की। उन्होंने 1968 में बाल-साहित्य विषयक प्रथम पुस्तक का लेखन-प्रकाशन किया था। तब से अब तक प्रकाशित उनकी पुस्तकों की सूची अग्रांकित है- भागवतकी वारि (भागवत कथा, 1968) लैबाक्कीगाड़ी (मिट्टी की गाड़ी 1973), पंचतंत्रगी वारि (पंचतंत्र की कहानियाँ, 1973), तुलसी, 1974, उपनिषद की वारि (उपनिषद की कहानियाँ, 1974), अङाङ्गी पंचतंत्र (बाल पंचतंत्र, 1982), पंचतंत्र वारि खरा (पंचतंत्र की कुछ कहानियाँ, 1983), काङ्नबा वारि खरा: प्रथम भाग (कुछ उपयोगी कहानियाँ 1987), लमजीङ् बा, 1887 (पथ प्रदर्शक), कान्नबा वारि खरा: दूसरा भाग, 1988 मरूप कायनबा (मित्र वियोग), केसरी फल, (मामले का फैसला, 1987), माचिप-मौपबा (भाई-बहन, 1988), दधिचिगी त्याग (दधीचि का त्याग, 1990), अखन्नबा वारि (चुनी हुई कहानियाँ, 1992), हिंङ्चाबगी खाबोङ् (दानव की झोली, 1993), को इशाङ्बा (लंबी दाढ़ी वाला, 1994), लाइबक (भाग्य, 1995), मणि माला – 1995, तम्फ़ा-1995, वारि मखल मथेल (तरह-तरह की चुनी हुई कहानियाँ, 1995), लिङ्जेल माङ्नबा- (साहस और एकता, 1993), फजबी- 1995, फुङ्गा वारि खरा (कुछ लोक कथाएँ, 1996), लमनखुम्बा, (बदला, 1998)।

रघुमणि शर्मा द्वारा लिखित इन चौबीस पुस्तकों में पौराणिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक स्त्रोतों के साथ ही पंचतंत्र जैसी विश्व प्रसिद्ध आख्यायिका को भी आधार सामग्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये ऐसे स्रोत हैं, जिन्हें प्रत्येक भारतीय भाषा के बाल-साहित्य लेखकों ने उन्मुक्त भाव से अपनाया है, जिससे इस महादेश के सभी क्षेत्रों के बच्चे समन्वित सांस्कृतिक जानकारी से संपन्न हुए हैं। जैसे अन्य क्षेत्रों में धार्मिक और सांस्कृतिक प्रसंगों को कहने की शैली विभिन्न लेखकों की अपनी रही है, वही शैली रघुमणि शर्मा की भी है। इस विपुल बाल साहित्य की दूसरी विशेषता है, लोक-स्रोत का उपयोग। मणिपुरी भाषा में एक शब्द है, "फुङा वारि" जिसका सामान्य अर्थ होगा, अलाव के पास बैठ कर सुनाई जाने वाली कथा। मान्यता है कि पुराने जमाने में आज जैसे मनोरंजन के साधन न होने के कारण यह आशंका बनी रहती थी कि रात का भोजन तैयार होने के पूर्व ही बच्चे सो जाएँगे, फिर उन्हें नींद से जगा कर खिलना होगा। इसलिए दादा-नानी उन्हें जगाए रखने के लिए मनोरंजक कहानियाँ सुनाते रहते थे।

उस काल में वहाँ सर्दी ही अधिक पड़ती थी, अत: कहानी सुनने का कार्य अलाव तापते हुए होता था। इसी से इसका नाम पड़ा, फुङा (अलाव), वारि (कहानी)। इनमें कुछ कहानियाँ पुरानी परंपरा से प्रचलित होती थीं, कुछ कहानियों में बड़ी-बुढ़ियाँ, अपनी ओर से कुछ मिला देतीं और कुछ कहानियाँ पूरी तरह उनकी अपनी कल्पना से बुनी हुई होती थीं। आजकल ये सभी लोक्कथाएँ कहलाती है और इनके चलते फुङावारि का अर्थ लोक-कथा माने जाने लगा है। रघुमणि शर्मा ने इस फुङावारि शैली में अनेक बाल-पुस्तकें तैयार की हैं। उन्होंने न केवल भारत, बल्कि अन्य देशों की फुङावारियों का भी पुनर्कथन (पुनर्लेखन) करके अपने ढंग की बाल-कथाएँ तैयार की हैं। वारि मखल मथेल इसी प्रकार की रचना है। रघुमणि शर्मा ने तीसरे प्रकार की रचनाएँ पूर्णत: अपनी कल्पना के आधार पर प्रस्तुत की हैं। इनमें लेखक की प्रतिभा, बाल मनोविज्ञान की गहन जानकारी, व्यापक विषय-ज्ञान, और कथक्कडी का प्रभावकारी समन्वय दिखाई देता हैं। उन्होंने दो बाल-नाटक भी लिखे हैं, जिनमें से एक पंचतंत्र की कथा पर आधारित है। मरूप कायनबा नामक इस नाटक में पिंगलक, कर्तक, संजीवक, दमनक आदि पशु-पात्र हैं। दूसरा नाटक, लिङ्जेल मान्नबा, पूरी तरह लेखक की मौलिक कल्पना पर आधारित है तथा बालकों को एकता का रहस्य और महत्व समझाता है। अपने स्तर पर दोनों नाटक शिक्षाप्रद हैं।

रघुमणि शर्मा द्वारा रचित बाल-साहित्य में कोङ्शाङ्बा विशेष चर्चित है। इसकी कथा स्वर्ण भूमि नामक एक सुखी-संपन्न और चोरी जैसी बुराईयों से रहित राज्य की है। बाल-उपन्यास जैसी यह रचना पढ़ने में रोचक और मनोहर है। इसमें उल्लेखित स्वर्ण भूमि मणिपुर का एक प्राचीन नाम 'सना लैबाक' भी है।

रघुमणि शर्मा के विषय में इस तथ्य का उदघाटन करना भी आवश्यक है कि उन्होंने एकाधिक नामों से बाल-साहित्य की रचना की है। रघुमणि, रघुमणि शर्मा, आर.आर.शर्मा, रामनाथ देव, तुङ्गनाथ देव, तुङ्गनाथ शर्मा आदि के नाम से उनकी बाल-साहित्य की पुस्तकें उपलब्ध हैं। इस नाम-वैभिन्य के मूल में एक गंभीर और बड़ा कारण है, जीविकोपार्जन की विवशता। स्वतंत्र लेखन को जीविका के साधन के रूप में अपनाने वाले रघुमणि शर्मा अपनी अदभुत प्रतिभा के बल पर विपुल परिमाण में श्रेष्ठ कोटि का बाल-साहित्य रचने के बाद भी एक ही नाम से न तो बार-बार सरकारी पुस्तक क्रय योजना का लाभ उठा सकते थे और न पुरस्कार योजनाओं में शामिल होकर सफल हो सकते थे। इसका उपाय यही था कि वे अलग-अलग नामों से लेखन करें, ताकि आजीविका की समस्या भी हल होती रहे और साहित्य-सृजन में निरंतरता भी बनी रहे। यह एक अप्रीतिकर प्रसंग है, जिससे रघुमणि शर्मा के पाठकों को पीड़ा भी पहुँच सकती है किंतु इतिहास लिखते समय सत्य और तथ्य के प्रकाशन की विवशता के साथ ही इस वास्तविकता का उल्लेख मणिपुरी भाषा के बाल-साहित्य लेखक की जीवन-संघर्ष-गाथा को पाठकों के सामने लाने की दृष्टि से भी अनिवार्य है। इस रूप में उनका जीवन-संघर्ष अपने आप में एक ऐसी सक्षम कहानी है, जो साहित्य प्रेमियों को बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करती है। इससे हम कम पाठक संख्या वाले, अल्प परिचित तथा प्रोत्साहन की ठोस योजनाओं से दूर रहती आई अनेक भारतीय भाषाओं के लेखकों की व्यावहारिक समस्याओं का सीधा साक्षात्कार कर सकते हैं।

मणिपुरी बाल-साहित्य में एक अभिनव मोड़ 1969 में देखने को मिला। इस वर्ष तत्कालीन मणिपुरी रंगमंच के प्रख्यात पुरुष एच.अङौबा सिंह की पुस्तक फुङावारि का

प्रकाशन हुआ। पहले उल्लेख किया जा चुका है कि इंद्रकुमार सिंह की रचना, पिनकियो की कहानियाँ आकाशवाणी पर प्रसारित की जाती थीं। लेकिन फुडावारि में उस लेखक की कहानियाँ हैं, जो उन कहानियों को स्वयं आकाशवाणी के कार्यक्रमों में बालकों को सुनाया करता था। एच. अडौबा सिंह आकाशवाणी के इम्फाल केंद्र पर प्रत्येक रविवार को बाल-सभा में कहानी सुनाते थे। वे स्वयं उच्च कोटि के नाट्य-निर्देशक, नाटक-लेखक और अभिनेता थे, अतः उन्होंने लोक-स्रोत से उपलब्ध कथाओं को बालकोपयोगी बनाने की लिए सर्व प्रथम उनमें नाट्य-तत्व का समावेश कराया और बाल-सभा की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए हास्य प्रधान मनोरंजन पर विशेष बल दिया। आकाशवाणी की बाल-सभा को जीवंत बनाने के लिए ऐसा करना स्वाभाविक था।

सन 1971 में लाइश्रम थानील द्वारा रचित दो बाल पुस्तकें प्रकाशित हुई पानबा लाइरिक (सफलता की पुस्तक) और अङाङ्गी पाओताक वारि (बाल उपदेश कथाएँ)। इन दोनों पुस्तकों के नाम से ही स्पष्ट है कि लेखक के मन में कहानी से अधिक बच्चों को उपदेश देने और अच्छा नागरिक बनाने की चाह है। स्वाभाविक रूप से यहाँ कहानी पीछे है और उपदेश आगे।

सन 1980 में पी. कोकङाङ् की पुस्तक लिङ्जल मान्नबा (मतैक्य) का प्रकाशन हुआ। इसके साथ ही उनकी दूसरी बाल-पुस्तक अङाङ्गगी लमचत (बच्चों की सीढ़ी) भी छपी। कोकङाङ् मणिपुरी भाषा के आधुनिक बोध संपन्न कवि रहे हैं, अत: उनकी बाल-कथाओं में लोक और व्यवहार के साथ ही कल्पना की भी अच्छी-खासी भूमिका देखने को मिलती है। वे बालकों को नए युग की संभावनाओं के सामने भी खड़ा करना चाहते रहे होंगे।

सन् 1981 में मणिपुरी और हिंदी, दोनों भाषाओं पर असाधारण अधिकार रखने वाले विद्वान लेखक इबोहल सिंह काङ्जम की बाल-कथा पुस्तक – नायम्बगी खुदोन (बड़े भाई का उपहार) प्रकाश में आई। इसकी सभी कहानियाँ बालकों को उनके बड़े भाई द्वारा सुनाई जाती हैं। लेखक ने अपने स्वभाव के अनुसार स्थान-स्थान पर सामाजिक जीवन-मूल्यों को बालकों के संस्कार में ढालने का प्रयास किया है।

सन 1988 में वाई.एम. सिंह ने बालकों के लिए वैज्ञानिक लेखन के क्षेत्र में रुचि ली और उनकी अतियाबा पाङ्बा (आकाश की उड़ान) शीर्षक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमे बड़ी सरल भाषा में बालकों को हवाई जहाज की निर्माण-कथा सुनाई-समझाई गई है। लेखक की विशेषता है कि उसने वायुयान निर्माण के विभिन्न चरणों की जानकारी देते हुए यान, उड़ान, विमानपत्तन, आकाश आदि की विज्ञान सम्मत तथ्यात्मक जानकारी भी रोचक शैली में प्रदान की है।

सन 1989 में एक युवा लेखिका देवला देवी ने बच्चों के लिए वैज्ञानिक लेखन के क्षेत्र में कदम रखा और वे पूरी तरह उसी को समर्पित हो गईं। उनके द्वारा लिखित बाल-विज्ञान साहित्य इस प्रकार है – खङ्बदा कन्नबा (उपयोगी जानकारी 1989), अङाङ्गी विज्ञान (बाल-विज्ञान, 1991) खङ्जिनबदा कान्नबा खरा (कुछ जानने योग्य बातें, 1993) मतमगी विज्ञान (आधुनिक विज्ञान, 1993) अकोयोबी शक्तम्बू शेङ्हन्दबा अमसुङ् मसिगी फल (पर्यावरण प्रदूषण और उसके प्रभाव, 1995) ऐखोयगी जगत (हमारा जगत, 1998)। इसके अतिरिक्त उनकी एक बाल-विज्ञान साहित्य की अप्रकाशित पुस्तक इनर्जी अमसुङ् ओयबगी फीभम (ऊर्जा और पर्यावरण) भी है।

देवला देवी ने अब तक बालकों के लिए सबसे अधिक वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण किया है। इसके माध्यम से उन्होंने ब्रह्माण्ड की संरचना, सौर-मण्डल, सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वी का वैज्ञानिक संबंध, सूर्य एवं चंद्र ग्रहण, दिन और रात होने का वैज्ञानिक कारण, पशु-पक्षियों एवं अन्य जीवों का व्यवहार, रहन-सहन, स्वभाव, वनस्पतियों की जानकारी, तत्व, अणु, परमाणु, क्रिया-प्रतिक्रिया का सिद्धांत, वायु, गैस, वाष्पीकरण, निर्वात, भोजन, भूख और शरीर का संबंध, प्रोटीन, विटामिन्स और अन्य पुष्टिकारक तत्वों की भूमिका, जल का महत्व, पर्यावरण- प्रदूषण के कारण एवं पर्यावरण-चेतना जैसे महत्वपूर्ण विषयों की उपयोगी जानकारी को बालकों के लिए सुलभ बनाया है। लेखिका ने वैज्ञानिक ज्ञान की सुलभता बढ़ाने के लिए चित्रों का भी भरपूर उपयोग किया है।

सन 1992 में मणिपुरी भाषा के कहानीकार राजकुमार मणि की पुस्तक, वारिली खीडुल्ली.(कहानी सुनो अनुसरण करो) के प्रथम भाग का प्रकाशन हुआ। इसमें छोटी-छोटी एक-सौ एक कहानियाँ हैं। इसी पुस्तक के दूसरे भाग का प्रकाशन 1997 में हुआ। इसमें एक सौ बारह कहानियाँ हैं। राजकुमार मणि की इन पुस्तकों में दी गई कहानियों का आकार लघु है तथा चित्र-दृश्यों पर अधिक बल दिया गया है। कथाकार ने अपने सृजन-कौशल का प्रयोग करते हुए इन्हें कौतूहल-तत्व से परिपूर्ण भी बनाया है। इन पुस्तकों के प्रकाशन में प्रस्तुतीकरण तकनीक और सौन्दर्य पर अधिक बल दिए जाने के कारण बालकों के लिए इनका आकर्षण बढ़ गया है।

मणिपुरी बाल-साहित्य के इतिहास में सन् 1999 का वर्ष बहुत महत्वपूर्ण रहा। इस वर्ष मणिपुरी भाषा के पहले बाल-काव्य का प्रकाशन हुआ। सनाकैथेलगी लाइफदिबी बाइ तोनू देवी (समृद्ध बाजार की गुड़िया: द्वारा तोनू देवी) शीर्षक से इस बाल-काव्य की रचना आधुनिक मणिपुरी कविता आंदोलन के प्रारंभकर्ताओं में से एक, लाइश्रम समरेन्द्र ने की। तोनू देवी गुड़िया बनाने में कुशल एक मणिपुरी स्त्री है। वह चार खण्डों वाली एक ऐसी कहानी सुनाती है, जिसकी वह स्वयं साक्षी है। कहानी के चारों खंड भी उपखंडों में विभक्त हैं।

इस बाल-काव्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, कथा में वर्णित कथक्कड़ पात्र का पूरे घटनाक्रम में शामिल रहना। दूसरी विशेषता, बच्चों और गुड़िया का विविध खेलों में भाग लेना है। इसकी तीसरी विशेषता इतिहास, परंपरा और रीति-रिवाजों की अनजाने ही जानकारी देना है और चौथी विशेषता है, बालकोचित अति साधारण भाषा का प्रयोग। इस काव्य-पुस्तक में मणिपुरी गुड़िया तथा अन्य वर्णित घटनाओं के चित्र भी दिए गए हैं। ये सारे चित्र कवि समरेन्द्र द्वारा ही बनाए गए हैं। मणिपुरी शैली की गुड़िया का वास्तविक चित्र इसी कविता के साथ देखने को मिलता है।

इक्कीसवीं शताब्दी में मणिपुरी बाल-साहित्य अपनी विकास-यात्रा को आगे बढ़ाते हुए नएनए मार्ग तलाश रहा है। उदाहरण के लिए सन् 2002 में मणिपुरी बाल-साहित्य में एक ऐसी पुस्तक शामिल हुई जिसमें तेरह भाषाओं की बालकथाओं का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। कुंजो निङोम्बम द्वारा तैयार की गई इस पुस्तक, ख्वाइदगी फजबा वारीमचा तराहुमदोई में असमीया (अनंत देव शर्मा), बंगला (सत्यजीत राय), अंग्रेज़ी (रस्किन बॉण्ड), गुजराती (पन्नालाल पटेल), हिंदी (भीष्म साहनी), कन्नड (त्रिवेणी), मलयालम (तारुणीकान्त पिल्लै), मराठी (वी. आर. भागवत), ओड़िया (शांतनुकुमार आचार्य), पंजाबी(गुरुबख्श

सिंह), तमिल (सुंदर रामस्वमी), तेलुगू (रा॰ सोमराजन) और उर्दू (सिराज अनवर) की बाल कहानियों का मणिपुरी अनुवाद उपलब्ध है। हम समझ सकते हैं कि मणिपुरी भाषा के इस बाल-साहित्य लेखक ने अपनी मातृ भाषा को समृद्ध बनाने के लिए अत्यधिक परिश्रम किया है। इस प्रकार के और भी प्रयास होने चाहिए।

सन 2004 में डाथेम निडोल काङबम, ओङ्ग इबेयाइमा की लोक कथा पुस्तक, उमाइबी अमसुङ, अतै फुङ्गावारि सिङ् का प्रकाशन हुआ| इसमें लेखिका ने बालकों के मनोरंजन के लिए कथाओं का ताना-बाना तैयार किया है। इसकी एक बालकथा, वारी डाङ्बा निङ्थौ एक ऐसे राजा की कहानी है, जिसे कहानियाँ सुनने का बहुत शौक था। वह समझता था कि उसे कोई भी कहानी सुना कर उसका मन नहीं भर सकता। उसने अपने राज्य में एक शर्त प्रचारित कर दी कि जो भी व्यक्ति उसे कहानियाँ सुनाकर संतुष्ट कर देगा, वह उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करेगा। विवाह के लालच में एक से एक ज्ञानी- पण्डित कहानी सुनाने आता है और राजा प्रतिदिन कहानी सुनने के बाद कह देता है कि उसकी सुनाई कहानी से वह संतुष्ट नहीं है। कहानी सुनाने वाले निराश होकर चले जाते और राजा आनंद मनाते हुए किसी दूसरे कहानी सुनाने वाले की राह देखने लगता। अंत में एक निर्धन युवक कहानी सुनाने आता है। वह राजा से कहता है कि उसके पास एक ऐसी कहानी है, जिससे राजा का मन अवश्य ही भर जाएगा । राजा उसे वचन देता है कि यदि उसके द्वारा सुनाई गई कहानी से वह संतुष्ट हो जाता है, तो अपनी पुत्री उस युवक को सौंप देगा। युवक कहानी सुनाना शुरू करता है- 'एक राजा था उसके पास एक कुठला था। कुठला धान से भरा हुआ था। चींटियों को इसका पता चल गया। वे एक दिन आईं और कुठले में से एक-एक धान लेकर चलीं गईं। इतना कहकर युवक चुप हो गया। राजा ने कहा, इसके बाद क्या हुआ? युवक बोला कि कल फिर चींटियाँ आएंगी, तब कहानी आगे बढ़ेगी। अगले दिन कहानी में चींटियाँ आईं और एक-एक दाना लेकर चली गई। राजा ने कहा कहानी आगे बढ़ाओ। युवक बोला, जब चींटियाँ सारे दाने ले जाएंगी, तभी तो पता चलेगा कि आगे क्या हुआ? राजा युवक की चालाकी समझ गया। उसने हार मान लेने में ही भलाई समझी। युवक राजकुमारी लेकर चला गया।

सन् 2006 में कोङ्जम शांतिबाला ने मणिपुरी बाल-साहित्य को, तल तरेत (सात रोटियाँ) शीर्षक पुस्तक के माध्यम से विकास का एक नया आयाम प्रदान किया। तल तरेत बाल नाटकों की पुस्तक है। इसमें संग्रहीत बाल नाटकों के शीर्षक हैं, तल तरेत, पातालगी, निङ्थौ, चंद्रकङ्नान, इरेमतोङ्बी लैमा, ड्रामा तम्बा, तेनबा अनी और चिट्ठी। इनमें से शीर्षक बाल नाटक कतन नामक आलसी और अकर्मण्य युवक की कथा प्रस्तुत करता है। वह अपनी विधवा माँ के साथ रहता है। माँ उसे काम करके कुछ कमाने के लिए कहती है, किंतु उसके कानों पर जूं नहीं रेंगती। हार कर एक दिन उसकी माँ सात दिन तक खाने के लिए सात रोटियाँ बनाती है और कतन को देकर परदेस भेज देती है। कतन चलते-चलते एक जंगल से गुजरता है। वहाँ एक सरोवर है, जिसमें सात परियाँ जल क्रीड़ा कर रहीं हैं। उनके खेलने से पानी गंदा हो गया है। कतन को सरोवर के किनारे पहुंचा देख कर परियाँ उसे सरोवर का मालिक समझती हैं और डर कर छिप जाती हैं। कतन कहता है कि सरोवर में लहरें क्यों उठ रहीं हैं? परियाँ और भी डर जाती हैं। कतन को भूख लगी है। वह एक पेड़ के नीचे बैठ कर रोटियाँ खोलता है और कहता है, कौन सी पहले खाऊँ? पहली बड़ी है तीसरी मोटी है, सातवीं छोटी है..... अच्छा सबको खा जाता हूँ। परियाँ उसी पेड़ के पीछे

छिपी थीं। कतन की बात सुनकर उनके प्राण निकलने लगते हैं। वे उसके सामने आ जातीं हैं और क्षमा याचना करती हैं। फिर वे उसे पानी गंदा करने के बदले एक बकरी देती हैं। कतन बकरी लेकर खुशी- खुशी घर लौटने लगता है। इसी बीच रात हो जाती है। उसे एक निर्धन परिवार में रात काटनी पड़ती है। रात में जब कतन सो जाता है, तो निर्धन पति-पत्नी उसकी बकरी बदल देते हैं। कतन को इस बात का पता नहीं चलता। वह बदली हुई बकरी के साथ घर आ जाता है, किंतु वह दूध नहीं देती। उसे परियों पर गुस्सा आता है। वह फिर उनके पास जाता है। इसके बाद परियाँ उसे रस्सी और कछुआ देती हैं। यह बाल नाटक मंच पर बहुत अधिक मनोरंजन करता है।

सन 2007 में पृथ्वीगी फुङ्गावारी खरा शीर्षक पुस्तक का पुनः प्रकाशन हुआ। इसे इसकी लेखिका क्षेत्रीयमयुम सुवदनी ने 1994 और 1997 में भी प्रकाशित कराया था। यहाँ इसके उल्लेख का उद्देश्य यह है कि जैसे-जैसे मणिपुरी भाषा का बाल-साहित्य आगे बढ़ रहा है, वैसे-वैसे अपने देश के साथ ही अन्य देशों की बाल-कथाओं को भी उसका अभिन्न अंग बनाया जा रहा है। इस पुस्तक में कोरिया, म्यांमार, फिलिपींस, मलेशिया, इंडोनेशिया, तिब्बत, श्रीलंका, पाकिस्तान, चीन, इटली, अफ़गानिस्तान आदि देशों की कहानियाँ हैं। जब यह पुस्तक पहले पहल प्रकाशित हुई थी, तो इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था, किंतु जब इसका प्रकाशन सन 2007 में हुआ तो इसने पाठकों पर अत्यधिक प्रभाव छोड़ा। क्षेत्रिमयुम सुवदनी इसके पूर्व सन 2001 में प्रजातंत्र चतपा लैबाक अमगीवारी और 2002 में अवाङ् लोङ्पोक्की फुङ्गावारी शीर्षक पुस्तकों से भी मणिपुरी बाल-साहित्य को पर्याप्त समृद्धि प्रदान कर चुकी थीं।

मणिपुरी बाल-साहित्य के क्षेत्र में गोपाल शर्मा, डॉ॰ जामिनी देवी, टी॰ एच॰ नोदिया, सनामतुम सिंह, इबोतोम्बी वाइखोम, वीणापाणि देवी, इबोसना खुमन, पृथ्वी मीतै, मधुमंगल आदि भी समय-समय पर पुस्तकाकार और मुक्त रूप में बाल-साहित्य की रचना करते रहे हैं।

मणिपुरी भाषा में बालकों के लिए दो कॉमिक्स भी प्रकाशित हुए हैं। इनमें से एक हीराचंद्र ऐतिहासिक घटनाओं पर और दूसरा कबुई कैओइबा लोक साहित्य स्रोत पर आधारित है।

मणिपुरी बाल-साहित्य के इस इतिहासपरक सर्वेक्षण के साथ ही कुछ ऐसे तथ्यों पर प्रकाश डालना भी आवश्यक है, जो इस साहित्य और उसके रचनाकार, दोनों के समक्ष उपस्थित समस्याओं का संकेत करते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है, साहित्य के इतिहास लेखकों द्वारा बाल-साहित्य की उपेक्षा। यह एक कष्टप्रद सच्चाई है कि मणिपुरी लेखकों ने साहित्येतिहास लेखन पर सबसे कम ध्यान दिया है। पदमश्री कालाचंद शास्त्री और पदमश्री खेलचंद्र सिंह ने ही मणिपुरी भाषा में साहित्य का इतिहास लिखा है, लेकिन इन में से किसी की भी पुस्तक में इतिहास-दृष्टि का समावेश देखने को नहीं मिलता। इनमें बाल-साहित्य की जानकारी का भी सर्वथा अभाव है। राजकुमार झलजीत सिंह ने अंग्रेज़ी भाषा में मणिपुरी साहित्य का इतिहास लिखा है, किंतु वह प्राचीन और मध्यकाल तक की रचनाओं का ही परिचय देता है। अंग्रेज़ी में एक इतिहास सी॰एच॰ मनिहार सिंह ने भी तैयार किया है। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित इस ग्रंथ में आधुनिक काल को भी चर्चा का विषय बनाया गया है, किंतु वहाँ भी बाल-साहित्य के संबंध में कोई जानकारी नहीं दी गई है। स्पष्ट है कि मणिपुरी भाषा के

साहित्येतिहास लेखकों ने बाल-साहित्य के प्रारंभ, विकास, दशा, स्तर आदि के बारे में न कोई सर्वेक्षण किया है न कोई चिंतन। बाल-साहित्य को सृजनात्मक साहित्य की एक गहन-गंभीर शाखा के रूप में न लिए जाने के कारण बाल-साहित्य के रचनाकार नितांत उपेक्षित बने रहे हैं। सातवें दशक से मणिपुर सरकार के शिक्षा निदेशलाय ने बाल-साहित्य के लिए एक पुरस्कार योजना शुरू की थी। ऐसा ही एक प्रयास एस॰सी॰ई॰आर॰टी॰ ने भी किया था। इन योजनाओं का उद्देश्य लेखन के साथ ही पुस्तक प्रकाशन को भी प्रोत्साहन देना था। यह उद्देश्य निश्चित रूप से ही पूर्ण हुआ किंतु साहित्य के इतिहास लेखकों द्वारा बाल-साहित्य को फिर भी गंभीरता से नहीं लिया गया। परिणाम सामने है, मणिपुरी बाल साहित्य का कोइ वैज्ञानिक और प्रामाणिक इतिहास आज तक नहीं लिखा जा सका है। पिछले वर्षों में कुछ लेखक-संगठनों और सरकारी विभागों द्वारा बाल-साहित्य विषयक आयोजन हुए हैं, किंतु वे बाल-साहित्य और उसके लेखकों की ओर ध्यान खींचने वाले प्रभावहीन प्रयास भर थे। इतिहास से उनका कोई लेना-देना नहीं था। मणिपुरी बाल-साहित्य के समक्ष एक बड़ी समस्या उसके विकास के लिए किसी ठोस योजना का अभाव भी है।

एक गंभीर समस्या प्रौढ़ साहित्य के लेखकों का बाल-साहित्य रचना की ओर ध्यान न देना भी है। मणिपुरी भाषा के सैकडों नए-पुराने लेखकों में मात्र दो-चार ही ऐसे हैं, जिन्होंने कभी बाल-साहित्य रचा है। इतना ही नहीं, उनकी दृष्टि से बाल-साहित्य लेखकों का कोई गंभीर लेखकीय व्यक्तित्व नहीं है। यह हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं में भी है, किंतु मणिपुरी भाषा में संभवतः सबसे अधिक है।

एक बात और, इस आलेख के अनुसार मणिपुरी भाषा में बाल-साहित्य का इतिहास 20वीं शताब्दी के छठे दशक से प्रारंभ हुआ है। यह निष्कर्ष इस लेखक को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त पुस्तकों और तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है, किंतु मौखिक स्रोतों को भी विश्वास योग्य माना जाए तो मणिपुरी भाषा की पहली बाल-साहित्य की पुस्तक सन 1947 में प्रकाशित हुई थी। कुछ वृद्ध लोगों को उस पुस्तक की क्षीण-सी स्मृति है, किंतु वे पुस्तक और उसके लेखक, दोनों का ही नाम बताने में असमर्थ हैं। उस काल में ङसि दैनिक (जो सन् 1949 में प्रकाशित हुआ था) में बाल-साहित्य के प्रकाशन का तथ्य तो प्रामाणिक ही है, अतः उसी अवधि में किसी पुस्तक की संभावना से भी पूरी तरह इंकार नहीं किया जा सकता। तब मणिपुरी बाल-साहित्य के इतिहास को काफी पीछे ले जाना होगा.....!

Disambiguating Verb Sense: A Rule-based Approach for Machine Translation

(Special reference with English motion around the axis verbs)

Sudhir Jinde

Natural Language Processing (NLP) is an area of research and application that explores how computers can be used to understand and manipulate natural language text or speech to do useful things. Machine Translation (MT) is among one of the first applications of computers. Since 1950, there have been several efforts in this field leading to the development of several products and tools for language analysis. With the emergence of internet, enormous amount of corpora is being available which has boosted the research in Statistical techniques in the field of Natural Language Processing (NLP).

In natural language processing the most crucial task is how to analyze the exact meaning of a word in the sentence. Word may be polysemous in principle, but in actual text there is very little real ambiguity- to a person. Lexical (word) disambiguation in its broadest definition is nothing less than determining the meaning of every word in context, which appears to be a largely unconscious process in people. As a computational problem it is often described as "AI-complete", that is, a problem whose solution pre-supposes a solution to complete natural-language understanding or common-sense reasoning. (Ide and Veronis 1998)

In the field of computational linguistics, the problem is generally called word sense disambiguation (WSD), and is defined as the problem of computationally determining which "sense" of a word is activated by the use of the word in a particular context (Eneko Agirre and Philip Edmonds, 2006). Here, the chief concern of this paper is how we can analyze the verb meaning specially the meaning of motion verb in English language for English-Hindi machine translation. Research in the lexical semantics of verbs is dominated by studies in the syntax-semantics interface, a major concern in current syntactic theory. The central issue in the interface between verb senses and syntax is the linking or syntactic projection of the semantic arguments of a verb, which in many approaches are classified into broad types of event participant, called thematic roles, thematic relations, or participant roles. Thematic roles (or the information they encode) are components of verb meaning. Theories of thematic roles are developed to account for regularities in the syntactic realization of arguments. For, example, with a verb that denotes an action done by one entity to another (Jones folded the letter, Jones ate the pie, Jones stroked the cat), the entity active voice sentence is expressed as (linked to, projected as) the subject of an active voice sentence, and the entity the action is done to is expressed as the direct object. (Kearns Kate: 566-567) All these studies are helpful in understanding the lexical relations for word sense disambiguation.

Here, we are trying to think through the perspective of the rule based approach of machine translation for the sense disambiguation of English verbs as far as English-Hindi machine translation is concerned. Deciding verb meaning is a fruitful problem for the researcher in linguistics and computational linguistics.

Lexical aspect and grammatical aspect are inherently verbal categories. Their primary locus of expression is the verb and they are mainly designed for operating on the domain of eventualities, the domain from which verbs, verb phrases and sentences take their denotations. Nevertheless, the semantic notions used for their characterization (i.e., partitivity and totality here) can be also encoded by noun phrases or prepositional phrases, which take their denotations from the domain of individuals. Vice versa, verbs marked for grammatical aspect can have effects on the interpretation of noun phrases. One of the main claims pursued here is that such interactions are semantically motivated: it is the nominal argument, direct or oblique, linked to the Incremental Theme role that interacts with the aspectual semantics of verbs, verb phrases and sentences, at least in the most straightforward cases. (Filip Hana, 2000:02)

Word meaning is in principle infinitely variable and context sensitive. It does not divide up easily into distinct sub-meanings or senses. Polysemy means to have multiple meanings. It is an intrinsic property of words (in isolation from text), whereas "ambiguity" is a property of text. Whenever there is uncertainty as to the meaning that a speaker or writer intends, there is ambiguity. So, polysemy indicates only potential ambiguity, and context works to remove ambiguity. (Agirre Eneko and Philip Edmonds, 2006: 08)

The meaning of these verbs includes a specification of the direction of motion, even in the absence of an overt directional complement. For some verbs this specification is in deictic terms; for other it is in nondeictic terms. None of these verbs specify the manner of motion. However, the members of this class do not behave uniformly in all respects. They differ as to how they can express the goal, source, or path of motion, depending on the verb, these may be expressed via a prepositional phrase, as a direct object, or both. (Levin, 1993:264)

These verbs relate to manners of motion that are characteristic of inanimate entities (i.e., where there is not necessarily protagonist control on the part of the moving entity). In the absence of a prepositional phrase specifying direction, none of these verbs indicates the direction of motion. Many of the roll verbs that describe motion around an axis take a rather restricted range of prepositions heading the prepositional phrase that describes the path of motion. (Levin,1993)

Many theories have been built on the assumption that the syntactic realization of arguments is largely predictable from the meaning of verbs. The fact that verbs with similar meanings show characteristic argument realization patterns suggests that these patterns can be attributed to the semantic properties of each class. The main goal of theories concerned with the close relation between syntax and semantics is to identify the relevant components of meaning as well as to explicate their connection to the range of argument realization options (Levin & Rappaport Hovav, 2005:3). In the present research article, these theories or approaches are grouped under the syntax-semantics interface.

Motion verbs are a problematic verb class for research on the relation between syntax and semantics since they do not seem to behave syntactically as a coherent semantic class. Across languages, it is observed that syntactic subjects of some motion verbs share some properties with the direct objects of transitive verbs (i.e., they acts as Patients or Themes), whereas subjects of other motion verbs acts as Agents (Ferez Paula C., 2008:95). In roll verbs as given by Levin, this verb class specifies manners of motion characteristics of inanimate entities, that is, the Figure does not necessarily controls its motion. In the absence of a prepositional phrase, none of these verbs indicates the path of motion. Levin noted that many of the roll verbs that describe motion around an axis take a

rather restricted range of prepositions heading the prepositional phrase that describes the path of motion,

For example,

The ball rolled down the hill.

The ball rolled over the hill

The ball rolled into the gutter.

For the process of disambiguation, this kind of linguistic-semantic information is very useful for developing rules for generating desired meaning through natural language processing. When prepositions comes with the motion verb being a phrasal verb the meaning gets restricted. But such restricted meaning comes in the context of different noun phrase in the predicate there happens a change in the meaning of the verb in that context. So, for disambiguating such verbs two level rule has to be developed so that contextual meaning could be attached with the verb meaning. Motion verbs when takes a preposition, its path gets defined but to understand the meaning of the verb in the given context, the co-relation between its noun phrases in the predicate must be understood so that disambiguation will be possible.

References:

1. Eneko Agirre and Philip Edmonds, 2006 „Word Sense Disambiguation" Springer Publication.

2. Hardev Bahari, 1985 'Hindi Semantics', Lokabharati Publication, Allahabad, New Edition.

3. Ide, Nancy & Jean Veronis, 1998, „Word Sense Disambiguation: the state of the art." Computational linguistics, 24(1)

4. John Lyons, 2005 "Linguistics Semantics: An Introduction", Cambridge University Press.

5. Kearns Kate, "Lexical Semantics, Handbook of English Semantics", Edited by Aarts and April McMahon, Wiley-Blackwell Publication

6. Levin. B. & Rappaport Hovav, M., 2005, 'Argument Realization', Cambridge: Cambridge University Press.

7. Levin. B., 1993, 'English Verb Classes and Alternations: A preliminary investigation. Chicago: The University of Chicago Press.

शोध-खंड 2

कुपोषण, ऐनीमिया और महिलाएँ

अस्मिता राजुरकर

मनुष्य को जीवित रहने के लिए उसकी कुछ बुनियादी ज़रूरतें हैं। ठीक उसी तरह एक स्वस्थ समाज और देश के निर्माण के लिए स्वस्थ नागरिकों का होना ज़रूरी होता है। और यह देश के हर नागरिक का नैसर्गिक अधिकार है। अधिकतर देशों में स्वास्थ्य का अधिकार वहाँ के नागरिकों का आश्वासित मौलिक अधिकार है, बावजूद इसके संपूर्ण विश्व में महिलाएँ इस अधिकार को प्राप्त करने में संघर्षरत दिखाई पड़ती है। भारत में स्त्री स्वास्थ्य आंदोलन 1980 में शुरू हुआ जिसमें औरत होने के कारण स्वास्थ्य से सबंधित जिन समस्याओं का सामना औरतें करती है उस संदर्भ में महिलाओं में जागृती लाने के प्रयास किए गए। जिसमें गर्भनिरोधकों के समस्या के अनुभव, महिलाओं में अपने शरीर के बारे में चेतना जागरण करना और बचपन से ही जेंडरगत भेदभाव के परिणाम के रूप में रहे कुपोषण पर चर्चा होने लगी।

महिलाओं में प्रजनन की एक विशेष क्षमता है जो उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। इसलिए उनके स्वास्थ्य के तरफ़ विशेष ध्यान देना जरूरी है। लेकिन समाज में ठीक इसके विपरीत दृश्य दिखाई देता है। सबसे ज्यादा कुपोषण और ऐनीमिया की शिकार महिलाएँ ही होती है। महिलाओं के प्रति भेदभाव पूर्ण व्यव्हार और हिंसा इसके मुख्य कारण है। वैसे महिलाओं के प्रति हिंसा बचपन से या गर्भ से ही शुरू होती है, जैसे- लड़कों के मुकाबले लड़कियों को कम बार और कम अवधी के लिए स्तनपान किया जाता है। और वैकल्पिक आहार भी पर्याप्त मात्रा में नहीं दिया जाता। देश में महिलाओं के स्वास्थ्य खासकर कुपोषण तथा इससे जुड़ी ऐनीमिया जैसी बीमारियों को लेकर कई सालों से बहस चल रही है। स्वास्थ्य जो कि हमारे प्राथमिक अधिकारों के अंतर्गत आता है गैरजिम्मेदाराना नीतियों के चलते अब इसने एक बड़ी समस्या का रूप ले लिया है। लेकिन सरकार अपनी नीतियाँ कितनी ही क्यों न अच्छी बनाएँ भारत जैसे देश में जहाँ पितृसत्ता के हाथ में यहाँ की सामाजिक सत्ता है स्वास्थ्य का समान अधिकार यहाँ के नागरिकों को खासकर महिलाओं को नहीं मिल पाता। जहाँ तक सामाजिक व्यवस्था की बात है, मानव समाज में जैविक संरचना के या लिंग के आधार पर दो श्रेणीयाँ हैं - महिला और पुरुष। लेकिन सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना के आधार पर उनमें भेद पदानुक्रम के आधार पर उच्च और निम्न स्तर में किया गया है जिसे 'जेंडर' कहा गया। इसका प्रसव पितृसत्तात्मक मानसिकता से हुआ है। इस तरह की सामाजिक संरचना के कारण पुरुष तथा महिलाएँ दोनों ही प्रभावित होते हैं। लेकिन जहाँ तक कुपोषण की बात है इस तरह की संरचना में जहाँ महिलाओं का स्थान पुरुषों से नीचा माना जाता है इसका बुरा असर महिलाओं

के स्वास्थ्य पर होता है। पितृसत्ता क्योंकि धर्म, समाज, संस्कृति एवं राजनैतिक सत्ता इन सबों में विद्यमान हैं, स्वास्थ्य नीति के लिए आवश्यक अर्थ नीति का परिणाम महिलाओं पर होता दिखाई देता है। जहाँ तक महिलाओं का सवाल हैं समाज में अस्तित्व में रही किसी भी संस्था या तत्व तक उनकी पहूँच नहीं होती। यह सारे तत्व महिलाओं के स्वास्थ्य को बहुत प्रभावित करते हैं। इस कारणवश इसका अध्ययन जरूरी हो जाता है। पितृसतात्मक समाज हमेशा से ही महिलाओं का विरोधी या यूँ कहें तो महिलाओं की दमन और शोषण की श्रृंखला को गढ़ने में अग्रेसर रहा हैं। इसका ही परिणाम हैं कि सदियों से ही महिलाओं को विभिन्न सामाजिक नियमों का हवाला देकर दो वक्त पर्याप्त भोजन भी नहीं मिलने दिया गया बल्कि अपनी वंशजाल को पैदा करने के लिए ही उसके शरीर का उपयोग किया गया। और लगातार बच्चे के लिए महिला शरीर का 'मशीनीकरण' किया जाता रहा। उसे भोजन की मात्रा भी उतनी ही मिलती है जितनी बच्चा पैदा करने के लिए आवश्यक होती है। इसलिए अगर कोई महिला बच्चा पैदा नहीं कर सकती तो उसे खाने तक से वंचित किया जाता है। परिणाम स्वरूप वे कुपोषण, ऐनिमिया (खून की कमी) जैसी मानवता को दाग लगाने वाली बीमारियों की शिकार हो जाती हैं। इसके लिए कुपोषण और ऐनिमिया की स्थिति के निर्माण से सबंधित जानकारी लेना आवश्यक होगा। कुपोषण को समझने के लिए पहले पोषण को समझना होगा और स्वास्थ्य के साथ उसके अंतःसंबंध को भी समझना पड़ेगा। पोषण स्वास्थ्य का अभिन्न अंग है। यह व्यक्ति को न केवल सक्रिय बनाता है, बल्कि संक्रमणों और रोगों को नियंत्रित करने की क्षमता भी बढाता है। अतः उत्तम पोषण निवारक और संवर्धनात्मक स्वास्थ्य की अनिवार्य पूर्व शर्तों में से एक है। पोषण के संतुलन के आधार पर दो प्रकार होते हैं - पहला अतिपोषण और दूसरा कुपोषण।

अल्मास अली ने 1992 में कुपोषण (malnutrition) को अपूर्ण पोषण (malus-bad, nutrire-to nourish) बताया है। यह तब होता है जब शरीर में कुछ पोषक तत्वों की माँग पूरी नहीं होती (अल्प पोषाहार) अथवा ये अधिक मात्रा (अतिपोषाहार) में प्राप्त होते हैं। परंतु हमें ज्ञात हैं कि भारत की अधिकांश जनसंख्या जिस समस्या का सामना कर रही हैं, वह अल्प पोषाहार है। इसलिए अल्प पोषाहार को और उसके साथ जुड़ी स्वास्थ्य गड़बड़ियों को व्यक्त करने के लिए 'कुपोषण' शब्द का प्रयोग करना उचित होगा। कुपोषण की संकल्पना सामान्य रूप से अल्प पोषाहार के पर्याय के रूप में प्रयुक्त की जाती है। लेकिन कुपोषण की संकल्पना में अतिरिक्त पोषण को भी सम्मिलित किया जाता है। कोई भी व्यक्ति अगर उसे पर्याप्त मात्रा में पोषाहार न दिया गया हो या बीमारी के कारण वह पोषाहार का लाभ लेने के लिए असक्षम हो कुपोषण का शिकार हो सकता है। या फिर अगर कोई व्यक्ति शरीर की आवश्यकता से अधिक पोषाहार लेता हो इस स्थिति में भी वह कुपोषण का शिकार हो सकता है।

इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार- 'कुपोषण अपर्याप्त तथा असंतुलित भोजन अथवा अव्यवस्थित पाचन प्रक्रिया से होनेवाली पोषण की कमी का परिणाम है। अर्थात, पर्याप्त पोषाहार ना मिलने तथा असंतुलित पोषाहार के कारण कुपोषण की स्थिति जन्म लेती है'। वही एनीमिया के संदर्भ में देखें तो मेडिकल डिक्शनरी के अनुसार- 'ऐनिमिया में व्यक्ति के खून में आवश्यक हीमोग्लोबिन अथवा लाल रक्त कोशिकाओं का आवश्यकता से कम

मात्रा में होना है। इससे खून की ऑक्सीजन वहन करने की क्षमता कम हो जाती है'।

ऐनिमिया एक ऐसी बीमारी है जो पर्याप्त पोषण ना मिलने के कारण होती है। इसके कई कारण है, जैसे - गुर्दे के रोग, हड्डी के रोग, तपेदित, कैंसर, खानपान का सही न होना और मलेरिया आदि। लेकिन इसे महिलाओं की दृष्टि से देखें तो इन कारणों के अलावा और भी कारण है, जैसे - माहवारी में अतिरिक्त खून जाना, गर्भपात, प्रसव से संबंधित समस्याएँ आदि। लेकिन ऐनिमिया को जब हम महिलाओं के स्वास्थ्य के साथ जोड़ते हैं तब यह समस्या सिर्फ़ जैविक कारणों तक ही सीमित ना होकर वह एक सामाजिक संरचना का हिस्सा बन जाता है तथा उसमें अस्तित्व में रहे सत्ता संबंध के साथ जुड़ जाता है। कुपोषण जैसी स्थितियाँ इन संरचनाओं का ही परिपाक होता है। समाजीकरण के जीतने रूप हैं वे सब महिलाओं के शोषण के केंद्र है। हम अगर परिवार को ले तो जो महिलाओं को संरक्षण देता है और जो समाज की बुनियादी इकाई है वही सबसे ज्यादा पितृसत्तात्मक दिखाई देता है। स्त्री भ्रूण को नष्ट करने का काम परिवार ही करता है अगर नष्ट नहीं किया तो बचपन से ही हर आवश्यक सुविधाओं से वंचित रखने का काम परिवार करता है। विवाह के बाद बेटे के चाह में उसकी ज़िंदगी दाँव पर लगाने या समय रहते बेटे के लिए उसे मौत के मुँह में धकेलने का काम भी परिवार ही करता है। यह सभी पारिवारिक समस्याएँ महिलाओं के स्वास्थ्य स्थिति को बहोत प्रभावित करती है। इसके साथ ही धर्म भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विवाहित महिलाओं को ऐसे धर्म आधारित नियमों का पाठ पढाया जाता है कि वह बिना किसी सवाल के पति और परिवार की निरंतर सेवा करती रहती हैं। परिवार की सुख शांति के लिए व्रत रखने, पति की खुशहाल ज़िंदगी के लिए कठोर उपवास रखने तथा एक आदर्श नारी के रूप में खूद को स्थापित करने के लिए महिलाएँ यह सारी धार्मिक प्राक्टिसेस करती हैं। अविवाहित लड़कियों को उसके बचपन से ही अच्छा पति मिलने के कामना के आधार पर उसकी मानसिकता तैयार की जाती हैं कि वह व्रत, उपवास जैसे धार्मिक प्राक्टिसेस को करती रहें। जबकि लड़कों को इससे आम तौर पर दूर ही रखा जाता है या उनके लिए ऐसी कोई धार्मिक प्राक्टिसेस नहीं हैं। ठीक इससे विपरीत लड़को के अच्छे आहार तथा स्वास्थ्य पर बचपन से ही विशेष ध्यान दिया जाता है। महिलाओं के स्वास्थ्य के संदर्भ में उनकी शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक दशाओं का भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। महिला स्वास्थ्य को प्रभावित करने में कुछ सांस्कृतिक मानदंड भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, जैसे- कम उम्र में विवाह, करीब 17 प्रतिशत लड़कियों को 13-19 वर्ष की उम्र में ही विवाह बंधन में बांध दिया जाता है। कम उम्र की लड़कियों की सुंदरता के प्रति पुरुषों का नजरियाँ, महिलाओं की व्हर्जिनिटी की संकल्पना, और लड़कियों को एक इंसान मानने के बजाय उसे किसी सम्मोहित करने वाली वस्तु के रूप में देखने का पुंसवादी नजरियाँ उन्हें कम उम्र में विवाह बंधन में बांधने के लिए मजबूर करता है। जैसे- गावों में आज भी लड़कियों के लिए 'जहर की पूड़ी' ऐसे शब्दो का प्रयोग किया जाता है। इस शब्द का प्रयोग माँ-बाप अपनी बेटी के लिए करते है, कहा जाता है कि लड़की तो जहर की पूड़ी होती है इसलिए उसे ज्यादा दिन तक घर में रखना ठीक नहीं होता। इसलिए किसी लड़के के साथ विवाह बंधन में बांध कर माँ-बाप अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं।

परिवार में महिलाओं का स्थान एवं सामाजिक मान्यताओं के अनुसार महिला की अपेक्षित भूमिका, कम

आयु में विवाह का सांस्कृतिक आग्रह, बेटे के चाह में बार बार गर्भवती होना, गर्भपात, माता एवं गृहिणी की भूमिका का आदर्शीकरण महिला के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डालता है। अधिकांश सर्वेक्षणों से यह सामने आया है कि महिलाएँ पहले परिवार को खाना खिलाती हैं और सबके बाद में बचा-कुचा स्वयं खाती है। इसी कारण गरीब परिवारों की महिलाएँ कुपोषण से अधिक प्रभावित होती हैं। भारत जैसे जातीय विषमता वाले देश में जाति के आधार पर भी कुपोषण और ऐनीमिया का प्रश्न अधिक जटिल हो जाता है। जातिगत भेदभाव के कारण निम्न जाति के लोगों की संसाधनों तक पहुँच नही होती है। जिससे उनकी आर्थिक स्थिति बुरी तरह से प्रभावित होकर वे पीढ़ी दर पीढ़ी गरीबी को सहते है। समाज में निम्न जातियों का यह हाशियाकरण महिलाओं के स्वास्थ्य को बुरी तरह से प्रभावित करता है। इसलिए इस तबके की महिलाएँ परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिए निम्न दर्जे के और कठिन कामों को करने के लिए मजबूर है। राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार 85 प्रतिशत दलित महिलाएँ सबसे कठिन व्यवसायों में है। जिसमें मानव मल उठाने का काम भी शामिल है। ऊँची जाति की महिलाओं की तुलना में दलित महिलाओं के दीर्घकालीन कुपोषण से पीड़ित होने की संभावना डेढ़ गुना अधिक होती है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के मुताबिक भारत के पिछड़े राज्यों में 85 फीसदी दलित महिलाएँ खून की कमी की समस्या से ग्रसित है। सभी महिलाएँ शोषित होती है लेकिन किसी विशिष्ट जाति, धर्म और क्षेत्र की होने के कारण कुछ महिलाएँ जादा शोषण की शिकार होती हैं।

महिलाओं में शिक्षा की कमी भी उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। शिक्षा की कमी के कारण उनके पास स्वास्थ्य सबंधित जानकारी का अभाव रहता है। 'सेव द चिल्ड्रन' अभियान के निदेशक के अनुसार, "महिलाओं में स्वास्थ्य का संबंध उनकी शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति से है। बी.एम.आई. (शरीर भार सूचकांक) के अनुसार भारत में 15-49 वर्ष आयुवर्ग की हर तीन महिलाओं में एक कुपोषित हैं। इस आयु वर्ग की औरतें आमतौर पर प्रजनन प्रक्रियाँ से जुड़ी होने के कारण उनमें कुपोषण होने की संभावनाएँ अधिक होती है। प्रजनन से संबंधित जानकारी का अभाव, गर्भनिरोधकों के प्रयोग में सूचना और निर्णय लेने की स्वतंत्रता न होने तथा गर्भनिरोधकों की जरूरत पूरी न होने, पसंदगी की कमी, गर्भनिरोधकों के प्रयोगों के संदर्भ में खुलेपन की कमी या अपर्याप्त चर्चाएँ, पति पत्नी के बीच के सत्ता संबंध, इन कारणों से महिलाएँ जल्दी-जल्दी गर्भवती होती हैं। इसलिए लगभग 37 प्रतिशत प्रसव पिछले प्रसव के दो साल के भीतर हो जाते है। वही राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एन.एफ़.एच.एस.-2) के अनुसार प्रति 1000 जीवित प्रसव पर 1991 में 424 से बढ़कर 1997-98 में 540 तक यह आँकड़ा गया तथा 2000 तक स्थिर रहा। गिनतियों में इसका अर्थ हर पाँच मिनट में एक औरत की मौत और ऐनिमिया हैं। वही किशोरियों के संदर्भ में देखें तो राष्ट्रीय पोषण मोनीटरिंग ब्यूरो के मुताबिक 13 से 15 साल की किशोरियों को 1620 कैलोरी वाला भोजन मिलता है, जबकि उन्हें 2050 कैलोरी की ज़रूरत होती है। पोषण की यह स्थितियाँ किशोरियों को कमजोर बनाती है। देश की आधी आबादी की यह स्थिति कई सवाल खड़े करती हैं। क्या महिलाओं को शोषित कर देश कभी तरक्की कर पाएगा? क्या महिलाओं की भूमिका सिर्फ़ बच्चों को जन्म देने तक ही सीमित रहेगी? ऐसे कई सवाल देश की शोषित जनता के सामने है। मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 के अनुच्छेद 25 के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति

को एक ऐसे जीवनस्तर का अधिकार है जो स्वयं उसके और उसके परिवार के स्वास्थ्य कल्याण के लिए उपयुक्त हो। लेकिन समाज और सरकार मानवाधिकार की घोषणा को नजरअंदाज कर अपना काम बड़ी सिद्दत के साथ कर रही है। वही किशोरियों और महिलाओं में ऐनिमिया की स्थिति और भी गंभीर है। ऐनिमिया से ग्रस्त किशोरों की तादाद के मामले में दुनिया में भारत छठे स्थान पर है। 'द स्टेट ऑफ वर्ल्डस चिल्ड्रन' की रिपोर्ट के अनुसार भारत में किशोरों की तादाद करीब चौबीस करोड़ तीन लाख है, जिसमें करीब छप्पन फीसदी लड़कियां ऐनिमिया की चपेट में हैं। स्वास्थ्य जैसी बुनियादी ज़रूरत ही अगर बच्चियों की पूरी नहीं होगी तब उनका संपूर्ण विकास कैसे संभव हो पाएगा। सरकारी नीतीयाँ हमेशा ही महिलाओं के संदर्भ में उदासीन ही रही है। महिलाओं के स्वास्थ्य से संबंधित हर नीति को बच्चें के साथ ही जोड़ा जाता है। इसलिए माता बाल संगोपन, माता एवं बाल विकास के बैनर के नीचे सरकार नीतियाँ बनाती है। उल्लेखनीय है कि इन माताओं की संकल्पना में सिर्फ़ पारिवारिक संरचना में बच्चों को जन्म देने वाली माताओं को ही शामिल किया जाता है। कुँवारी माता जो हजारों की तादाद में अपने जीवन मृत्यु से संघर्ष कर बच्चें को जन्म देती है उसके लिए सरकार की नीतियों की सूची में क्या स्थान है? यह लड़कियाँ समाज और सरकार की नज़र में सिर्फ़ 'अवैध' माताएँ हैं। फिर किशोरियों, विधवाओं और तलाकशुदा महिलाओं के स्वास्थ्य का प्रश्न तो और भी गंभीर है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और उड़ीसा की 79 फीसदी महिलाओं में खून की कमी है। झारखंड में हर रोज़ आठ गर्भवती महिलाएँ खून की कमी की वजह से अकाल मौत की शिकार हो रही है। सरकारी नीतियों में गर्भवती महिलाओं के लिए भोजन सुविधाएँ हैं लेकिन भ्रष्ट तंत्र के कारण उन तक नहीं पहूंच पाती है। दुनिया के सर्वाधिक मातृत्व मृत्यु के मामले में भारत दूसरे स्थान पर है। वही देश की 55 फीसदी महिलाएँ खून की कमी से जूझ रही हैं।

नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रिशन के निदेशक डॉक्टर शशिकरण का कहना है कि ऐनीमिया ग्रस्त लोगों का सामान्य विकास रुक जाता है और याददाश्त में भी कमी होती है। वे किसी बात को ठीक से याद नहीं रख पाते। इस संदर्भ में बच्चों और महिलाओं का बौद्धिक विकास ख़तरे में हैं और खासकर ग्रामीण क्षेत्रों के महिलाओं तथा बच्चों काक्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति दयनीय है। देश के कई हिस्सों में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की भी सुविधा नहीं है। कुछ जगहों पर है भी तो डॉक्टर नहीं हैं। सरकार की रुचि शहरी क्षेत्रों में मल्टीस्पेशालिटी अस्पतालों में अधिक दिखाई देती है। वास्तविक स्थिति यह है कि देश की सत्तर से अस्सी प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्र में तमाम असुविधाओं को सहते हुए अपना जीवन यापन करती है। ऐसे में यह मल्टीस्पेशालिटी अस्पताल किसके लिए? जब देश की हर बुनियादी ज़रूरतों और कच्चे माल की पूर्ति इसी क्षेत्र से होती है उसी जनता की स्वास्थ्य जैसी जीवन और मृत्यु को तय करने वाली ज़रुरत को नजरअंदाज करना सरकार की ग्रामीण क्षेत्र की जनता और खासकर महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति असंवेदनशीलता को दर्शाती है। शहरी क्षेत्रों की महिलाओं को प्रसव-पूर्व देखभाल मिलने की संभावना 42 प्रतिशत होती है। वही ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को केवल 18 प्रतिशत तक ही हैं। ऐसे में महिलाओं की अन्य स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतें कैसे पूरी हो पाएगी। यूनिसेफ़ का अनुमान है कि भारत में प्रतिवर्ष गर्भावस्था के दौरान और बच्चें को जन्म देते समय करीब

एक लाख पच्चीस हजार महिलाओं की मृत्यु हो जाती है। इससे साफ जाहिर होता है कि जब हमें भारत वर्ष के संपूर्ण स्वास्थ्य को मापना होगा तब हम इसे वहाँ की महिलाओं के स्वास्थ से माप सकते है। महिलाओं के स्वास्थ्य के मुद्दे को राजनीति में कभी महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया जाता। स्त्री-कुपोषण की समस्या के लिए सरकारी नीतियाँ भी उतनी ही जिम्मेदार हैं। यह समस्या देश में व्याप्त महिलाओं के विरोध में हो रही हिंसा का ही एक रूप है। इसलिए स्त्री कुपोषण और ऐनिमिया की समस्या को हल करने के लिए पितृसत्तात्मक पारिवारिक और सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन करना समय की ज़रूरत है। क्योंकि स्त्री कुपोषण और ऐनिमिया की समस्या सिर्फ़ एक शरीर में किसी आवश्यक पोषण तत्व की कमी का ही परिणाम न होकर यह महिलाओं के खिलाफ साजिश की एक श्रृंखला हैं जो सदियों से चली आ रही हैं। साथ ही पितृसत्तात्मक सरकारी नीतियों को भी अपनी स्वास्थ्य नीतियों में बदलाव करना होगा। बल्कि अपनी नीतियों के साथ ही नियति को भी बदलना होगा। तब एक स्वस्थ समाज का निर्माण संभव होगा।

संदर्भ सूची :

1. इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय सतत शिक्षा विद्यापीठ, 'ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य'
2. देवान मंजु, मालन्यूट्रीशन इन वुमेन, www.krepublishers.com
3. राष्ट्रीय संयोजन समिति जन स्वास्थ्य अभियान, 'महिलाओं का स्वास्थ्य' पहला संस्करण:अक्तूबर 2006
4. सारस्वत ऋतु 'स्वास्थ्य के मोर्चे पर भारतीय स्त्री' योजना जून 2012.
5. खान फिरदौस, 'ऐनिमिया की शिकार महिलाएँ', वंचित जनता जून 2013
6. संपादक, आर्य साधना, मेनन निवेदिता, लोकनीता जिनी, 'नारीवादी राजनीति: सघर्ष एवं मुद्दे' हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 2001.

किस्सागोई का अनोखा वितान : गाँव भीतर गाँव

मनीषा जैन

गांव भीतर गांव सत्यनारायण पटेल के पहले उपन्यास के सबसे पहले ही पन्ने पर लिखा है-"यथार्थ की ज़मीन पर दमित-दलित, छल-छद्म, प्रेम-ईष्र्या, आस्था-अनास्था और टूटते-बिखरते विश्वास के अद्भुत क़िस्से, मानो सजीव पात्र बेचैनी के काल कुण्ड में तैरते-डूबते और सिसकते ख़ुद सुना रहे हों अपनी व्यथा-कथा" और जैसे-जैसे आप उपन्यास पढ़ते जायेंगे आप भी बैचेनी में धंसते जायेगे। गांव की अनेक परतों के भीतर धंसते जायेंगे। फिर रास्ता भी नहीं सूझेगा बिलकुल अभिमन्यु के चक्रव्यूह में फंसने की तरह या झब्बू को गांव के शोषण में धंसने की तरह।

एक लेखक अपने इर्द-गिर्द समाज, देश के परिवेश में जो देखता सुनता है उसी से संवेदित हो कर अपनी अपनी रचनाओं का ताना-बाना बुनता है तभी राल्फ फॉक्स ने उपन्यास को मानव जीवन का महाकाव्य कहा। सो ही यह उपन्यास झब्बू व अन्य पात्रों के जीवन का महाकाव्य है। मृत्यु से शुरू हुआ यह उपन्यास मृत्यु पर ही समाप्त होता है यानि मृत्यु ही शाश्वत सत्य प्रतीत होती है और मृत्यु ही बहुत सारे प्रश्न भी खड़े करती है। और उपन्यास की नायिका झब्बू इसी शोषण के चक्रव्यूह से निकलने के बजाए इसमें धंसती जाती है तथा गांव की सरपंची व्यवस्था की गुलेल का शिकार भी होती है। कहते हैं कि स्त्री विमर्श सिर्फ स्त्री ही लिख सकती है लेकिन उपन्यास एक पुरूष लेखक द्वारा नारी के जीवन के एक एक महीन रेशे का व्यापक चित्रण किया है। पति की मृत्यु के दुख से दुखी झब्बू शोषण का शिकार होकर जान
से हाथ धो बैठती है। और झब्बू की मृत्यु बहुत सारे प्रश्न उठाती है क्या यही नारी की नियति है ? क्या जो स्त्री चाहे वह प्राप्त नहीं कर सकती? क्योंकि हमारा समाज पुरूष प्रधान है।

उपन्यास शुरू होते ही झब्बू के दुख शुरू हो जाते हैं-"कैसे पार करें! जिन्दगी एक काला समुन्द्र। टूटी नाव छितर बितर। चप्पू भी छिन गया ज़ोर-जबर। तू बड़ा निर्दयी ईश्वर। कैसे जिए कोई प्राण बगैर।" झब्बू के पति की मृत्यु हुई है वह जिए तो किसके सहारे। दुख इतना गहन है मानो झब्बू के दुख में पंछी भी शामिल हैं-'नीचे नीचे चालीस पचास लोग जमा थे। नीम की डागलों पर मोर, होला, कबूतर, चिकी आदि पक्षी बैठे थे। सभी शांत! चुप! गिलहरी भी एक कोचर में से टुकर टुकर देखती रही" झब्बू के दुख का पारावार नहीं है। लेखक ने मृत्यु का ऐसा चित्रण किया है कि किसी भी संवेदनशील व्यक्ति की आंखे छलछला आए वे लिखते हैं-" कैलास को ले जाया जा रहा। उसके पीछे नीम, मोर, कबूतर, चिकी, गिलहरी, झोंपड़ा, झब्बू, रोशनी, गांव और सब कुछ छूटता जा रहा" मानो लेखक कहना चाहता है कि सिर्फ मृत्यु ही सत्य है। एक मौत से साथ कितनों की मौत होती है कोई नहीं जानता। और किसी झब्बू जैसी स्त्री के पति की मौत तो और भी भयानक होती है क्यों कि एक तो स्त्री जात दूसरी गरीब

व तीसरी दलित जाति। झब्बू तीन तरफा दुख से घिरी हुई है। लेखक लिखते हैं "कि गांव भले ही इक्कीसवीं सदी के मुहाने पर खड़ा था लेकिन जात पात, छुआछूत अभी भी मुंशी प्रेमचद के जमाने की सी थी।" उपन्यास में लेखक ने झब्बू के माध्यम से दलित स्त्रियों के संपूर्ण जीवन का ताना बाना बुना है। तथा झब्बू के संघर्ष के माध्यम से 21 वीं सदी पर खड़े गांव के सभी व्यक्तियों के आर्थिक, राजनैतिक तथा ग्लोबलाइजेशन का, गांव पर असर, जाति प्रथा, छुआछूत तथा गांवों में फैलता भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता को निर्ममता से उघाड़ा है।

गांव भीतर गांव शुरू से आखिर तक संबधों, संवेदना व संवेदनहीनता व शराब के प्रति आक्रोश, मैला ढ़ोने की पद्वति का विरोध, सरपंची व्यवस्था का भ्रष्टाचार, भूमाफिया का द्वन्द आदि अनेक विमर्शो का जीता जागता आख्यान है। इसमें वो सब है जिसका आज के संवेदनहीन समाज में बोलबाला है चाहे गांव ही क्यों न हो। इसमें शराब है, बलात्कार है, स्त्री उपेक्षा है, स्त्री को दबाने के सरपंची षड़यत्र है जो कि आज गांव गांव का सच है। शहरों में रहते हुए पता नहीं चलता गांवों के भीतर क्या क्या भ्रष्टाचार, राजनीति, षड़यंत्र पनप रहें हैं। यों तो प्रेमचंद ने गांवों का सर्वस्व ही अपने उपन्यासों में उतारा लेकिन इस उपन्यास का कथानक समकालीन यथार्थबोध से भरपूर है। यह उपन्यास मालवा की धरती के किसी एक गांव का आख्यान भर नहीं है बल्कि भारत के लगभग भी गांवो काआख्यान है। उपन्यास के सारे चित्र स्वाभाविक, प्राकृतिक व यथार्थ के हैं जिनसे पाठक दो चार होता है। पाठक को लगता है कि हमारे आसपास ही तो घट रहें हैं ये दृश्य।

उपन्यास में गांव की स्त्रियों के घर व बाहर का संघर्ष चरम पर है चाहे उनका शराब की दुकान का हटाना हो या मैला ढ़ोने की प्रथा का अंत हो, राजनीति में दख़ल हो, एन जी ओ का गांव में पर्दापण हो, सिलाई का काम कर घर चलाना, बलात्कार, पुलिस की बरबरता का कहर आदि। इन सभी स्थितियों का बारीक चित्रण बहुत पठनीय है। गांव से शराब की दुकान हटवाने से तिलमिलाया हुआ गांव के जमींदार का चित्रण लेखक ने कुछ इस प्रकार किया-"झब्बू ने सिर्फ कलाली नहीं हटवायी, बल्कि जैसे नाक पर मुक्का भी जड़ा हो, और जैसे जाम सिंह के भीतर मुक्के का दर्द दौड़ रहा हो। सीने में बारूद सुलगने लगी। लेकिन फिर भी जाम सिंह चुप खड़ा रहा, और हम्माल मेटाडोर में कलाली का सामान भरने लगे। बबूल पर बैठे पक्षी चहचाहने लगे। सूरज सुनहरी मुस्कान बिखेरने लगा।" उपन्यास में जाति प्रथा का दंश को गहरे से व्यक्त किया गया है। जिस तरह गांधी जी ने विदेशी कपड़ो की होली जलवाई थी इसी तरह लेखक ने परम्परागत कुप्रथा मैला ढ़ोने के साजो समान की होली जलवा कर दलित स्त्रियों को सशक्त बनाने की राह दिखाई। और ये भी कि गांवों में आज भी सवर्णो का शोषण किसी न किसी रूप में आज भी जारी है।

उपन्यास में झब्बू पति की मृत्यु के बाद ज्यादा मजबूत बन संघर्ष का सामना करती है वह सब दलित स्त्रियों की अगुवा बनती है और सिलाई का काम कर अपना व अपनी बेटी का पेट पालती है और धीरे-धीरे गांव की सभी दलित औरतें उसके पास सलाह मशविरे के लिए आने लगती हैं। और अब झब्बू सरपंच का चुनाव लड़ कर सरपंच बन जाती है और अपनी बेटी को पढ़ने भाई के पास शहर भेज देती है। लेखक ने गांव के भीतर चलने वाली राजनैतिक षड़यंत्र गहराई व सच्चाई से व्यक्त किये हैं ऐसे षड़यंत्र जिसे गांव से बाहर बैठा व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। झब्बू के सरपंच बनने से गांव के ठाकुर तिलमिला जाते है और फिर झब्बू को बलात्कार की यातना से गुजरना पड़ता है। लेकिन झब्बू बलात्कार के बाद मानसिक यातना से गुजरने के बाद जब होश में आती है तो और जोर से चीखती है और रिर्पोट लिखने जाती है उसके शब्दों में-"उन्होंने तो मेरे शरीर पर जुल्म किया है....। लेकिन मैं उनकी छाती पे मूंग दलूंगी...। अब मेरे पास बचा ही क्या है जो लूटेंगे....छीनेंगे....मुझे जिसका भय हो....डर हो.....कुछ भी तो नहीं ऐसा.....।" स्त्री का इस तरह सशक्त होना समाज की अन्य स्त्रियों को हिम्मत व आशा देता हैं तथा झब्बू का स्वयं आर्थिक स्वाबलम्बी बनना व अत्याचार का विरोध करना स्त्री सशक्तीकरण के पक्ष को उजागर करता है। इस तरह स्त्रियों के शोषण के कारनामों के अनेक विमर्शों के साथ साथ गांव के जमींदारों द्वारा भूमि अधिग्रहण, भू माफिया का ताडंव, मीड डे मील की धांधलियां, फर्जीवाड़े, गांव के पुरूषों की अमानवीयता भरे विवरण उपन्यास को समकालीनता के पायदान पर ला कर खड़ा करते हैं।

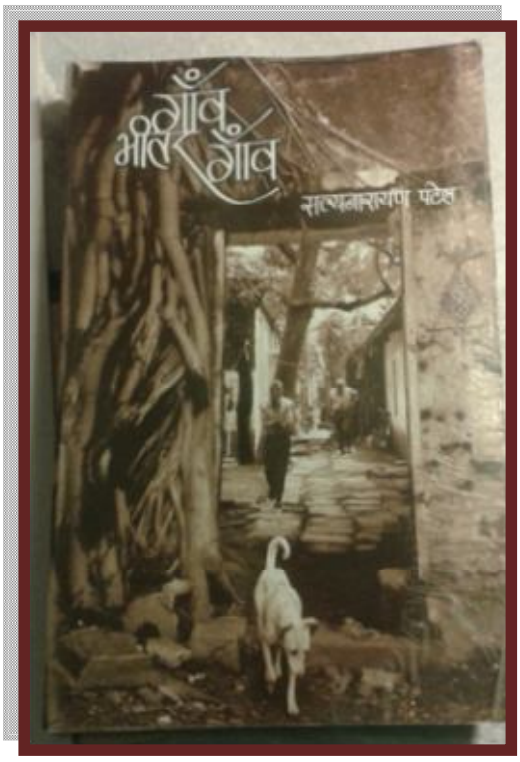

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने निबंध 'उपन्यास' में कहा- "कि मानव जीवन के अनेक रूपों का परिचय कराना उपन्यास का काम है। यह उन सूक्ष्म से सूक्ष्म घटनाओं को प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न करता है जिनसे मनुष्य का जीवन बनता है और जो इतिहास आदि की पहुंच से बाहर हैं' इसी तरह इस उपन्यास में स्त्रियों व गांव की छोटी छोटी यथार्थ घटनाएं जिनका संबध गांव के लोगों व जीवन से है वे विस्तार से है। स्त्रियों के जीवन की विडम्बनाओं को उपन्यासकार ने पूरे उपन्यास के केन्द्र में रखा है। उपन्यास में बार-बार दलित औरतों के शोषण का विरोध औरते स्वयं करती हैं। झब्बू के संघर्ष के साथ साथ लेखक ने समाज के सभी क्षेत्रों में व्याप्त शोषण, भ्रष्टाचार, अमानवीयता, पितृसत्तात्मक राजनीति, पुरूषसत्ता का सर्वोपरि होना व जाति भेद को खोल कर रख दिया है। निम्न वर्ग के लोगों के रोजाना के संघर्षों का चित्रण व दलितों के दलित जीवन का सर्वस्व उपन्यास में चित्रित है। हद तो जब हो जाती है जब गांव में टेंट की दुकान खुलने पर टेंटवाला दलित स्त्रियों को टेंट देने से मना कर देता है क्योंकि फिर वे वाले टेंट पटेल, ठाकुर व ब्राहाम्ण इस्तेमाल करने से मना कर देंगे। इस तरह का छुआछूत, जातिदंश

पूरे उपन्यास में व्याप्त है जो कि आज भी यथार्थ है। कैसी विडंबना है कि भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष देश में जाति वर्गीकरण कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। इसी कारण गांव में दो बारातों में जाति के नाम पर जम कर मारकाट होती है। इस तरह के माहौल में सांप्रदायिकता की आंच में हाथ सेंकने वाले दंगा भड़काते हैं और गांव व शहरों में आतंक मचाते हैं। लेखक ने कई स्थानों पर पुलिस के नाक़ाब उतारे हैं किस तरह पैसा ले देकर मामलों को रफा दफा किया जाता है। पुलिस के बर्बर अत्याचार की चरम सीमा के साथ गांव में व्याप्त राजनीति, दलित समाज की त्रासद जिंदगी, ज़मींदारों के अत्याचार पूरी बर्बरता के साथ व यथार्थ का चेहरा बहुत ही साफ साफ दिखाई पड़ता है। इस तरह की तंत्रव्यवस्था व भ्रष्टाचार देश को कहां लेकर जा रहे हैं ? इसका अंदाज़ा सहज ही लगाया जा सकता है।

असल में उपन्यास में देश के असली दुश्मन तो पूंजीवादी व्यवस्था, भ्रष्टाचार व धौंस की राजनीति, सरपंची कुव्यवस्था, वर्गीय भेदभाव को बताया है और उपन्यासकार ने इस सब का चेहरा बड़ा साफ साफ चित्रित किया है। देश का हर नागरिक भूख, गरीबी, मंहगाई, भ्रष्टाचार से लड़ रहा है। सीमा पर दुश्मन नहीं दुश्मन तो देश के भीतर ही गहरी पैठ बनाए हुए है और सत्ताधारी गिद्ध सब कुछ लील लेने को बैठे हैं। उपन्यास की सारी घटनाएं सत्य प्रतीत होती हैं। ऐसा लगता है कि सारी घटनाएं रोज कहीं न कहीं घट रहीं हैं इतना अंधेरा व्याप्त है कि आदमी की जान की कोई कीमत नहीं मानों- ''भ्रष्टाचार लाखों छोटे-बड़े मुंह वाला एक जीव है, झब्बू ने कहा, और आगे सोचते हुए बोली- और इसका पेट भी बहुत गहरा है। सरपंच से लेकर ठेठ ग्रामीण विकास मंत्रालय तक'' मानो एक भ्रष्टाचारी सरकार जाती है दूसरी आ जाती है। उपन्यास में तानाशाही पुरूष मानस्किता सभी पात्रों पर हावी है। वह सरपंच बनी स्त्री को भी अपनी अंगुली पर नचाता है और पुरूष स्त्री की रीढ़ पर बलात्कार रूपी ऐसा वार करता है कि वह उठ भी न सके। लेकिन झब्बू फिर फिर उठती है व संघर्ष करती है। और फिर झब्बू सारे राजनैतिक दावपेंच सीख जाती है। लेकिन ये राजनीति क्या क्या न करवा दें। राजनीति के कुचक्र में फंसी झब्बू को निबटवा दिया जाता है। अतः राजनीति में फंसी स्त्री का उपयोग व उपभोग सत्ता किस तरह करना चाहती है इस कुचक्र को लेखक साफ तरीके से दिखाने में सफल हुए हैं। और समाज में आर्थिक आधार ही सब क्रियाकलापों की जड़ में है लेखक सफेद को सफेद व काले को काला दिखाने में सफल हुए है। विश्व का हमारे गांवों पर क्या व कितना असर हो रहा है यह विभिन्न घटनाचक्रो से दिखाई पड़ता है। साथ ही साथ भूमाफिया का तांडव का जिक्र लेखक की भविष्य दृष्टि का परिचय देता है कि किस तरह देश में भूमाफिया का बोलबाला है और सरकार चुप है। आज देश में साम्राज्यवाद हाबी है। जिस साम्राज्य को हमने उखाड़ फेंका था वह आज फिर पांव पसार रहा है।

उपन्यास में झब्बू की बेटी रोशनी अखबार के लिए जो आलेख लिखती है वह मानों पूरे उपन्यास का निचोड़ है। और वह लेख ब्लाग पर लगाते ही रोशनी के कमरे पर पुलिस आती है और उसे गिरफ्तार करके ले जाती है माने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भी कब्जा। और गांव की सत्ता व्यवस्था किस तरह पुलिस में मिलकर घोर षड़यंत्र करती है परिणाम स्वरूप पुलिस के अत्याचारों से सहमी रोशनी जेल में है और झब्बू की गाड़ी को टक्कर मार कर झब्बू का दुखद अंत होता है। इस तरह उपन्यास

में एक जीता जागता यथार्थ सांस लेता है। जिससे हम हर समय दो चार होते रहते हैं।

उपन्यासकार की किस्सागो शैली एक नया वितान रचती है जिससे रोचकता बढ़ती है तथा उपन्यास में छोटे छोटे वाक्य व पक्षी व गिलहरी का मानवीय दुख में भावाभिव्यक्ति शामिल करने से संप्रेषणीयता को बढ़ावा मिला है जो कि एक अनुपम चित्रण है। उपन्यास पढ़ने के बाद पाठक के भीतर एक खलबली सी मच जाती है कि हम गांव व शहर के कैसे असंवेदनशील समाज में जी रहे हैं। इस तरह के मालवी संस्कृति के आंचलिक उपन्यास की तुलना नागार्जुन के बलचनामा व रेणु के मैला आंचल से बखूबी की जा सकती है।

जिस तरह निराला जी ने कहा कि "गद्य जीवन संग्राम की भाषा है" उसी तरह यह उपन्यास एक आम मनुष्य के जीवन संग्राम का आख्यान है। इस तरह के उपन्यास बुनने के लिए एक विहंगम जीवन दृष्टि की जरूरत होती है निःसंदेह उपन्यासकार इस कसौटी पर खरे उतरे हैं। कुछ मालवी शब्दों का प्रयोग उत्तर भारत के पाठकों को थोड़ा सा मुश्किल में डाल सकता है। लेकिन इस उपन्यास के आईने में भारत की वर्तमान व भविष्य की तस्वीर साफ साफ देख सकते हैं।

पुस्तक- गांव भीतर गांव, प्रकाशक- आधार प्रकाशन, पंचकूला-134 113, प्रकाशन वर्ष-2015

उपन्यास लेखक- सत्यनारायण पटेल

महात्मा गांधी और गिरमिटिया

मुन्नालाल गुप्ता, राजीव रंजन राय

"अगर दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह की लड़ाई न लड़ी गई होती, तो आज न केवल दक्षिण अफ्रीका से बल्कि सारे ब्रिटिश उपनिवेशों से हिन्दुस्तानियों के पैर उखड़ जाते और उनकी खोज-खबर लेनेवाला भी कोई न होता।".. (गांधी, 1924, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, पृ: 10)

साम्राज्यवादी यूरोप के कई देशों में 1833 और उसके बाद दास प्रथा की समाप्ति के बाद और अफ्रीकी मूल लोगों के द्वारा मन से काम नहीं करने के कारण अंग्रेजों के उपनिवेश दक्षिण अफ्रीका के नेटाल, ट्रांसवाल, प्रिटोरिया, डरबन, जोहान्स्वर्ग जैसे राज्यों में गन्ने, चाय कॉफी, खदान के उत्पादन तथा संरनात्मनक निर्माण कार्य (रेल, सड़क, भवन निर्माण) के लिए हजारों मज़दूरों की जरूरत थी। नेटाल सरकार ने इसके लिए भारत सरकार (ब्रिटिश भारत) से मज़दुरों की मांग की। भारत सरकार ने नेटाल की मांग स्वीकार की और फलस्व रूप हिंदुस्तानी मज़दूरों का पहला जहाज 16 नवंबर, 1860 को नेटाल पहुँचा। ये हिन्दुस्तानी मज़दूर नेटाल में 3 से 5 वर्ष के एग्रीमेंट पर ले जाये गए जो अपने को 'गिरमिटिया' कहते थे। गिरमिटिया मज़दूरों को गोरे लोग अपमानित करने के लिए 'कुली' कहने थे जैसे कुली व्यापारी, कुली वकिल। कुली का अर्थ था बोझ ढोनेवाले मजदूर। इस प्रकार भारतीयों का दक्षिण अफ्रीका में बसने का सिलसिला ही शुरू हो गया। मज़दूर गए, तो पीछे-पीछे व्यापारी भी गए। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों का तीसरा वर्ग उनका था जो अनुबंध की अवधि समाप्त होने के बाद वहीं बस गए थे। तत्कालीन एक अंग्रेज पदाधिकारी सर विलियम्स हंटर ने अफ्रीका पहुंचे हिन्दुस्तानी मजदूरों की स्थिति के अध्ययन करने के बाद पाया कि ये मज़दूर लगभग गुलामी की स्थिति में थे। गांधी के अनुसार, जो जहाज इन मज़दूरों को हिन्दुस्तान से दक्षिण अफ्रीका के नेटाल ले गया वही जहाज मज़दूरों के साथ सत्याधग्रह के महान वृक्ष का बीज भी नेटाल ले गया। (गांधी, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास : 25) दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों में ज्यादातर तो अशिक्षित थे और जो थोड़ा-बहुत पढ़े-लिखे थे, उनका अँग्रेजी का ज्ञान नाममात्र का था। पैसेवाले धनी व्यापारी बस उतनी ही अँग्रेजी समझ-बोल लेते थे, जो व्यापार करने के लिए ज़रूरी था। भारतीयों के प्रति औपनिवेशिक शासकों की गोरी जाति, जातीय एवं नस्लीय भेदभाव बरतती थी। भारतीयों ने इस अत्याचार को अपनी नियति मान लिया था। कभी यदि उनके दिल में विरोध की भावना उठती भी, तो वे उसे दबा देते, क्योंकि उन्हें मालूम ही न था कि कैसे इसका विरोध किया जाए। लेकिन ब्रिटेन से बैरिस्टर बनकर लौटे नौजवान मोहनदास करमचंद्र गांधी इन अत्याचारों को सहने के आदी नहीं थे।

मोहन दास करमचंद गांधी 1891 में बैरिस्टर होकर भारत लौटे और अप्रैल 1893 में 24 वर्ष की आयु में हिन्दुस्तान से रवाना होकर एक वर्ष की करार और 105 पौंड की फीस पर मई में डरबन पहुंचे। डरबन में पोरबंदर, गुजरात में मेमन व्यापारी दादा अब्दुल्ला की व्यापारिक फर्म और प्रिटोरिया में पोरबंदर के ही मेमन व्यापारी तैयब हाजी खान अहमद की थी। दोनों के बीच मुकदमों के लिए उनके नियुक्त अंग्रेज वकीलों, बैरिस्टरों को गुजराती करार को अंग्रेजी में समझाने के लिए मो.के. गांधी को दादा

अब्दुल्ला की तरफ से एक वर्ष के करार और 105 पौंड की फीस पर अप्रैल 1893 में डरबन भेजा गया। दक्षिण अफ्रीका की धरती पर कदम रखनेवाले यह पहले भारतीय बैरिस्टर थे और पहले भारतीय जिन्हें उच्चा शिक्षा प्राप्ती थी। (चन्द्र 1990:123) केस के सिलसिले रेल मार्ग से डरबन से प्रिटोरिया जाते समय कड़ाके की ठंढ में आधी रात को मैरिसबर्ग स्टेशन पर गोरे रेलवे पुलिस के द्वारा नस्ल और रंगभेद की मानसिकता के कारण प्रथम श्रेणी की टिकट के बावजूद गांधी को अपमानित करके और धक्के मारकर उनके समान को बाहर फेंक दिया गया। रातभर प्रतिक्षायल रूम में कांपते हुए एम.के. गांधी सोचते रहे कि "इस अपमान के कारण यहां से भाग जाना कायरता होगी। हाथ में लिया हुआ अपना काम मुझे पूरा करना ही चाहिए। व्यक्तिगत अपमान सहकर और मार खानी पड़े तो मार खाकर भी मुझे प्रिटोरिया पहुंचना ही चाहिए।' (गांधी, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास : 47) इस घटना से उनका जीवन ही परिवर्तित हो गया। गांधी ने उस दिन से दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार के दमन एवं भेदभाव का विरोध प्रारम्भ कर दिया। प्रवासी भारतीयों को संगठित कर उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन छेड़ दिया।

कार्य की समाप्ति के बाद 1894 में दादा अब्दुल्ला ने एम.के. गांधी की विदाई के अवसर पर एक समारोह किया। वहीं उनके हाथ 'नेटाल मर्क्यु टी' अखबार मिली। जिसमें नेटाल सरकार हिन्दुस्तानियों को मताधिकार से वंचित करने वाली एक कानून पास करने वाली थी। इस कानून का विरोध करने के लिए सारे हिन्दुस्तानियों ने गांधी को नेटाल में रूकने के लिए आग्रह किया गया। नेटाल में सुप्रीम कोर्ट में वकालत के लिए गांधी ने अरजी दिया जो विरोध के बाद स्वीकार हुआ। दक्षिण अफ्रीका के नाटाल के सर्वोच्च न्यायालय में अधिवक्ता के रूप में पंजीकृत किये जाने वाले वे पहले भारतीय थे। तब से गांधी 1914 तक दक्षिण अफ्रीका में रहे। यह प्रवास उनके अध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक विकास के लिए महत्वपूर्ण था। वे प्रवासी भारतीय समुदाय के अग्रगण्य नेता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। जून 1894 में नेटाल में भारतीयों को संगठित करने, अपने अधिकार के प्रति सचेत रखने के लिए नेटाल के सभी भारतीय वर्गों के सहमति और सहयोग से 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना की जिसके मंत्री एम.के. गांधी को बनाया गया। 1896 के मध्यग गांधी भारत लौटे। भारत आकर दक्षिण अफ्रीकी में भारतीयों के आंदोलन के लिए भारतीय नेताओं से समर्थन माँगा। इसी उद्देश्य से वे बम्बई में फिरोज शाह मेहता, बदरूद्दीन तैयबजी, महादेव गोविन्द रणाडे, पूना में लोकमान्य तिलक, प्रो. भांडारकर, गोपाल कृष्णी गोखले जसे बड़े नेताओं से मिलकर दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति से परिचय कराया। उसी वर्ष वे अपने परिवार के साथ पुन: दक्षिण अफ्रीका पहुँचे।

गांधी दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के मानवाधिकारों के लिए ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध निरन्तर संघर्षरत रहे। उन्हों ने अनिवार्य पंजीकरण तथा हस्तमुद्रण, अन्ति:प्रांतीय प्रवासन पर प्रतिबन्ध, बन्धिक मज़दूरों पर लगाये गये कर तथा ईसाई विवाहों के अतिरिक्तत अन्य सभी विवाहों को अमान्य ठहराने वाले कानूनों आदि का डटकर विरोध किया। 1899 में बोअर-युद्ध जो अंग्रेज और अफ्रीका में रहने वाले डच मूल के लोग जिन्हें बोअर कहा जाता था, के समय गांधी ने 'इंडियन ऐम्बुऔलेंस कोर' का गठन किया जिसने युद्ध में उल्लेखनीय सेवा-कार्य किया और उसके बदले उन्हें 'बोअर-युद्ध पदक' प्रदान किया गया। बोअर युद्ध की समाप्ति के बाद 1901 में अंत में गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे।

1901 में गांधी समुद्र मार्ग से भारत लौटते हुए 29 अक्टूबर को मॉरीशस गए। जहाज एस.एस. नौशेरा में

खराबी आने और रसद के लिए मॉरीशस के पोर्ट लूई के बंदरगाह पर रूके।(रामशरण, 2004: 106-07) वहॉ गांधी ने भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों की दशा को समझी और वहां के भारतीय गिरमिटिया मजदूरों और व्यापारियों को संबोधित करते हुए उन लोगों को अपने जीवन को उच्च बनाने के लिए सलाहें दी जैसे : अपने बच्चों को शिक्षित करो और स्वथ्य रखो, उन्हें मॉरीशस की राजनीति में आने के लिए प्रेरित करो और प्रेरणा के लिए भारत पर निगाह रखो। मॉरिशस के भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की बदहाली से चिंतित होकर मणिलाल डॉक्टरर को 1907 में मॉरिशस भेजा। मणिलाल, गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा स्थापित भारतीय सेवक समाज के एक युवा सदस्य थे। वे अदालतों में गिरमिटिया असहाय मजदूरों की नि:शुल्क पैरवी करते कोठी-मालिकों की शोषण प्रवृति का अपने लेखों द्वारा पर्दा-फाश करते, धार्मिक विषयों पर चर्चा कर विभिन्न धर्मावलम्बयों का मतभेद दूर करते। अंग्रेजी, गुजराती और हिंदी में 'हिंदुस्तानी' दैनिक पत्र को निकालकर भारतीय गिरमिटिया मजदूरों से संबंधित समाचारों को सरकार तक पहुंचाते। अपने लेखों द्वारा भारतीय गिरमिटिया मजदूरों और भारतीय लोगों के आत्मकसम्मा।न को बढ़ाते। भारतीयों में आत्मगौरव बढ़ाने के लिए 'योग मेन्सस हिंदू एसोसियेशन' तथा 'आर्य समाज' जैसी संस्थाओं की स्थापना की। 1910 और 1911 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में मॉरिशस के भारतवंशियों का प्रतिनिधित्व किया। साथ ही, मणिलाल डॉक्टर दक्षिण अफ्रीका जाकर गांधी जी को मॉरिशस के भारतीय गिरमिटिया मजदूरों के उत्थान के लिए किये गये कार्यों का विवरण दिया करते थे। मणिलाल डॉक्टर के मॉरिशस मे सत्याग्रह सुधार आंदोलन से प्रभावित होकर दो भारतीयों ने सन 1911 ईसवी में चुनाव लड़े पंडित काशीनाथ और पं. रामावद्य उच्च शिक्षा के लिए भारत गये जबकि रामखेलावन बुधन बैरिस्टरी शिक्षा के लिए विलायत पहुँचने। इन्हींव से प्रेरित होकर मॉरिशस आर्य पत्रिका और ओरियण्ट्ल गजट का निकलना संभव हो जाय।(रामशरण,1995: 8, 2004:7) गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के अनुयायियों में एक मॉरिशसीय थाम्बी नायडू था। उन्हीं के जरिए गांधी जी को मॉरिशस के बारे में भारतीय की हालात के बारे में जानकारी हुई थी। गांधीजी, मणिलाल डाक्टर जैसे भारतीयों की प्रेरणा के कारण मॉरिशस के राजनीतिक संघर्ष में भारतीय मूल के लोग आगे रहते हुए सत्ता तक पहुँच सके जैस: सर शिव सागर राम गुलाम मॉरिशस के प्रथम राष्ट्रपति और राष्ट्रपिता हुए।

सन 1879 से ले कर सन 1916 तक हजारों भारतीय गिरमिट की प्रथा के तहत फिजी द्वीप में गए। गिरमिट की अवधि को पूरी कर कितने ही भारतीय स्वदेश लौटआये, मगर इनमें से अधिकतर फिजी में ही रह कर स्वतंत्र रूप से खेती तथा व्यापार करने लगे। इनमें से अधिकांश अशिक्षित थे, फिर भी उन्होंने अपनी लगन और मेहनत से फिजी के सामाजिक तथा आर्थिक विकास में पूरा-पूरा हाथ बँटाया। आर्थिक कठिनाइयों को झेलते हुए तथा भेदभावों का सामना करते हुए भी अपनी संतानों को शिक्षित करने में कोई कोर-कसर नहीं रखी। इन्हीं पूर्वजों की मेहनत और त्याग के फलस्वरूप फिजीद्वीप आज 'प्रशांत महासागर के स्वर्ग' के नाम से प्रसिद्ध है। (सनाढ्य तोताराम, फिजीद्वीप में मेरे 21 वर्ष, लाल ब्रिज.वी. 2012) तोताराम सनाढ्य इन्हीं गिरमिटिया में से एक थे जिन्हें भारत के फीरोजाबाद से फुसलाकर फिजी ले जाया गया। इन्होंने फिजी में दयनीय स्थिति में रहने वाले भारतीयों की मदद के लिए एम.के. गाँधी को पत्र लिखा। इसी पत्र से प्रेरित होकर गांधी जी ने मणिलाल डाक्टर (1912-20), सी.एफ.एंड्रूज (1916) को फिजी में काम रहे भारतीय

गिरमिटिया मजदूरों एवं अन्य भारतीयोंकी मदद के लिए फिजी भेजा। मणिलाल डाक्टर फिजी में रहकर भारतीय के विरुद्ध चल रहे अदालती मुकदमें में भारतीयों के पक्ष रखा। फिजी में बसे भारतीय गिरमिटिया मजदूरों और अन्य भारतीयों को संगठित करने के लिए द्विभाषीय अखबार 'इंडियन सेटेलर' निकाला तथा 'इंडियन इम्पिरिअल एसोसियेशन' नामक संगठन बनाया। (लाल ब्रिज.भी. 2007:370-382) इन्हीं संघर्षों और प्रेरणाओं के कारण महेंद्र चौधरी को फिजी का प्रधान मंत्री बनने का अवसर मिला जो भारतीय मूल के थे।

1902 में गांधी जी प्रवासी भारतीयों के निमन्त्रण पर पुन: दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। वे ट्रांसवाल के सर्वोच्च न्यायालय में अधिवक्ता के रूप में पंजीकृत हुए और 'ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन' की उन्होंने स्थापना की। 1904 जोहान्सेवर्ग से नटाल के लिए जाते समय गांधी जी हेनरी पोलक द्वारा दी गई रस्किन की पुस्तक 'अण्टु दिस लास्टन' पढ़ी। गांधी जी को इस पुस्तक ने गहरे रूप से प्रभावित किया और गांधी ने इस पुस्तक का अनुवाद गुजराती में 'सर्वोदय' नाम से किया। 'सर्वोदय' सिद्धांतों पर अमल करने के प्रयत्न फलस्वरूप 'फीनिक्सट फार्म' (1904) की स्थातपना हुई।(गांधी एम.के, आत्मकथा: 271) फीनिक्स फार्म से 'इंडियन ओपीनियन' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया जो पूर्णत: सहकारिता एवं श्रमदान के नियम पर संचालित होता था। गांधी जी के अनुसार, इस पत्र मुख्य उद्देश्य था पुरे विश्व में जहाँ कहीं भी भरतीय रहते हों उन तक सत्याग्रह से संबंधित घटनाओं को पहुँचाना, दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीय को सत्याग्रह की तालीम देना। (दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास : पृ 162) जोहान्सबर्ग में फैले प्लेग के समय वहाँ अस्पताल की स्थापना की। उसी वर्ष गांधी ने आहार-विज्ञान पर अनेक लेख गुजराती में लिखे जो हिंदी में 'आरोग्यी दर्शन' नामक पुस्तक में संकलित व प्रकाशित हुए। 1906 में गांधी ने जुलू विद्रोह (जुलू अफ़्रीकी मूल के लोग) के समय इंडियन स्ट्रेकचर-बेअरर कोर की स्थापना की। उसी वर्ष गांधी जी ने सार्वजनिक सेवा और सत्याग्रह के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करने का व्रत लिया। (गांधी एम.के, आत्मकथा: पृ 185-186, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास : पृ 111)

जोहान्सबर्ग में ट्रांसवाल एशियाटिक ला अमेन्डइमेन्टत ओर्डिनेन्स के विरोध में भारतीयों की विशाल सभा आयोजित कर गांधी ने उनसे इस काले कानून के विरूद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध (बाद में सत्याग्रह) करने की शपथ दिलवाई। वे प्रतिनिधि मंडल लेकर इंग्लैण्ड भी गये और उपनिवेश मंत्री के सामने प्रवासी भारतीयों के साथ किये गये अन्याय का विवरण प्रस्तुत किया। 1907 में उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन चलाया और सार्वजनिक सेवा के लिए अपना जीवन अर्पित करते हुए वकालत छोड़ दी। सत्याग्रह आन्दोलन के कारण उन्हें 10 जनवरी, 1908 को दो महीने के कारावास की सजा दी गयी। जनरल स्मदट्स को सरकार द्वारा समझौता वार्ता के लिये उन्हें आमंत्रित किया गया तथा समझौता होने पर गांधी को जेल से मुक्त कर दिया गया। किन्तु प्रवासी भारतीय पठानों ने इस समझौते को भारतीय हितों के विरूद्ध विश्वा सघात माना और उन्होंने गांधी पर प्राणघातक हमला किया। भाग्य से गांधी बच गये, फिर भी उन्होंने हमलावरों के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की। जनरल स्म्ट्स द्वारा समझौते की शर्तों के साथ विश्वारसघात करने के कारण गांधी ने पुन: सत्याग्रह प्रारंभ किया। उन्हें दो महीने का कठोर कारावास दिया गया। कारावास की अवधि पूरी करने के एक माह के अन्दर सत्याग्रह करने पर पुन: गिरफ्तार किया गया। इस बार गांधी को तीन माह की सजा दी गयी।

1909 में गांधी पुन: शिष्टिमंडल लेकर इंग्लैण्ड गये और वहाँ से दक्षिण अफ्रीका से 'किल्डोनन कैसल' नामक जहाज से लौटते हुए अराजकतावादी विचारधारा रखने वाले हिंदुस्तानियों के शंका समाधान के लिए और अपनी विचारधारा को स्पष्ट रूप दुनिया के सामने रखने के लिए में 'हिन्दक स्वाराज' की रचना की। (दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, पृ : 264-65) सत्याग्रहियों के उपयोग के लिए 30 मई 1910 में जोहान्सबर्ग के निकट जर्मनी मूल के अफ़्रीकी नागरिक और गांधी के दोस्त कोलनबैक 1100 एकड़ पर 'टालस्टा य फार्म' की स्थापना की गयी। इस फार्म की महत्ता को बताते हुए खुद गांधी ने कहा "सत्याग्रह के अंतिम युद्ध के लिए 'टालस्टा य फार्म' आध्यात्मिक शुद्धि और तपश्चर्या का स्थान सिद्ध हुआ।' (दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, पृ : 293) गांधी जी के नेतृत्व में भारतीयों द्वारा चलाये जा रहे सत्याग्रह को अपना नैतिक समर्थन देने के लिए गोपाल कृष्ण गोखले 22 अक्टूबर1912 को दक्षिण अफ्रीका के नेटाल आये। नवम्बरर, 1913 में दक्षिण अफ्रीका की संघीय सरकार द्वारा तीन पौंड के पोल-टैक्से को निरस्तह न करने के विरोध में सत्याग्रह किया। गांधी ने 2023 पुरूषों, 127 स्त्रियों तथा 57 बालकों के जुलूस का नेतृत्व करते हुए ट्रांसवाल में प्रवेश किया। उन्हें गिरफ्तार कर जमानत पर रिहा किया गया। सरकार ने समझौता वार्ता के लिए उन्हें 18 दिसम्बर को बिना शर्त रिहा कर दिया। जनरल स्मयट्स के साथ हुए समझौते के कारण गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन समाप्त कर दिया। इसी के तहत भारतीयों को राहत देनेवाले कानून (इंडियन्स रिलीफ बिल) को पारित किया जाता है।

9 जनवरी 1915 को गांधी सपरिवार एवं कुछ सत्याग्रहियों के साथ दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे। गांधी जी के स्वदेश लौटने की याद में ही भारत सरकार ने 2003 से प्रतिवर्ष 'प्रवासी भारतीय दिवस' मनाना प्रारंभ किया है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. सनाढ्य, तोताराम (1972), फिजीद्वीप में मेरे 21 वर्ष, हिंदी समय, वर्धा।

2. गांधी, एम.के. (1949), हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

3. गांधी, एम.के.1957), सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

4. गांधी, एम.के.(1968), दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

5. चन्द्र, बिपिन (1990), भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली।

6. रामशरण, प्रह्लाद (1995), महात्मा गांधी एंड हिज इम्पैक्ट ऑन मॉरिशस, स्टर्लिंग पब्लिशर्स लिमिटेड, नई दिल्ली।

7. रामशरण, प्रह्लाद (2004), मॉरिशस का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

8. लाल बी.वी., रीव्स पी., और राय आर. (संपा.) (2007) द एनसॉयक्लोपीडिया ऑफ द इंडियन डायस्पोरा, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

9. लाल, ब्रिज.वी. (2012), चलो जहाजी : ऑन अ जर्नी थ्रू इन्देंचर इन फिजी, एएनयू प्रेस, आस्ट्रेलिया।

कविता का कथा-पाठ और हमारा समय

देवराज

(एक)

बात पुराने ज़माने की है| घने जंगल में एक शिलाखंड खड़ा था| दर्प से दिपदिपाता मुख-मण्डल| पार्श्व में खड़ी थी उसकी प्रिया, जिसके कपोल पर विद्यमान गड्ढा उसके सौंदर्य को नया अर्थ दे रहा था| एक दिन कुछ अजनबी आए| उन्हें अपने गाँव के सिवाने पर स्थापित करने के लिए एक मोनोलिथ ---स्मृति-चिह्न के रूप में प्रतिष्ठित की जाने वाला शिलाखंड--- की तलाश थी| अजनबी लोगों ने शिलाखंड को दरार से चीर दिया और उसकी प्रिया को वहीं छोड़ कर उसे एक काम चलाऊ गाड़ी पर लाद कर गाँव ले गए| गाँव भर के बच्चे दौड़ आए, स्त्रियाँ हुलास के मारे खिल पड़ीं| मोनोलिथ की प्रतिष्ठा हो गई| उसके बाद शुरू हुआ अपनी जड़ों से उखाड दिए गए शिलाखंड के अपमान का सिलसिला| उसके चारों ओर शराबी मंडराने लगे| आवारा कुत्ते, जब-जब मन चाहा, तब-तब आकर उसके तराशे हुए किनारों पर टांग उठाने लगे| अपनी जड़ों से उखाड दिए जाने की दुस्सह वेदना तथा शराबियों और कुत्तों द्वारा किए जाने वाले अपमान से पीड़ित शिलाखंड ने प्रकृति के मूल तत्वों से निवेदन किया कि वे जब भी जंगल से होकर गुजरें और उनसे उसकी प्रिया पूछे, तो वे सिर्फ यह बताएँ उसका प्रिय अपने गौरव तक पहुँच किन उसके अपमान की कहानी कभी बयान न करें|.....

(दो)

बात पुराने ज़माने की है| कहीं किसी धरती पर छतनार वृक्षों, भरी-पूरी लताओं, चिड़ियों की चहचहाहटों की गूंजों-अनुगूंजों से भरा, प्रचण्ड आँधियों को चुनौती देते, तमाम बौछारों को झटकते, शाखा-प्रशाखाओं पर धमा चौकड़ी मचाते नन्हें जीवों से संपन्न एक सघन जंगल था| समय ने करवट ली| जंगल को हाथी और घरघराती गाडियाँ रौंदने लगे| वे उस जंगल के खजाने को मिलों की दिशा में ढोने में जुटे थे|.....

एक ज़माने में किसी पृथिवी पर एक नदी थी--- उल्लास भरी, स्वच्छंद, निर्मल, कलकल निनाद करती, अपने में संतुष्ट, नन्हीं-नन्हीं मछलियों की क्रीडा से झिलमिल करती हुई| शर्मीला थका प्यासा हिरन उसके किनारे पर इस तरह पारदर्शी घूँट भरता था, मानो शहद पीन में मस्त हो| समय ने करवट बदली| दो पैरों पर चलने वाले पशुओं ने उस नदी को गंदला बना दिया| कूडे-करकट से उसके तटों को रंगहीन कर दिया| मछलियाँ लूटने के लिए उसकी गहराइयों पर निर्मम हमला कर दिया| बम और ब्लीचिंग पाउडर ने उस नदी का भविष्य बर्बाद कर डाला|.....

शोक मनाएँ उस जंगल के लिए,..... शोक मनाएँ उस नदी के लिए|.....

(तीन)

बात पुराने ज़माने की है| एक गुबरैला था| वह एक चट्टान के निकट आया और बोला, 'जानती हो, वे मुझे गुबरैला कह रहे हैं ! मैं उन्हें दिखा दूँगा कि मैं उनसे बेहतर हूँ| मैं उनकी निंदा सहन नहीं कर सकता, इसीलिए यहाँ से जा रहा हूँ|' गुबरैला बड़बड़ाता हुआ चला गया| चट्टान व्यंग्य से हँसी। उसे पता था कि गुबरैला पश्चिम की ओर एक दूसरे गोबर के चोथ पर जा रहा है| इसके बाद एक घोंघा चट्टान के निकट आया| अपनी बदमाश निगाहों से चट्टान को घूरते हुए बोला, 'क्या हो रहा था अभी?' चट्टान कुछ नहीं बोली, क्योंकि वह जानती थी कि घोंघे ने सारी बातें सुन ली हैं| घोंघा हवा को सूंघते हुए आगे बोला 'उस घमण्डी बड़बोले गुबरैले ने मुझे उबा दिया था, अच्छा हुआ उस संड़ाध भरे से छुटकारा मिल गया|' इसके बाद वह डींग हाँकते हुए बोला 'यह तो किस्मत की चाल है कि मैं घोंघा बन गया, वरना मैं मोती वाला सीप भी हो सकता था| हो यह भी सकता है कि मैं भविष्य में कभी मोती ही पैदा करूँ|' चट्टान ठठा कर हँसने लगी, 'देखो ज़रा इन छुटभैयों को! कितने दयनीय लगते हैं ये! जहाँ तक मेरा सवाल है, देखो, मैं कितनी बड़ी हूँ! कितनी शानदार! तुम लोगों के जाने के कितनी बाद तक मैं ही छाई रहूँगी पूरे परिदृश्य पर' अगले ही दिन सड़क बनाने वाले आए और चट्टान के नीचे डायनामाईट की छड़ें लगा दीं|.....

मित्रो, यह तेमसुला आओ की दस कविताओं का कथा-पाठ है| इसमें कहीं कोई मिलावट नहीं की गई है| जिन कविताओं के कथा-पाठ आपके सामने परोसे गए हैं, उनका चयन तेमसुला आओ की अभी-अभी हिन्दी में 'तट पर प्रतीक्षा' शीर्षक से पुस्तकाकार आई बयालीस कविताओं में से किया गया हैं।

(चार)

एक गाँव में मुर्गे की बाँग के साथ सुबह होती है। एक स्त्री अपने उनींदे कानों से उस बांग को अनसुना करके कुछ और सो लेना चाहती है, लेकिन दिन उसकी प्रतीक्षा कर रहा है, सो उसे उठ जाना पडता है। वह ढीले केश बाँधते हुए उठती है और चाहती है कि ठंडे पानी से नहा ले, ताकि खेत की मेहनत की गन्दगी और पति के हाल की गंध को धो डाले| लेकिन घर में पानी इतना भर ही है कि केवल खाना पक सके, स्त्री निराश हो जाती है और बड़ी लालसा के साथ जंगल की जल-धारा के बारे में सोचने लगती है| पति अभी तक सो रहा है| स्त्री चूल्हे की राख के ढेर को कुरेदती है, सुलगते अंगारों पर लकड़ियाँ रखती है और खौलते पानी में चावल डालती है| झोंपड़ी में लकड़ियों के धुँए और पकते हुए चावलों की गंध भर जाती है| यह गंध झोंपड़ी के बाहर वाले हिस्से में बंधे सूअरों तक पहुँच जाती है, वे सूंघते हैं और बोलने लगते हैं| एक चूजा अपने सोने की जगह से गिर जाता है और चिल्लाने लगता है| स्त्री का एक बच्चा जाग कर बिलखना शुरू कर देता है, स्त्री अनमने भाव से उसे उठा कर अपनी छाती से लगा लेती है, लेकिन चावल चलाती रहती है| बाकी बच्चे भी उठा दिए जाते हैं| उनमें से बड़े गाँव के कुँए की ओर दौड़ जाते है, छोटे सूअरों को खिलाने में लग जाते हैं| स्त्री भूखे बच्चों को भोजन परोसती है, फिर उन्हें तरह-तरह की हिदायतें दी जाती हैं| पति भी खाता है और खाने में नमक ज़्यादा होने की शिकायत करता है, स्त्री रोज की तरह

उसकी अनदेखी करती है| अब तक सारा गाँव जाग गया है| स्त्री-पुरुष खेतों की ओर जाने लगते हैं| वह स्त्री भी उनके साथ निकलती हुई पति से कहती है 'याद करके बीज ले आना', पति कोई जवाब नहीं देता, लेकिन वह स्त्री जानती है कि उसका पति वही करेगा, जो उसने कहा है| गाँव की सुबह खत्म हो जाती है|.....

(पाँच)

एक गाँव है| उसमें बिन माँ की एक अभागी लडकी है| बाप सौतेली माँ ले आया है| जाड़े की रात की सुबह ज़रा देर से होती है| रात में बाप की खाट की चुरचुराहट तेज हो जाती है और उसकी मस्त आवाज़ उसकी सौतेली माँ की खिलखिलाहट के साथ मिल कर खाट की चुरचुराहट को पराजित करने लगती है| लडकी की नींद पूरी तरह उड़ जाती है| वह खिलखिलाहट की तुलना शाम की उस आवाज़ के साथ करने लगती है, जिसमें लडकी के लिए एक धमकी गूंजती रहती है---'सुबह मेरे उठने से पहले पानी के सारे बर्तन भर जाने चाहिए, वरना.....'। जाड़े की रात का घुप्प अँधेरा अभी खत्म नहीं हुआ है किन्तु गाँव के मुर्गों ने बाँग देना शुरू कर दिया है| अभागी लडकी चटाई पर बिछा फटा कम्बल अपनी देह पर लपेट कर उठती है और चूल्हा कुरेदती है| अनमनी आग की मद्धिम रौशनी में बर्तन इकट्ठे करके टोकरी में भारती है और जाड़े के ठहरे हुए अँधेरे में ही गाँव के कुँए की ओर जाने वाली बिछलन भरी सीढियाँ उतर जाती है। अभागी लड़की की ज़िंदगी भारवाही पशु बन गई है, जिस पर लगातार गालियों की बौछार होती रहती है और जिसे पोषण बहुत कम मिलता है| इस दुःख भरी सुबह उसे पानी भरने के लिए लंबा इंतज़ार करना है|.....

(छः)

एक बार की बात है| एक बाघ हिरन के पास आया और बोला, 'मुझे अपनी थोड़ी-सी घास खाने दो|' हिरन हक्का-बक्का रह गया, 'भला बाघ का घास से क्या रिश्ता!' बाघ ने समझाया कि वह डाक्टर की सलाह पर शाकाहारी हो गया है| हिरन की शंका फिर भी दूर नहीं हुई| तब बाघ बोला, 'क्या तुमने रिपोर्ट नहीं पढ़ी या टेलीविज़न नहीं देखा? नहीं जानते, सिद्ध हो गया है कि मांसाहार खराब है|' सुनते ही हिरन के भीतर तीव्र प्रतिक्रया हुई| उसने हुंकार भरी और चिल्लाया, 'हे अवसरवादी, कोई दूसरी जगह खोजो, मेरी भूमि का अतिक्रमण मत करो, मेरी भूमि सिर्फ मेरे लिए पर्याप्त है|'

(सात)

एक सवाल, जो एक अदृश्य सवाल पूछता है| पता नहीं किससे पूछता है? शायद अपने आप से ही पूछता है| पूछता है एक अजीब सवाल कि अगर किसी ज़ख्म के पास बोलने की ताकत होती, तो वह कौनसी भाषा का प्रयोग करता? अगर वह बोल सकता होता, तो अपनी भाषा में किस न्याय की तलाश करता? अगर वह अभिव्यक्ति में कुशल होता, तो किसे दोष देता? अत्याचारी को, उसकी ताकत के लिए अथवा पीड़ित को, उसकी कमजोरी के लिए?.....

(आठ)

एक बार की बात है| कहीं मेंढकों का एक सरदार था| वह जोर-जोर से टर्र-टर्र करके कुँए के छोटे मेंढकों को बुला रहा था| उसे रात में सभा करनी थी| सभा होने लगी, लेकिन झींगुरों के लगातार बोलते रहने के चलते किसी को कुछ समझ में नहीं आया कि मेंढक क्या बातें कर रहे हैं|

फिर भी इतना तो समझा ही जा सकता था कि मेंढकों की एक गंभीर सभा चल रही है| यह अलग बात है कि सभा का निर्णय किसी भी रूप में धरती को हिलाने वाला नहीं रहा होगा|

(नौ)

स्त्री कहने भर से हम जान जाते हैं कि किसकी चर्चा हो रही है! उसे प्रकृति ने भार ढोने, बीज धारण करने और सबकी इच्छा पूरी करने योग्य बनाया है। लेकिन वह अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सकती। काल ने उसके काम निर्धारित कर दिए और रिवाज़ उस पर हमेशा हावी रहे। स्त्री प्रतिरोध में चिल्लाई, किंतु किसी ने सुना नहीं। पुरुष ने उसे फुसलाया और कालहीन काल के लिए अपने अधीन कर लिया| फिर वह उसे अपनी आवारगी में लगातार लूटता रहा| धर्म ने उसे पवित्र बनाया, लेकिन जड़ताओं ने माँ और प्रेमिका जैसे लाभकारी सांचों में ढाल दिया| कभी-कभी स्त्री अपने कुचले जाने और फुसलाए जाने के खिलाफ विद्रोह पर भी उतरी, लेकिन पुरुष कभी बदलने को तैयार नहीं हुआ| अंतत: स्त्री ने आदमी और परम्पराओं की अवज्ञा के लिए कुछ विलगाव निर्मित किए| वोडिसिआ, गोडिवा, क्लितेम्नेस्त्रा, क्लियोपित्रा आदि स्त्री-प्रतीक इसी के फलस्वरूप सामने आए|.....

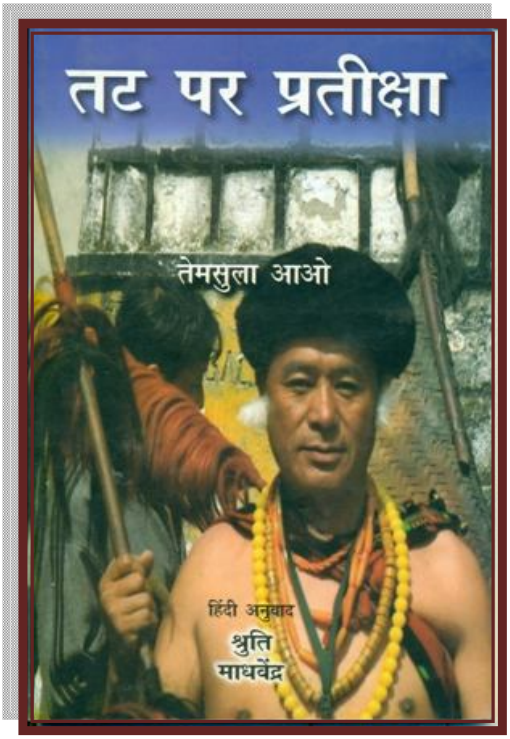

(दस)

बात उत्तर आधुनिक---- उत्तरोत्तर आधुनिक भी कह सकते हैं--- काल की है| समाज शास्त्रियों और वैज्ञानिकों ने सुदीर्घ साधना के बाद एक नई दुनिया की खोज की| इसे नाम दिया गया, विचित्र संसार| इसके बारे में कहानी कुछ यों बनती है---

एक है विचित्र संसार| इसमें वे लोग रहते हैं, जो सबके सब अपनी ही धरती से निर्वासित हैं और अपने ही मानस में बंदी हैं| विचित्र संसार में बहुत सारे राष्ट्र भी हैं| ये अपनी धरती को पूरी तरह नष्ट करने के बाद अब आकाश पर प्रभुत्व ज़माने के लिए परस्पर प्रतियोगिता कर रहे हैं| ये भूल गए हैं कि दरअसल आकाश पर स्वाभाविक अधिकार तो चिड़ियों का है, उन्हें आसमान से बेदखल करना भारी अपराध है| चिड़िया आकाश में वायुयानों के कानफाड़ू शोर में चीख रही हैं, लेकिन कोई भी उधर ध्यान नहीं दे रहा है| विचित्र संसार के देशों में नस्लों को दण्डित करने वाला न्याय प्रचलित है| वहाँ अहिंसा के नारों के बीच शस्त्रीकरण राष्ट्रीय नीति है| कूटनीति डालर और पाउंड के वितरण का नया केन्द्र है| देश न्याय की विडम्बना के प्रति उदासीन हैं| विचित्र संसार में सह-अस्तित्व का सिद्धांत भी मौजूद है, क्योंकि उसमें गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ और मलिन बस्तियाँ साथ-साथ जी रही हैं| ध्यान देने योग्य बात यह है कि निर्वासन के

मुलम्मे से ढके इस विचित्र संसार में चिंतनशील प्राणी निवास करते हैं|.....

[टिप्पणी (जो अनावश्यक भी लग सकती है):

मित्रो, यह तेमसुला आओ की दस कविताओं का कथा-पाठ है| इसमें कहीं कोई मिलावट नहीं की गई है| जिन कविताओं के कथा-पाठ आपके सामने परोसे गए हैं, उनका चयन तेमसुला आओ की अभी-अभी हिंदी में 'तट पर प्रतीक्षा' शीर्षक से पुस्तकाकार आई बयालीस कविताओं में से किया गया है| मूल रूप से अंग्रेज़ी में रची गई इन कविताओं का हिंदी अनुवाद श्रुति और माधवेन्द्र ने सम्मिलित रूप से किया है| आपको यह बता दूँ कि तेमसुला आओ नागालैण्ड की आओ जनजाति से सम्बन्ध रखती हैं और समग्र पूर्वोत्तर की भाषाओं की समकालीन कविता में उनका महत्वपूर्ण स्थान है| उनका कार्य क्षेत्र नागालैण्ड के साथ-साथ मुख्यत: मेघालय (वे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्व विद्यालय, शिलांग में थीं, जहाँ से वे अमेरिका के मिनिसोटा विश्व विद्यालय तक घूम आई हैं) रहा है और आजकल वे दीमापुर में रह कर साहित्य-साधना कर रही हैं| कविताओं के कथा-पाठ को पढ़ कर आपको अनुमान हो जाएगा कि तेमसुला आओ की कविताओं में असाधारण सहजता से पूर्वोत्तर के जीवन का यथार्थ तो बोलता ही है, शेष विश्व की वर्त्तमान दशा की जटिल भंगिमाएँ भी अनायास प्रकट हो जाती हैं| इन कविताओं में कहीं कोई बडबोलापन नहीं है, कलात्मक दृश्यबोध की संवेदना प्रधान स्वीकार्यता है और इस स्वीकार्यता में आकण्ठ अपनापन है| अपनी इस विशेषता के चलते भारतीय कविता में तेमसुला आओ की कविताओं को अलग से पहचाना जा सकता है|

श्रुति और माधवेन्द्र को तेमसुला आओ की इन कविताओं को हिंदी में लाने का श्रेय है| कहना होगा कि अनुवाद मौलिक रचना का सा ही आनंद देता है| अनुवादकों ने अनुवाद के लिए प्राय: प्रयुक्त होने वाली गढी हुई भाषा से बचते हुए स्वत: स्फूर्त भाषा का प्रयोग किया है| तट पर प्रतीक्षा का पाठ करते हुए बराबर लगता रहता है कि हम कोई अनुवाद नहीं पढ़ रहे, बल्कि मूल कविता से ही साक्षात्कार कर रहे हैं| श्रुति और माधवेन्द्र लगभग पन्द्रह बरस से पूर्वोत्तर में रहते हुए वहाँ के साहित्य से जुड़ कर काम कर रहे हैं| निश्चय ही इसका लाभ उन्हें इस अनुवाद में मिला है|]

तट पर प्रतीक्षा (कविता संग्रह)
मूल रचनाकार : तेमसुला आओ
हिंदी अनुवाद : श्रुति एवं माधवेन्द्र
संस्करण : 2012
प्रका. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
पृ. 84 मू. 50 रुपए ।

तेमसुला आओ की चार कविताएँ

चंद्रोदय

क्या तुम कभी खड़े हो
झुके हुए चाँद के तले
रात के अंतिम पहर में
और सोचा है उसकी हालत के बारे में?

अपने तारों द्वारा परित्यक्त
और आशंकित
जल्दी उदित होने वाले सूर्य से
क्या तुमने देखा है कभी

छीजते हुए चाँद को,
जब वह डोलता है अनिश्चय से भरा
दूर से बाँग देते मुर्ग़ों की गूँजों
और उत्कंठित आलोकित होते क्षितिज के बीच
अपने उजड़ने के ठीक पहले?

इस तरह ठहरा है वह
अपने रुमान से रहित
अपनी मोहकता से वंचित
और घुल जाता है
अनिच्छित विस्मृति में,
अगले चंद्रोदय तक।

मेरा जीवन धन
पकड़ने की कोशिश की मैंने एक बार
एक इंद्रधनुष
और आया मेरे हाथ
बस एक नुकीला किनारा
टूटे हुए शीशे का
धँसा हुआ
मासूम देह में।

मैंने सँजोया था कभी एक वायदा
सिर्फ़ पाने के लिए
एकाकीपन
उन शब्दों में
जो ख़ाली हो गए
अपने मूल अर्थों से।

कभी
तरसती थी मैं
घर के लिए
पर पहुँचने पर
सिर्फ़ दीवारें ही पाईं ।
दीवारें
ख़ाली शब्द
भ्रामक इंद्रधनुष
मेरा जीवन-धन
सब कुछ।

राख

मैं देखती रही लपटों को
निगलते हुए
तुम्हारे प्रेम-भरे शब्द
अंधियारे उल्लास के छल्लों में
जैसे खड़खड़ाते पत्ते नाचते रहे
मौत की व्यथा में और भुरभुरा जाए
राख के ढेर में ।

चिटकते रहे अंगारे और अधिक के लिए
जैसे मज़ा ले रहे हों
देखते हुए जिंदा शब्दों को
राख में तब्दील होते हुए ।

मेंढक

सुन रही हूँ में मेंढकों के सरदार को टर्स्टर करते हुए
...जोरदार पुकार
कुँए के छीटे मेंढकों को
इकट्ठा होने औ'
अपने रात्रिकालीन विचार-विमर्श के लिए ।

मैं नहीं सुन पा रही हूँ
क्या कह रहे हैं वे
क्योंकि बोल रहे हैं झींगुर,
पर जानती हूँ मैं निश्चित ही
कि चल रही है मेंढकों की
एक गंभीर बैठक
हालाँकि नतीजा
नहीं होगा धरती को हिलाने वाला।

अंग्रेज़ी से अनुवाद :- श्रुति एवं माधवेन्द्र

उल्था

पोल वरलेन (Paul Verlaine)

अनुवादक - श्रीनिकेत कुमार मिश्र

पोल वरलेन (30 मार्च 1844-8 जनवरी 1896) के नाम से प्रसिद्ध पोल-मारी वरलेन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रमुख प्रतीकवाद से जुड़े फ्रांसीसी कवि हैं । इनकी पहली कविता संग्रह पोऐम सातुरनियेँ 22 वर्ष की उम्र में 1866 में प्रकाशित हुई। श्रापित कवि के नाम प्रकाशित पुस्तक में इन्होंने अपने समय के कुछ जाने-माने कवियों के बारे में लिखा है । यह बोदलेर के बहुत बड़े प्रशंसक थे । इनकी कविताओं में एक विशेष प्रवाह एवं गीतात्मकता-गेयता है ।

इनके मुख्य रचना संग्रह हैं- फेत गालौंत (1869), रोमौंस सौं पारोल (1874) और साजेस (1880) । कोनफेसियों (1895), मे जोपितो (1891) और मे प्रिजों (1893) इनकी आत्मवृत्तात्मक ग्रंथ/आत्मवृत्त हैं।

1. निरभ्र चाँदनी (क्लैर द ल्यून- Clair de lune)

तुम्हारी आत्मा एक ज्योत्स्नामय परिदृश्य है
जिसमें लोग मोहक मुखौटे लगाए
वीणा बजाते, नाचते हुए और लगभग
अपने अद्भूत परिधानों में भी दुखी नज़र आ रहे हैं ।
धीमी धुन में बजता है कि जो विश्वास करता है
उसे प्यार में जीत, ज़िंदगी में अवसर
तो उसे खुशियों पर भी विश्वास नहीं होता
और उनका गीत उस कौमुदी में खो जाता है ।

उदास चाँद के निर्मल, शांत एवं सुंदर छटा
जो पेड़ों पर बैठे पक्षियों को भी स्वप्नलोक में भेजते हैं
और फ़ब्बारे से ख़ुशी के आँसू
आह ! कितना मोहक है संगमरमर के बीच यह पतला
और ऊँचा फ़ब्बारा ।

---

2. छत ऊपर अंबर (ल सिएल ए पार-देस्सू ल त्वा- Le ciel est par-dessus le toit)

अंबर है, छत के ऊपर,
कितना नीला, कितना नीरव !
एक दरख़्त, छत के ऊपर,
फलों को अपने झुलाता।

घंटी वह आकाश में हम देखते हैं,
मधुर उसका स्वर।
एक चिड़िया पेड़ पर हम देखते हैं,
गाती अपने दुखड़े।

हे ईश्वर, हे देव, जीवन है वहाँ,
सरल और शांत।
यह दबी हुई अफवाह वहाँ
आ रही है शहर से ।
- क्या किया तुमने, तुम यहाँ
अनवरत रोते हुए
कहो, तुमने किया क्या, यहाँ रह कर
अपनी जवानी-यौवन-तारुण्य का ?

---

3. पतझड़ गीत (शौंसों दोतोन- Chanson d'automne)

वो लंबी सिसकियाँ
पतझड़ के

उस वायलिन की,
हृदय को मेरे क्षत-विक्षत करती
उसकी लंबी
उदास तान।

उबनभरा सबकुछ
और चोट करता है, जब
घंटा बजता है,
मुझे याद हैं
वो पुराने दिन और
रो रहा हूँ मैं आह भस्भर;

बहा जा रहा हूँ मैं
तूफानी हवाओं के साथ
मुझे ले जा रही हैं वो
यहाँ-वहाँ
वैसे ही
जैसे हों सूखे मृत पात।
---
4. हृदय में मेरे बारिश हो रही है (इल प्लर दौं मों कोर-Il pleure dans mon cœur)
हृदय भी मेरा रो रहा है
जैसे बारिश हो रही है शहर में
कैसी अवसन्नता है
जो मेरे मन को भेद रही है?

ऐ बारिश के रम्य कलरव
धरती और छत से !
उस हृदय के लिए जो खुद पर खिन्न है
ऐ बारिश के गीत!

रोता है यह बिना किसी कारण के
उस हृदय में जो निराश करता है
क्या ! कोई धोखा नहीं मिला ?
यह आह अकारण है ।

सबसे ज्यादा तकलीफ होती है
जब सबब पता न हो,
प्यार बिना और बिन घृणा
हृदय में मेरे इतना दर्द/शोक !
---
5. सफ़ेद चाँद (ला ल्यून ब्लाँश- La Lune blanche)
सफ़ेद चाँद
पेड़ों से झाँकता है
हरेक टहनी हरेक डाल से
आवाज़ आती है
झुरमुठों से
सुनो प्रिय

झील प्रतिबिंबित करता है
एक विशाल दर्पण-सा
उस नम्रा वृक्ष की
काली परछाई को
हवा भी अश्रु बहा रही है
यही वक्त है, आओ सपनों में खो जायें

असीम और करुण एक
शांति
उतरी है
आकाश से
जैसे आकाशीय पिंड कोई इंद्रधनुषी छटा बिखेर रहा हो
वक्त यह कितना रम्य कितना मोहक है।

मूल-पंजाबी

कवि मोहनजीत

हिंदी अनुवाद – हरप्रीत कौर

अमृता शेरगिल | पारिजात की टहनी

बहुत दुर निकल आया हूँ
नहीं तो रंग लग जाना था
संवाद का सबब खास समय पर बने तो कुछ बात बनती है
अभी मैं पर तौलने की अवस्था से परे हूँ
कि तुमने दुनिया से विदा ले ली

तुम भावों के जिस वेग को मेघों की तरह बहाती थी
तुम जिस ऊँट की शाह सवार थी
सोचता हूँ यह वेग तेरा देखा होता
देखा होता
तेरी आंखो के उनींदा रंगो का समंदर

तेरा काम तेरा जूनून
तेरे दिलदार मौसमों की बुनावट
तेरे अहम का शिखर-किला

कहीं अगर देखा होता

देखा होता तो मैं भी सान पर लगाता
भावों की जादूगरी
देखता रंगों की तनी हुई रस्सी पर
कितने छनकते हैं शब्दों के पैरों में बंधे घुँघरू
देखता कविता का दम
तेरे उन्मादों को कितना पकड़ती है मेरी कविता
अब तो मेरे पास केवल कल्पना है
कि उन सपनों के साथ-साथ हूँ
जो भावों, अंगों, तरंगों को
रंगों की बोली में बुलाते हैं

उम्र की सड़क पर बहुत आगे निकल आया हूँ
उम्र के गुजरे हुऐ पडावों में विचरना मुश्किल है
वह और होते हैं जो चौराहे में आकर
दिशा का अनुमान लगाते हैं
तेरी तो चाल ही दिशा थी
तेरा उम्र की पहला वर्ष था
कि पश्चिम के रंग-मेले की बनजारण बनी
बड़ी पहचानें थी तेरे सामने
वादीयां गहरे रंगों की
मेले में तब भी तेरे पास अपना रंग था
जो दिखता था
कॉफी हाउस की अलमस्त गोधुली से
कहीं न कहीं इश्क था तुझे मलंगी से
विवर्जन रिश्तों के बनने संबरने में
इश्क था अजीबो गरीब खेलों से
कि रस्मी नेम तेरी फितरत से परे थे
फलसफा, सलीका लकीर का
कि लकीर की पहचान के बिना रंग के कोई मायने नहीं

वरसों बाद चित्रित हरे कुंऐ मे नहाते गजराज
सजा हुआ गहरी काठी वाला ऊंट
सुराहीदार गोलाईओं वाली लहाती नंगी स्त्री
सफेद धोतियों वाले रेव-अंगी ब्रहम्चारी
टेढी लेटी लग्न औरत
लकीर का ही दिशाविज्ञान
कहीं-कहीं झलकता है बेशक पैरसी अंदाज
आखिर इश्क था तुम्हें सेजों रोगों से

रंगों की इस दुनिया में वह सब कुछ था
तब तुमने कहा- पैरिस मेरा नहीं
युरोप मतीस का है पिकासों का है
मेरा सिर्फ भारत है
जंहा भूख है, गरीबी है, लाचारी है
पर रुह की अमीरी का पता था
खुले चुल्हे-चौके साफ मन और विशाल खेत
तुम्हें दक्षिण के मंदिरों
अंजता की अमीरी का पता था
तुमने देखा था रंगो में घुला विलास
बोलते पत्थर, प्रेम-पात्र मेघले
यकसनियां भरवें शरीर वाली
जिस्मों की पीली लचर
और फिर तुमने चित्रित की थीं तीन युवतियां
बांकी और निरीह उदास
तुम उतर जाती थी शरीरी, रुह तक
जैसे बोली में कोई उतरता है
और सुनता है अपने ही मन की बापिस लौटती आवाज
अमृता दवंग थी, फक्क्ड, माणमती, घुमक्क्ड
और उसके साथी
बागी संगीतकार
चित्रकार
नाटककार
वह परदेदारी और परहेजदारी से परे थी
उसने स्वंय के नग्न चित्र उकेरे और बताया
सच कहीं स्थिर नहीं
स्वयं की सूरज ही मूल उत्पति है

बाप को लिखाः तुम्हें बेटी से प्यारी परंपरा है
नेहरु ने लिखा हैः
'तुने मेरे चित्र नहीं देखे, सिर्फ उड़ती हुई सी नजर दौड़ाई
बहन को लिखाः
'भारतीय पौशाक कितनी खुबसूरत है'
यह भी लिखाः
'पैसे और समझ एक बड़ा अंतर है'
बहुत रोती जब सुनती
लोग उसकी कला के इसलिए उपासक हैं
कि वह कामिनी है
जागीरदार है
खाने पहनने की शौकीन
अब गहरे भीतर कहीं उदास थी
और जो उल्लासमई है
वह उसके चित्रों का शौख़ रंग है
जिंदगी गहरी भी है और बहुत फीकी भी
जिंदगी विलाप है
और उमंग का शीत चश्मा
जिंदगी बहुत कुछ होकर भी अधूरी है
शांत लहरों के साथ कहीं भव-जल भी है
बहुत कुछ अबूझ और रहस्यमयी है
अमृता के रंगों की कहानी बहुत पहेलीनुमा है

अमृता धरती की बेटी थी

जिसके घर की दिवारें अजंता ऐलोरा की थीं
आंगन में मुलायम दाढी वाली
गुरसिख संस्कृति थी
और दहलीज पर कलिउपटैरा मुस्कान बिखेरती
अमृता इस दुमेल पर पनपी पारिजात की टहनी थी
जिसके अंतिम लाल फूलों तक
सुरमयी पत्तियों के झुरमुट में तीखे कांटे थे
सुना है इस टहनी पर सुरखाव
उड़ता तो अपने पैर अमृता को दे जाता
इन पैरों से ही उसने मिट्टी को रंगा

अमृता खुलकर खेली
रमणी
भरी-पूरी
उतंगी
रंग रत्ती
और धुर-अंदर कहीं गहरी उदास थी
उसकी तस्वीरें उसके आपे के चित्र थे
गुनगुने पानियों में आग की लकीर
सलेटी काया में जलती आंख
शौख वस्त्रों में चिंता के सुराख
वैभव में भी थकान और वेदना
स्वप्नमयी विलास में दबी चिंगारी

कई बार गहरी रातों में आकाश में देखना ओर सोचता
किस आकाश गंगा में होगा अमृता का घर ?
फिर सोचता
दंत कथाएं तारों में नहीं
लोक मन में सूहाती हैं

रंग बदलना गिरगिट का खेल है

हर झंडे को सलामी, केसरी को नतमस्तक
और लाल से दस्त-पंजा
कुर्सी के खेल को सात-सात सलाम

और उन्होंने क्या सोचा- जो आज भी उम्र बिता कर कह रहे हैः
'चाल में गड़बड़ है
और पैर भी किराए के हैं'

(सोचना मिट्टी था उन्हें)
उनका माद्दा बर्फ पर लेटना था
या गंदगी के टोकरे मुंह से बनाना था
और गुम हुई चाबियां हाथों में देकर कहना थाः
लो अब घर का माथा अलंकृत करो

और इन्होने माथा-अलंकृत कुर्सियों के चकले-वेलन बनाकर
योजना भवनों में, राज्य सदनों में
विमानों में बैठकर टूटी झुग्गियों का होना बदल दिया
बेरोजगारों के लिए दिए भाषाणों के कुतुम्बमीनारी अंबार
लोकरों में रखे लोक हितकारी कानून
फ्रिज में लगाई गई देश की बदलती तकदीर

और वही रास्ता, वही रात, वही पैर विबाईयों भरे
हाँ फर्क कुछ तो पड़ा है
सड़के चौड़ी और मील पत्थर एक तरफ अपनी भाषा में लिख लिए गये हैं
ताकि काफिले को चलते वक्त कुछ बुनियादी सहुलतें तो रहे !

प्रेम का खेलन

'आई हां मैं हवा बनके
पंज बारीयां पचहतर बूहे लंग के'

'आ सखी प्रणाम
सात सात खैर सलाम तुझे
तेरी राहों को
बैठ मैं तेरे पैर धो दूं
दीपक जलाऊँ
तेल चुआऊँ
पार करके आ जा
ये पांड़वों का धाम'

'बैठना होता तो रास्तों के फेर में क्यों पड़ती
वसेरा ना मेरा कोई चार दिवारी
मैं वारी'
माना है मेरी पवन असरारी
हम भी ईंट पत्थरों के व्यापारी
हमने भी दरवाजे पार करते हुए उम्र गुजारी
अब भी रोज दरवाजे फरलांघते हैं
बीते हुए को बांचते हैं
अघटित को किल्ली पर टांगते है

सुबह-सुबह जब उठते हैं
बीतने वाली के सामने आंखें खोलते हैं
सिदक के सामने सिर नवाते हैं
कार को हाथ लगाते हैं
अगर तुझे कहा ही है कि फर्लांघ आ
इसका ये मतलब तो नहीं कि चलने से शरमा जाओ
आवाज का दीपक जला
कैसे थे दरवाजे
कैसी थी खिड़कियां
कौन थे वो जिन्होने जीत ली
कौन थे वो जिन्होंने हार दी
बाजी तो बाजी होती है ना

''प्रेम का खेल तो जीत हार से परे है
जिसके चाव में बार-बार मरा जा सकता है
चाव का यह दीपक जब जला तो पता चला
हवा का कोई भेस नहीं, वर्ण नहीं
हवा का कोई ठहराव नही ना कोई पता ठिकाना
निकलने को राह, न रुकने को सराय
ना कोई सरोवर ना कोई पुल
न कोई जलता शरीर न लाल सुर्ख होंठ

गुंबद पर बैठी होती तो कहता कोई वजु कर
कलम की तरफ रुख करती तो कहता कोई वेद पढ़
चाव का दीपक जब जला
दिशाओं ने कहा
धैर्य रख
भीतर की आवाज सुन
देख, चितवन कर
तोड़ दे दरवाजे और खंडित कर दे खिडकियां
ईश्क न दरवाजा
ईश्क न खिड़की
तन रंग के
मन रंग के
ईश्क के दारों-दीवार पूजें
चाव का दीपक जब जला
पता चला...

इतनी भी कोई देर करता है

कोई इतनी भी देर करता है
कि अब कमरा तेज रोशनी का आदी है
स्वप्नमई रोशनी गुम है
इतनी देर करनी थी?
मेरी हंसी चौतरफा गूंजती
मुस्कुराहट नहीं मिलती

इतने देर करनी थी?
मेरे चौतरफा किताबों का झुरमुट है
छोटी सी नज्म नहीं मिलती

इतनी देर करनी थी?
पृथ्वी पर हजारों नक्श हैं
लकीरें नहीं दिखती

इतनी देर करनी थी?
और बालक गुम हैं

इतनी देर करनी थी
भला इतनी भी कोई देर करता है

मूल मराठी - आता होऊन जाऊ द्या !

कवि - लोकनाथ यशवंत

अनुवादक - गोदावरी ठाकुर

पलायन

जल्दी में निकलते समय कम से कम
पीछे मुड़कर तो देखना था
बस्ती जल रही थी और हमारे
हाथ ऊपर थे

साँप पेड़ पर गया तो
पंछी, बच्चे छोड़कर भाग जाते है
लेकिन, आज न कल यह सब
बदलना ही था
गावं में क्रोध का अंगार उड़ने वाला
ही था

मनुष्यों को ऐसे समय पर पलायन
नहीं करना चाहिए

बस्ती जलने लगी तो , भागकर नहीं
जाना चाहिए |

दशहत

हमने चुप रहने की कसम खाई
आपने तमाशा देखने की कसम खाई
एक शब्द भी नहीं बोलेंगे
कुछ भी हो
आपके डर का वैसे भी कोई
कारण नहीं
क्योंकि हम कुछ भी नहीं कहेंगे

आपने आज तक बहुत कुछ कह लिया
अब बोलने के लिए क्या रखा ?

हम में बातचीत होने का आभास
आपकी इतनी फट क्यों गई ?

असदउल्लाख़ान उर्फ मिर्ज़ा ग़ालिब

क्या बात है ग़ालिब,
तुम्हारे गजलो का पढ़ना शुरू किया है
तब से शहर की सुंदर स्त्रियाँ
एक नजर से मेरी ओर देखती रहती है|

प्रीति के घर से अथवा मदिरालय से
आते समय
तुम्हारे ही ग़जल चल - बिचल इस होंठो
पर
यह क्या बात है, ग़ालिब?

आज कल की शराब कैसी निकम्मी ग़ालिब
पेटभर पीकर भी चढ़ती नहीं
तुम्हारे चषक (टेस्ट) में एक भी बूंद है
क्या फसी हुई ?

मूल मराठी - मूर्ख म्हाताऱ्याने डोंगर हलवले
कवि - नामदेव साळूबाई ढसाळ
हिंदी-अनुवाद - मिलिंद पाटिल
कस्टडी की कविताएँ

जेल की कोठरी और हम

नसीबवाली है हमारी जेल की कोठरी
हम हर दिन गाते है
विश्व को बदलनेवाले सिद्धांत को
इस जेल की कोठरी का भी इतिहास है
पुराने जमानेवाले क़ैदी बताते है
ब्रिटिश काल में यह जेल की कोठरी
फासी लगाने वालों के लिए थी
हम भी अभी उसी में कैद है
धन्य है वो मजदूर जिन्होंने इसे
बाँधकर पूर्ण किया
सूर्य जब उगता है तब सूर्य किरण
हमारे कोठरी में
खेल रहे होते है.....

सूर्य जब अस्त हो जाता है तब
हमारी कोठरी से
बिछुड़ते हुए चले जाते है

अच्छा - अच्छा अंत में हम सभी भी
सूर्य किरण जैसे बिछड़ नहीं गए
मौत से नहीं डरे.....!!!!

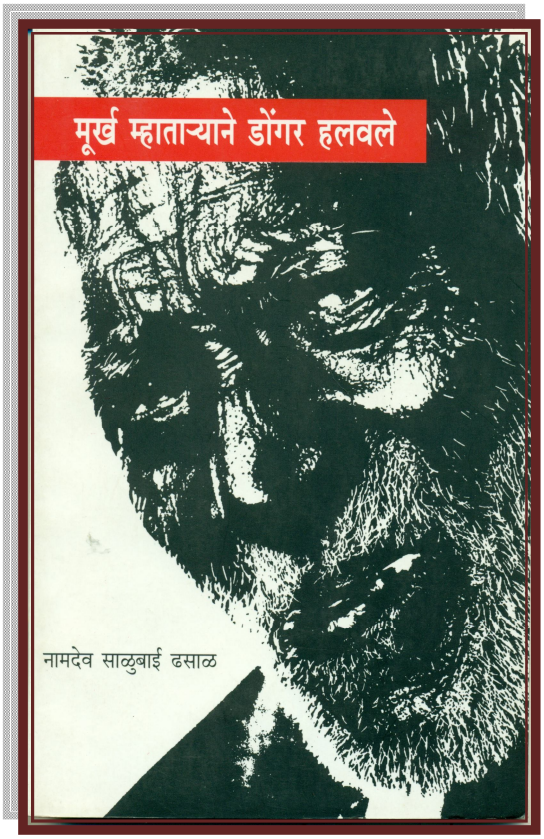

मेहमान

सम्माननीय मेहमान किया गया मुझे जेल में
जेलर ही कराते हैं मेरी दावत
बोलते हैं मुझे

हमारे गरीबों की 'रूखी-सूखी' मीठी कर लो
मैं इनको कैसे बताऊँ कि मैं इनका मेहमान नहीं
मैं हूँ क़ैदी
व्यापक मुक्ति का सूरज लाने के लिए
मैं आया हूँ जेल में घर मालिक बनकर.....!!!

बैल ताकत

पकड़के मुझे चार दीवारी के पिंजड़े में जकड़ दिया है
मेरा क्या गुनाह यह बता नहीं सकते मुझे
और मेरा मन इलाक़ागीरी करता है
सैनिकों की पोशाख चढ़ाते है
जैसे बैल गाड़ी के बैल को दिया जाता है मस्तवाल अंधेरा.....
उसी तरह से उन्होंने मुझे अंधेरे में बंद कर दिया
आपत्ति नहीं : कल जब मैं बाहर पड़ूँगा
तब उनके छाती पर नाचने के लिए
मेरे पास बैल की ताकत होगी .....!!!!

मेरे लिए बेल मत लेना

मेरे लिए बेल मत लेना
कितना इधर-उधर भटक रहा हूँ इस शहर में
सौतेली माँ जैसे इस शहर ने मुझे
सौतेली माँ जैसा दुख दिया
थंड हवाओं ने मुझे खड़ा किया

दो गज जमीन भी नहीं मिली मुझे इसके पहले
दोस्तों, पहले प्रथम हक की खोली
मिल रही है..... जमीन मिल रही है
रुको ! मुझे यहाँ पेट भर लेट लेने दो
मेरे लिए बेल मत लेना....!!!!

मूल कविता: सिरिप्पू (तमिल)

कवि: वैर मुत्तु

हँसी (अनूदित कविता)

अनुवादक - डॉ. लक्ष्मी अय्यर

हँसी

ताला लगा हुआ जीवन द्वारखुलता है हँसी की आवाज से

जीवन पर प्रकृति से छिड़का हुआ पावन सुगंध द्रव्य है हँसी

सारे अधरों की सार्वजनिक भाषा है हँसी

हैं छे अधरों के काम

हँसना, चूमना, खाना, चूसना, उच्चारण व गाना

हँसी विहीन अधरों को क्या मालूम ये काम ?

"देंगे –लेंगे "नष्ट न होंगे –दोनों के व्यापार

वही विचित्र दान है हंसी का व्यापार

हँसते ओंठो से, गायब हो जाते दुःख सारा

हँसते वक्त होती जिगर की सफाई

हंसी में छलकनेवाले आंसू में होता खारा

कांटा भी, गुलाब भी है हँसी

हँसी के स्थानांतरण से बन गए पुराण

एक स्त्री हँसी थी जहाँ न हँसना था, बन गया भारत

खुशियों के समय खो बैठी थी ,एक स्त्री अपनी सुंदर हंसी

रम्य रामायण का हुआ जनम

कोई भी हँसी बुरी नहीं

सांप का फन है तो सुंदर

खिल खिलाते घर आँगन में, कभी काल न बैठता

दिन में जो न हँसे, हर शाम मौत उनकी बिछाती है बिस्तर

पूरी घाटी में खिले फूल, बराबरी करेगा एक बच्चे की हंसी से ?

प्रेम की पृष्ठ भूमि है हंसी

कर्ज की है वह पूँजी

ओंठो का चंद्रोदय

जानवरों से परे गुण

हंसी की तारीफ इतनी करने पर भी

हैं कुछ लोग मरते दम तक कभी न हँसते

जरा ध्यान दो हंसी की जातियों की

अटकी ग्राम फ़ोन प्लेट की तरह एक ही जगह घूमनेवाली सुंदर हंसी

कलुषित मन से हँसनेवालों की कुटिल हंसी

पानी में फेंके कंकड़ पत्थर जैसे रुक रुक कर फूटनेवाली अजीब हंसी

धरती पर गिरे ताम्बे की कलसी –सी

लुढकते –लोटते मिटती हंसी

अदृश्य झींगुर जैसे, ओंठे मूंदे –मूंदे शब्दों को समेटने वाली गूंगी हंसी

आवाजों के आधार पर इनके हुआ जात –विभाजन

कुछ उच्च कुलीन वधुओं की हंसी

शशि किरण की शीतलता गिरी धरा पर जैसी

छोटा –सा स्वर्ग है हंसी

मानव-जाति की पहचान है हंसी

हर एक हंसी में बढती है जीवन की एक मिल्ली मीटर की दूरी

मरण को भी टालनेवाला महत्तर मार्ग का मन्त्र है हंसी

कहीं दो जन मिले तो रहम कर इतना करें ज़रूर

मरण को जरा टलवाइए हंस –हंस कर|

डॉ सी. नारायण रेड्डीजी की कविताओ/ग़ज़लों (तेलुगु) का हिंदी अनुवाद –डॉ लक्ष्मी अय्यर

(दग्ध समुद्रमु- सागर को माँ मानकर)

दग्ध सागर

आँखों के सामने ही हो रहा दग्ध सागर

उन फेनों की नावों पर सैर की थी कितनी बार

मेरे स्पर्श से खारे ओंठों पर

मीठी चाँद की किरणें बिछ जाती

नीली लहरें मुझे उठाती अपने वात्सल्य हाथों से

ऊपर फ़ेंक कर गिराती हँसती हँसती

“गिर जायेगा सावधान “कहके चाँद गेंद –सी

मुझे प्यार से संभालती माँ समुन्दर

पहचानोगे ? मेरे दिल की गहराई माँ ?

प्रश्न पूछनेवाली प्यारी गालों को चूमकर

आर्द्रता से उत्तर देती, ”नहीं”

सूखी-रेत सा मै सिकुड़ गया

तो ‘मेरे लाल ‘ कहके शीतल कर से उठातीसुंदर माँ

बस, वो शब्द ही काफी हैं

ढलनेवाली मेरी उम्र में भी ढेर सारे फूल खिलाती

उन लहरों की किलकारियों से खोया बचपन वापस आया

समुन्दर मेरी माँ, मेरा सर्वस्व, मेरे श्वासों को संगीत सिखाई संगीत गुरु

मेरे जलाक्षरों को छपवाए, संचित किये वात्सल्य का आधार

मेरी नित्य चेतना का मूलाधार

ऐसी माँ सागरीआज दग्ध हो रही

तो क्या मैसह लूँ ?

बनाता मेरी काया को प्रभंजन

कूदके आग में करूंगा माँ का संरक्षण

बनके बच्चा फिर मैं

उसी गोद मैं खेलूँगा|

मूल कविता/ग़ज़ल : तेलुगु

कवि : डॉ. सी. नारायण रेड्डी

हिंदी अनुवाद : डॉ.लक्ष्मी अय्यर

कितनी सुंदर हो तुम !

कितनी चोटों को ढोकरभी, कितना सरस हो तुम ?

इतने कल्लोल को निगालकर भी कितना शांत हो तुम

नयी रौनक देखके मन भटकता रहता

कितने रंगों में डुबाने पर भी कितना स्वच्छ हो तुम ?

थोडा –सा अपमान हुआ तो द्वेष बरसाते लोग ?

गले में कितने कडुवे हैं तो भी कितना मधुर हो तुम ?

लहरें हमला करने पर व्यथित न होता तट|

थोडा –सा खिलाफ हो तो लोग इतना सिकुड़ते

कितनी समस्याओं के गांठो के बीच में भी ,कितना सरल हो तुम ?

मन शिखर जैसा खड़ा हो तो शरीर थकेगा नहीं कभी भी

कितनी धूलि उड़ाने पर भी कितना सुंदर हो तुम ?

कल्पनाओं को दूर-दृष्टि हो तो वे रुकेंगी नहीं सी ना रे

उम्र ढलने पर भी कितना नव्य हो तुम ?

सप्त मुख

1.

चुल्लू भर मिनट की बूंदों को चेहरे पर छिड़काने पर भी

नमीपन न लग रहा है क्या समय सूख गया ?

2.

खिड़की से सदा प्यार से नज़रे डालनेवाले पेड़

आज चेहरा उतारके बैठ गए

क्या हवा को पक्षाघात हो गया ?

3.

सुदूर का पहाड़ नज़रे मिलाने से

पालतू बैल बनके सर हिलाते दरवाजे के पास आ खड़े होता

अब चोर –सा चुपके रह जाता

4.

जलनेवाली आग ज़मीन पर लगी तो

धुएं उड़ रही ऊपर

नखरे नज़रों से

5.

न्याय हाथ पसारके विनती करने पर भी

कुछ सच्चाईयां बरसते नहीं

कायर काले बादल बनके परार हो जाते|

6.

सड़क को ढो ढोकर विरक्त मन से विमुख होके

गुफाओं के अन्दर घुस गए शब्द –समूह

वहां भी असहन निस्तब्ध गुर्राटे

7.

रुई से भी हल्का बन गया जीवन

डंसने तक नहीं मालूम कि

सफेद रुई के पीछे छिपी है काली मौत|

मूल मराठी - अंगारबीज आणि दोलनवेला

लेखक - संजय इंगळे तिगावकर

प्रकाशक - उन्मेष प्रकाशन, पुणे

अनुवादक : डॉ. अनवर अहमद सिद्दीक़ी

जहां ...

रखें थे मैंने कदम
वहाँ
उमट गए होंगे अब
पद्चिहन...
मेरे उन कदमों का
अनुकरण करते होंगे
अनादि काल से
सत्य की खोज करने वाले
समस्त सहयात्री ...
आज मैं तुम्हारे बीच नहीं रहा ...
लेकिन मुझे ज्ञात है
तुम आज भी चल रहे होगे

अपने हाथों में विचारों की
लिए मशाल
मानवीय अंतस की
उन बस्तियों से ...

अजनबी गाँव

खुद से ही बातें कर लेता हूँ मैं
इस अजनबी गाँव में
अकेला ही चल लेता हूँ मैं
इस अजनबी गाँव में

मिला था मुझे भी
एक गाँव आदमियों का

वहीं गाँव तलाश रहा हूँ मैं
इस अजनबी गाँव में

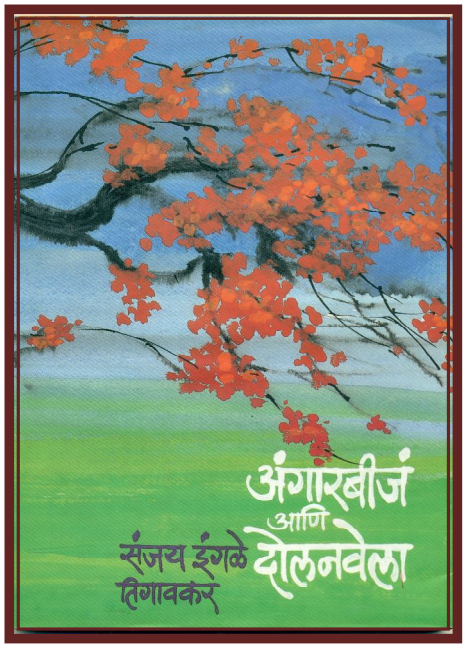

सुदूर था वह गाँव घना
पहचाने से चेहरे
खुद को उनमें समाहित करते मैं
इस अजनबी गाँव में
मिलेंगी ज़रूर कहीं एक
जानी पहचानी कसक
यादें अतीत की संजोए
इस अजनबी गाँव में

फ़र्क सिर्फ़ इतना ही

क्रांति की भाषा तुम भी जानते हो
हम भी जानते हैं
अमन की अभिलाषा तुम भी रखते हो
हम भी रखते हैं
फ़र्क सिर्फ़ इतना ही ...
तुम्हारी नज़र कुर्सी पर और
भाषा स्वार्थ हेतु
हमारी आवाज़ आज़ादी और
शब्द समता हेतु
विद्रोह की भाषा तुम भी प्रयोग करते
हम भी करते
विद्रोह कराया तुमने भी
हमने भी
फ़र्क सिर्फ़ इतना ही
तुम्हारा विद्रोह पद की खातिर
हमारा अधिकारों के लिए
तुम सत्ता पाने के लिए लड़ते हो
हम लड़ते हैं सत्य के लिए

मूल अंग्रेजी - All You Who Sleep Tonight
कवि - विक्रम सेठ
हिंदी अनुवाद - शिल्पा

तुम जो पूरे के पूरे सोए हुए हो

अपने प्यार से बहुत दूर
न तुम्हारा दाहिना हाथ न बायाँ
एकांत के चरण पर

जानते हो कि
तुम अकेले नहीं हो

पुरी दुनिया तुम्हारे आसुओं को बांट रही है
कुछ एकाद रात के लिए और
कुछ वर्षो बरस के लिए

मूल अंग्रेजी- The Indian Way
कवि - जयंत महापात्र
हिंदी अनुवाद -शिल्पा

भारतीय मार्ग

बारीश की अंतहीन चुप्पी, मृत्यु सरीखी
पहाड़ों के ऊपर
किसी के स्पर्श को खोलता है
सुराहीनुमा गले की कवच में चक्कर काटता हुआ
आत्मा के लिए एक तात्विक एहसास
हम शांत रहते हैं और आवाज़े चलती हैं,
मैं तुम्हारे लिए सुबह का कमल खरीदता हूँ
हम इसी क्रिया में बार बार मिलेंगे
जो न तो आगे जाता है और
न पीछे ले जाता है

यह स्थिर रखता हमें बिना किसी पछतावे के
तुम जानती हो
मैं तुम्हें स्पर्श भी नहीं करूँगा
हमारी आखरी रात से पहले

संदर्भ

http://www.poemhunter.com/poem/all-you-who-sleep-tonight/
http://www.poemhunter.com/poem/the-vase-9/#content

मूल मराठी - पुन्हा चाल करू या....!
कवि - लोकनाथ यशवंत
हिंदी अनुवादक :- मेघा आचार्य

मुर्गा

सुन मुर्गे,
यह निर्दयी अनपढ़ लोग
जब घर परिवार पर आई विपत्ति को करने के लिए
तेरी बलि देते है,
इस तथाकथित भगवान के आगे
तेरा क़त्ल कर देते है,
तुझ पर बहुत दया आती है
तेरे लिए मेरा दुःख सच्चा है रे!
पर क्या करू...?
जहाँ बुद्ध, महावीर, इसा, बसवेश्वर 'फेल' कर गये
वहां मेरी क्या औकात ?

अक्लदाढ़

बुद्धिजीवियों से मिला
अस्वस्थ सा हो गया
बुद्धिवादियों से मिला
बहुत पीड़ा हुई

करियरिस्टो से मिला
सुख चैन खो दिया मैंने
तरक्की की चूहा दौड़ में शामिल इन सबको देख
बड़ा निराश हुआ
जीवन जैसे नीरस सा रंगहीन लगने लगा
मनमौजी बच्चो के बीच जा पहुंचा
खुश हो गया
उनके साथ जी भर के खेला
आनंद से सराबोर हो गया
नये जीवन की....
बच्चों के साथ बच्चा बन गया
तो जैसे जीवन की बहार लौट आई
अब,
लोग मुझे बेवकूफ समझते है
अक्लदाढ़ भी नहीं फूटी
ऐसा बदनाम मुझे करते है

मणिपुरी कहानी : नोङदी तारकखिद्रे

बरसा ही नहीं बादल

लेखक : कैशाम प्रियोकुमार
अनुवाद : ई. विजय लक्ष्मी

ड्योढ़ी के निकट ही तीन-चार परतों से बने पत्थरों के ढेर पर स्थित समाधि पर गड़ी हुई सूली चाँदनी में बेसाख्ता चमक रही थी। आँगन छोटा सा है। समाधि उसके छोर पर बनी है। समाधि के पास ही ज्यादा बड़ा तो नहीं, पर घने पत्तों वाला एक पेड़ उगा है। चाँदनी में यह पेड़ बिलकुल काला दिख रहा है। वह बाँस की खपच्चियों वाले मचान के बरामदे की दीवार पर सिर टिकाए बैठी है। करीब एक साल का बेटा उसकी गोद पर सोया हुआ है और लगभग तीन साल का हो चुका दूसरा बेटा उसकी बगल में ही अपनी माँ के सहारे बैठा ऊँघ रहा है। निरभ्र-निर्मल आकाश में चन्द्रमा अपनी छटा बिखेर रहा है। छोटा सा बरामदा चाँदनी में दिपदिपा उठा है। लेकिन घर में अंधेरा पसरा हुआ है। चोङनिकिम चाँद को नहीं देख रही है। वह कालिमा ओढ़े सामने फैली भंगाई की पर्वत मालाओं को भी नहीं देख रही है। पास ही रोशनी में चमकते चर्च की ओर भी उसका ध्यान नहीं है। उसकी आँखें तो आंगन के छोर पर खड़ी सूली पर अटकी हैं।

चोङ्नी, देख कितनी बड़ी है मछली !

उसके सामने बड़ी सी मछली हाथ में लटकाए लुङजाहाओ मुस्कराता हुआ उसे दिखा रहा था।

चोङनिकिम का सारा शरीर सन्न पड़ गया। अगले ही पल चाँदनी में काले-काले घर, पेड़-पौधे,

दूर तक फैला पहाड़ और आसमान को छूते कटे से दिखने वाले पर्वत शिखरों के अलावा कुछ भी नहीं था। चोङनिकिम ने अपने छोटे-छोटे बच्चों पर नज़र डाली। अचानक ही उसकी आँखें आँसुओं से तर हो आईं। फिर बुक्का फाड़कर रोने लगी।

चर्च से प्रार्थना के गीत सुनाई देने लगे। स्त्री-पुरुष और छोटे बच्चों की गड्डमड्ड आवाज़ धीरे-धीरे तेज होती गई। चर्च के भीतर ईशू की सूली उसकी आँखों के सामने तैर गई। रुलाई पर मुश्किल से काबू पाकर वह भी सबका साथ देते हुए धीरे-धीरे प्रार्थना गीत गुनगुनाने लगी। कभी हिचकी बाँधकर रोती, कभी गीत गाने लगती। आवाज बुलंद होती गई। चर्च से आने वाली आवाज़ के साथ एक तान होकर एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ के बीच टकराकर गूँजने लगी। गीत गाते हुए चोङनिकिम की आँखों के आगे चर्च में सूली पर लटके ईशू का चेहरा तैर गया।

प्रार्थना गीत खत्म हुआ। फिर स्तब्धता छा गई। पेड़-पौधे, घर-बार, पर्वत-मालाएँ निर्जन चाँदनी में काला रूप धारण कर गुप-चुप खड़े हो गए। चोङनिकिम एक-एक को निहारने लगी। फिर आँगन के छोर पर मौजूद सूली को देखने लगी। लगा, मानो सारी चाँदनी इसी सूली पर उड़ेल दी जा रही हो।

"चोङनि, मछली काफी बड़ी है न !"

आवाज़ फिर कान में गूँजी। लुङजाहाओ था। सूली पर ईशू की तरह लटकाया हुआ। ध्यान से देखा आड़े- तिरछे रखी दो छोटी लकड़ियों से बनी थी सूली। यह तो केवल आड़े रखी लकड़ी है। आड़े रखी लकड़ियों पर नहीं, पत्थरों की परत पर लेटा है लुङजाहाओ। चोङनिकिम ने फिर ध्यान से देखा। यह लुङजाहाओ नहीं, बल्कि समाधि पर उगे हुए फूल हैं। चाँदनी में घने फूलों के पौधे चोङनिकिम को साफ नजर आने लगे।

"मुझे तुम्हारी मछली नहीं चाहिए। नहीं चाहिए मुझे मछली।"

अचानक ही वह बड़बड़ाने लगी। फिर गोद पर और बगल में उसका सहारा लिए बैठे अपने बच्चों को बाहों में कसकर भर लिया। बाँस की खपच्चियों से बनी दीवार पर सिर टिका कर उसने आँखें मूंद लीं। आँखों से अबाध आँसू बहने लगे।

"चोङनि हट जाओ। बाँस गिराना है।"

सीधी ढलान वाली भंगाई पहाड़ी पर खड़े होकर लुङजाहाओ ने ईंधन के लिए लकड़ियाँ चुन रही चोङनिकिम को पुकारा। चोङनिकिम उस जगह से परे हटकर ऊपर देखने लगी। बेल से बंधा बड़ा गट्ठा घास-फूस और छोटे पेड़-पौधों को मसलता हुआ पहाड़ की तलहटी की तरफ लुढ़कने लगा। कुछ ही पलों के बाद तेज आवाज के साथ तलहटी पर पड़े बड़े-बड़े पत्थरों पर जा गिरा। इस आवाज की प्रतिध्वनि दूसरी पहाड़ी से गूँज उठी। चोङनिकिम ने देखा, लुङजाहाओ भी पहाड़ी से घिसटता हुआ नीचे आ पहुँचा। दूर तक फैली बराक नदी पर सूरज अपना पूरा ताप उढेल रहा है। रेत पर पड़ते ही पाँव जैसे जलने लगते हैं। लुङजाहाओ का बदन पसीने से तर था। छायादार पेड़ के तले एक बड़े पत्थर पर बैठकर फटी कमीज के टुकड़े से उसने अपना चेहरा पोंछा। कमर पर झूलते थैले से तम्बाकू निकाल कर कागज के एक टुकड़े में लपेटने लगा।

"तेरा बदन पसीने से तर हो रहा है।"

चोङनिकिम ने पास ही बैठते हुए केले के पत्ते में बंधा खाना खोलते हुए कहा।

"और तुम्हारा चेहरा एकदम लाल हो गया है।"

दोनों ने एक दूसरे को देखा। फिर न जाने दिल का कैसा अहसास था कि देखते-देखते दोनों हँस पड़े। पहाड़ का ढलान और दूर तक फैली बराक के अलावा कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। शोर-गुल से दूर इस निर्जन में केवल वे दोनों ही थे। निस्तब्धता दिल में बेचैनी उत्पन्न कर रही थी। चोङनिकिम को अपनी शादी से पहले का समय याद आ गया। पहाड़ी खाइयों, शस्य-श्यामल पहाड़ की तराइयों और बराक की उछलती-कूदती लहरों में विचरने लगी। कुछ पल के लिए जीवन की सारी परेशानियों को भुला दिया। मुस्कराते हुए खाना खा रहे लुङजाहाओ को बहुत ध्यान से देखा। वह भी मुस्करा पड़ी।

"क्या देख रही हो ?" लुङजाहाओ ने पूछा

"कुछ नहीं, मोती लोग कब तक पहुँच रहे हैं ?"

सारी बातों को मन में दबाकर मोती के बारे में पूछा।

"पानी तो बरस ही नहीं रहा।"

"बरसेगा जरूर।"

चोङनिकिम ने आसमान की ओर देखा। बादल का एक टुकड़ा भी नज़र नहीं आया। सूरज अपना प्रकाश बिखेरता भंगाई पर्वत श्रृंखला के ऊपर चमक रहा था। बारिश का जरा भी आसार नहीं दिख रहा था । सावन(नोङजू था) तो आ ही चुका है। वह चाहती थी, एक-दो दिन ही सही पानी खूब बरसे।

"बाँस कितने होंगे?"

खाना खाकर पहले से ही तैयार तम्बाकू पी रहे लुङजाहाओ से चोङनिकिम ने पूछा

"पाँच सौ तो होंगे।"

चोङनिकिम उँगलियाँ मोड़-मोड़ कर बड़बड़ाते हुए हिसाब लगाने लगी। लुङजाहाओ मुस्कराते हुए उसे ध्यान से देखने लगा। चोङनिकिम सिर खुजाते हुए हँस पड़ी। फिर दोनों ठहाका मारकर हँसने लगे। हँसते-हँसते लुङजाहाओ ने पूछ- "कितना पड़ा?"

"पता नहीं, तुम करो हिसाब। "

लुङजाहाओ जैसे बहुत जानता हो कंकड़ उठाकर एक बड़े पत्थर पर लकीरें खींचने लगा।

"एक बाँस का पैंतीस पैसे..... तो ....पाँच सौ का.....।"

छोटे से चर्च के कमरे में बचपन में पास्टर का सिखाया हुआ गुणाभाग याद करते-करते उस बड़े पत्थर को लकीरों से भर दिया। लेकिन हताश हो उठा। चोङनिकिम मुस्कुराते हुए उसे गौर से देखती रही। अंततः लुङजाहाओ भी हँस पड़ा।

"मोती अपने आप हिसाब लगा लेगा।"

वास्तव में हिसाब मोती ही करता था। इतने सालों से वह हिसाब लगाकर जितना देता, उस पर उसने कभी ना नुकुर नहीं किया। कुछ पल हँसी के लिए ही बस। थैले से तम्बाकू निकाल कर लुङजाहाओ कागज में लपेटने लगा। आगे बोला,- "इस बार तो मोती के साथ जीरी घाट जाऊँगा।"

"क्या करने ?"

"उसका बाँस का व्यापार थोड़ा-थोड़ा सीख लेना चाहिए। और सिलचर से सामान भी खरीदूँगा।"

"क्या खरीदना है ?"

"तेरे लिए कुछ भी खरीदूँगा।"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए ।"

"मैं तो इस बार जरूर जाऊँगा। कुछ न कुछ जरूर खरीदूँगा ।"

चोङनिकिम शांत हो गई। हँसी थम गई। याद हो आया पिछले माघ(पोइन्) में इतने पाम1 से अट्ठारह कनस्तर से अधिक धान नहीं मिला था। इतने से कब तक गुजारा होगा ? कोंपलों के आने से पहले बाँस नहीं काटे तो कब काट पाएँगे। बारिश से पहले करने को कितने ही काम बाकी थे, हिसाब लगाने लगी। उसे मोती का भी स्मरण हो आया। एकदम दुबला-पतला मयाङ2 है मोती। कहाँ का रहने वाला है, चोङनिकिम नहीं जानती। केवल इतना जानती है कि वह बहुत दूर देश से आया है। जीरीघाट ले जाकर पैंतीस पैसे का बाँस फिर कितने में बेचता होगा? लुङजाहाओ बाँसों को खुद ही बेचे तो कितना मिल सकता है? कितनी बार वह यह बात सोच चुकी है। यह ऐसा सपना है, जिसे वह न जाने कब से देख रही है। फिर सोचती मोती का जीवन क्या हमसे अलग होगा? इस पर वह कल्पना की उड़ान नहीं भर पाती। मोती से पहले आए रामप्रसाद ने क्या सुख भोगा था ? गमछे का टुकड़ा पहने बाँसों का गट्ठर बनाते-बनाते बराक के नाले में ही मर गया। भर पेट कभी खाने को मिला ही नहीं। चोङनिकिम ये सब नहीं सोचना चाहती। इस जीवन से बेहतर जीवन की कल्पना वह नहीं कर पाती। अपनी आँखों के सामने से एक पल के लिए लुङजाहाओ को दूर नहीं करना चाहती, बस इतनी सी चाह है उसकी।

"क्या सोच रही हो, क्या खरीदकर लाऊँ ?"

"कुछ नहीं। तुम गए तो अपने दोनों बच्चों और इपा के लिए खरीद लाना।"

"तेरे लिए भी खरीदूँगा।" लुङजाहाओ हँसते हुए बोला।

"हाँ भई, थोड़ा हँस ही लें, सब सुन लो।"

चोङनिकिम ने हँसते हुए जवाब दिया। फिर दोनों एक साथ हँस पड़े। देर तक हँसते रहने के बाद चोङनिकिम को घर पर रह गए दोनों बच्चों की याद आ गई। लकड़ी के गट्ठरों को सम3 में भरकर चल पड़ी। एक बड़े पत्थर पर बैठकर तम्बाकू का स्वाद ले रहे लुङजाहाओ की ओर पलटकर वह मुस्कराई। तेज धूप के ताप से लाल पड़ गए उसके चेहरे को लुङजाहाओ ध्यान से निहारते हुए मुस्कराने लगा। बराक के मुड़ जाने के साथ ही चोङनिकिम भी ओझल हो गई तो वह भी दाव हाथ में लेकर पहाड़ चढ़ने लगा।

"ईश्वर की संतान ईशू हमें पाप से बचाएँगे। अपने पाप की क्षमा याचना के लिए ईशू से प्रार्थना करें।"

पास्टर की बुलंद आवाज चोङनिकिम के कानों में पड़ी। अचानक ही जैसे वह नींद से जगी हो।अपने पाप ईशू को सुनाने के लोगों की आवाज़ उसे नहीं आई। उसे तो सूली पर चढ़े हुए सिर पर काँटों का मुकुट धारण किए खून से लथपथ ईशू नज़र आया। स्त्री या बच्चों का भी ध्यान न करते हुए जो भी सामने पड़े उन्हें मार डालना, घर-बार को आग लगाकर नष्ट कर देना, खाने के लाले पड़ना, आश्रयहीन होकर भाग खड़े होना, अशुभ देखना-सुनना सब सपना है। उपजाऊपन से रहित पहाड़ के मुहाने पर केवल सब्जी बोकर जीविका चला रहे निरपराध लोगों का जीवन नष्ट हो रहा है। डर के मारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ईश्वर से केवल इतनी विनती है कि खुली आँखों के इस दुःस्वप्न से बचाए।

चर्च से फिर प्रार्थना गीत गूँजने लगा। पहाड़ के चेहरे पर अब भी चाँदनी बिखरी हुई थी। शीतल मंद बयार बहने लगी। पर इससे चोङनिकिम के ताप दग्ध हृदय को ठण्डक नहीं मिल रही थी। समाधि पर गड़ी सूली पर उसका ध्यान फिर चला गया। आड़े खड़ी लकड़ी पर उसे ईशू नज़र आए। पूरे शरीर से खून बह रहा है। काँटों का ताज़ पहना है। उनींदी आँखों से उसे देख रहा है। चोङनिकिम भी उसे देख रही है। यह ईशु नहीं। लुङजाहाओ है। कील गड़ा हाथ लकड़ी से छूटकर बड़ी सी मछली उठाए उसे दिखाने लगा।

"चोङनिकिम, मछली बहुत बड़ी है न !"

"हाँ, बहुत बड़ी है। "

"मकुई और बराक के संगम से पकड़ी है। ..... में बेचूँगा।"

"बेचेंगे नहीं। इपा को खिलाएँगे।"

उठकर मछली लेने को हुई। उससे उठा नहीं गया। देखा तो लुङजाहाओ था ही नहीं। चाँदनी में सूली चुपचाप खड़ी थी। चर्च के प्रार्थना-गीत ऊँचे स्वर में कानों में पड़ने लगे।

"बारिश तो हो ही नहीं रही। "

फटे जाल के टूटे तागों के एक छोर को दूसरे से बाँधते-बाँधते लुङजाहाओ ने मसाले बो रही चोङनिकिम से कहा। दोनों छोटे बच्चों को कपड़े का एक टुकड़ा तक पहनाए बिना खुले आँगन में छोड़ रखा है। वे मिट्टी खोद-खोदकर खेल रहे हैं।

"सही में, नदी कितनी संकरी हो गई है !"

नदी के बीच वाले हिस्से में जो थोड़ा-बहुत पानी बह रहा है, उसे और उसके साथ बराक के दोनों ओर फैले कंकड़-पत्थरों को याद कर चोङनिकिम बडबडाई।

"अब एक भी बाँस नहीं काटूँगा। मोती के आने पर थोड़ा और काट लिया जाएगा। बारिश की आशा में बाँस के लिए दो कनस्तर धान भी दे चुका हूँ। पता नहीं खाने को पूरे पड़ेंगे या नहीं।"

लुङजाहाओ अकेला ही बड़बड़ा रहा था। चोङनिकिम चुप रही। फावड़ा चलाते हुए मसाले बोने में लगी रही। लुङजाहाओ तीन-चार मछली पकड़ने का काँटा हाथ में लिए कंधे पर जाल लटकाए निकला। निकलते हुए अपने बच्चे को, जो एक साल का भी नहीं हुआ था, उठाकर चूमा।

"मकुई के किनारे मछली पकड़ने जा रहा हूँ, खेलते रहना।"

अपने बड़े बेटे के गाल को भी खींचता गया। चोङनिकिम काम से अपना हाथ रोककर हँसते हुए जोर से बोली-

"मछली के नीचे दब कर जान मत खो बैठना !"

लुङजाहाओ भी हँसते हुए न जाने क्याक्या बड़बड़ाते हुए गाँव के रास्ते पर निकल गया। बराक के घाट की ओर।

"बच्चे सोए नहीं अभी?"

चोङनिकिम फिर होश में आई। ससुर थे। चाँदनी में गाँव के स्त्री-पुरुष चर्च से निकलते दिखाई दिए।

"सो गए।"

"तुम भी सो जाओ। कल सुबह जल्दी उठकर लैजाङफाइ के लिए निकलना है।"

चोङनिकिम आश्चर्यचकित रह गई। लैजाङफाइ गाँव का नाम भले ही उसने सुन रखा था, पर कभी गई नहीं थी। उसे केवल इतना पता था कि बहुत दूर बसा एक बड़ा सा गाँव है। पैदल चलो तो तीन दिन से कम नहीं लगते, बस इतना ही जानती है।

"लैजाङफाइ क्यों ?"

बूढ़े हो चले उसके ससुर ने अचानक कोई जवाब नहीं दिया। लगा उसने एक लम्बी निःस्वास छोड़ी। थोड़ी देर बाद धीमे से बोला-

"चर्च में गाँव वालों ने कुछ समय के लिए लैजाङफाइ में बसने का निर्णय लिया है। मुखिया आज ही लैजाङफाइ से लौटा है। कल ही गाँव बदलना होगा।"

चोङनिकिम को सपना सा लगा। लोगों को गाँव बदलने के बारे में गुपचुप बातें करते उसने सुना था, पर कभी ध्यान नहीं दिया था। इतनी जल्दी निर्णय ले लिया जाएगा, इसका विश्वास नहीं था। अचानक बोल पड़ी-

"चाहे सब चले जाएँ, हम नहीं जाएँगे।"

"मन न होने से नहीं चलेगा। हम लोग ही कैसे रह सकते हैं ?"

चोङनिकिम चुप रही। जवाब के बदले आँखों में आँसू उमड़ पड़े। रोने का मन हो आया। आँचल में मुँह ढाँप कर जार-जार रो पड़ी।

"रोज ही लोग मारे जा रहे हैं। गाँव के गाँव इस आग की लपेट में आ रहे हैं। आज-कल में ही इस गाँव पर धावा नहीं बोल देंगे, ऐसा भी नहीं कह सकते। हमारा यह छोटा सा गाँव क्या कर लेगा।"

वह चुप हो गई। छोटे से टीले पर बसा लगभग बीस घरों का गाँव उसकी आँखों के सामने तैर गया। कष्टों में जी रही स्त्रियाँ और बच्चे एक-एक कर दिखने लगे। छोटे-छोटे घर भी। आँसुओं की धारा तेज हो उठी।

"देखो, बामूघाट, तिङखल और सोङपेन गाँव तो पहले ही विस्थापित हो चुके हैं।" अंधेरे घर में घुसते हुए बोले

"लुङजाहाओ के साथ जो हुआ, वैसा दोनों पोतों और तुम्हारे साथ न हो। मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ। बेकार हो गया हूँ। मर भी जाऊँ तो कुछ नहीं।"

चोङनिकिम अंतिम वाक्य सुनते ही सिहर गई। बूढ़े हो चुके इन्होंने भी इस गाँव में भले ही जीवन के कष्टों को ही झेला हो, पर अपने गाँव को, इन पहाड़ियों को और बराक नदी को छोड़कर जाने का मन इनका भी नहीं है,

यह चोङनिकिम भी जानती है। सच ही है, विरलता से बसे इस गाँव में आज-कल में ही क्या घट जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। सारी दुर्घटनाएँ स्वप्न ही हैं। चोङनिकिम को लुङजाहाओ की याद सताने लगी।

चोङनिकिम रात भर सो न सकी। लुङजाहाओ बराक और मकुई नदी के संगम पर मछली पकड़ने गया था। इतनी देर हो जाने पर भी अभी तक नहीं लौटा। सोचा, शाम घिर आने पर इरंग नदी के डेल्टा की धारा की ओर चला गया होगा। कल-परसों बड़ी मछली पकड़ने की खबर सुनी थी। पर देर रात तक नहीं लौटा, तो उसे चिंता होने लगी। सोचने लगी शायद बाबूघाट पर अपने दोस्तों के साथ ठहर गया हो। केवल सोच रही थी, पर यकीन नहीं था। एक दिन भी ऐसा नहीं गया जब लुङजाहाओ घर न लौटा हो। चाहे कितनी देर हो जाए वह लौटेगा जरूर, यही सोचती रही। उसका ससुर भी नहीं सो पा रहा है, यह चोङनिकिम जानती है। गाँव में कहीं भी कोई कुत्ता भौंकता, तो सुनते ही बाहर निकल जाता। लुङजाहाओ को न पाकर बाँस की खपच्चियों के मचान पर उसके चढ़ने की आवाज़ वह सुनती। चोङनिकिम अपने बच्चों को कसकर बाहों में कसे एक पल के लिए भी बिना पलक झपकाए, कानों को खड़ा किए पड़ी रही। काफी देर तक नहीं लौटा तो तरह-तरह की शंकाएँ मन में उठने लगीं। सोचने लगी, कहीं मोती के पास जीरीघाट तो नहीं चला गया। पर मन इसे मानने को तैयार नहीं हुआ। बादल बरस गया तो लुङजाहाओ के नहीं जाने पर भी मोती जरूर आएगा। बाँस का मोल दे जाएगा। फिर यहाँ से ऊँचे ज्वार के साथ बहते बराक के तेज बहाव में हाथ में एक लम्बा सा बाँस लेकर खेता हुआ चला जाएगा। उसने मन ही मन तय किया, लुङजाहाओ मोती के पास नहीं जाएगा। वह आगे कुछ सोच ही नहीं पा रही थी। देर से लौटेगा, इसके सिवा कुछ नहीं, बस|

सुबह होने तक भी वह नहीं लौटा, तो चोङनिकिम के होश उड़ने लगे। कभी बरामदे में, कभी बीच रास्ते में और कभी आँगन में खड़ी की खड़ी रह जाती। गाँव के लड़के जब खोजने निकले, तब भी इसका पता तक उसे नहीं चला। उसने किसी से बात तक नहीं की थी।

दोपहर होते-होते पर्वत श्रृंखला पर सूरज अपना पूरा ताप उडेलने लगा। चोङनिकिम ने सुबह से न कुछ खाया न पिया। कभी किसी कोने पर बैठ जाती, तो कभी किसी कोने पर खड़ी हो जाती। अंततः गाँव के लड़के बराक के घाट की ओर से चढ़ते दिखाई दिए। बाँस की डंडाडोली सी बनाकर कुछ उठाए चले आ रहे थे। वे उन्हीं के घर की ओर आ रहे थे। आँगन के एक छोर पर उस डंडाडोली को उतार दिया गया। अचानक ही चोङनिकिम की कंपकपी छूट गई। वह भय से त्रस्त हो उठी।

इपु, मकुई पर एक पेड़ को सूली बनाकर टाँग दिया था।

एक लड़के ने ढके हुए कपड़े को उठा कर दिखाते हुए उसके ससुर से कहा। चोङनिकिम को खून से लथपथ लुङजाहाओ का शरीर दिखाई दिया। डंडाडोली के पास रखे जाल में एक बड़ी सी मछली फँसी हुई थी। उसने दाग भरी खून से लथपथ निर्जीव देह को पास जाकर ध्यान से देखा। अगले ही पल जोर से चीख उठी और पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी।

बरामदे पर अब चाँदनी नहीं पड़ रही थी। छज्जे का साया आँगन के छोर पर पहुँच गया था। समाधि पर गाड़ी लकड़ी साफ-साफ दिखने लगी थी। लगा, लुङजाहाओ ईशू की तरह सूली पर चढ़े हुए कह रहा है

"देख चोङनि मछली बड़ी है न !"

"मुझे मछली नहीं चाहिए।"

वह अचानक ही बोल गई। फिर अपने दोनों बच्चों को बाहों में कसकर रोने लगी।

अगले दिन चोङनिकिम ने सम में सामान रखा और अपने छोटे बच्चे को उसमें बैठा दिया। बड़े बच्चे को ससुर ने गोद में उठाया और पंक्तिबद्ध बढ़ते गाँव वालों के पीछे-पीछे चला गया। चोङनिकिम जल्दी नहीं उठी। समाधि के निकट जाकर थोड़ी देर खड़ी हो गई। धीमे से बोली-

"मैं फिर तुम्हारे पास आऊँगी। इसी गाँव में रहूँगी।"

आँखों से आँसुओं की लड़ियाँ अबाध बहने लगीं। बराक के किनारे रह गया बाँसों का गट्ठर आँखों के सामने तैर गया। बादल तो बरसा ही नहीं। मन को शीतल करने वाला। पहाड़ियों को शस्यश्यामल करने वाला। पर पानी बरस भी गया तो अब क्या फायदा!

"चलो, देर हो जाएगी।"

उसका ससुर था। लौटकर उससे कह रह था। सीधी चढ़ाई वाली पहाडी पगडण्डी पर एक के पीछे एक पंक्तिबद्ध गाँव वाले लैजाङफाई की ओर बढ़ते दिखाई दिए। चोङनिकिम भी उस अनजान जगह के लिए बोझिल कदमों के साथ धीरे-धीरे बढ़ने लगी।

***

1. पाम- पहाड़ के मुहाने पर पेड़-पौधे और झाड़-झंखाड़ों को जलाकर प्राप्त जमीन पर की जाने वाली खेती।
2. मयाङ- मणिपुर के मूल निवासियों के अलावा बाहर से आने वाले लोग।
3. सम- बाँस तथा बेंत से बनी गहरी टोकरी, जिसका उपयोग पहाड़ों पर सामान ढोने के लिए किया जाता है।

अनुवादक के नोटस

'आधा आकाश सिर पर'

(श्रीधर पवार की कविताएं)

गोपाल नायडू

रोचक है कमाठीपुरा के बनने और फैलने की दास्तान। 1875 में आंध्र से कमाथी मजूरों ने समुद्र के उफनते ज्वार के बीच डेरा डाला। कमाठीपुरा मुंबई की सबसे पुरानी जगह और एशिया का देह व्यापार का सबसे बड़ा केंद्र है। इसे लालबाजार के नाम से भी जाना जाता है। उन्नीसवीं सदी के अंत में ब्रितानी शासकों ने अपने सैनिकों के आराम और ऐयाशी के लिए इसे बसाया था। अंग्रेजों ने मुंबई के अलावा कोलकता में भी आंशिक तौर पर वेश्यावृति को फैलाया। ब्रितानी शासकों ने देह व्यापार के लिए एशिया और पूर्वी अफ्रीका के साथ अमेरिका के देह बाजारों के लिए दलालों की भर्ती की। इस तरह ये शासक दुनिया की देह के खिलाड़ी बन गए। मुंबई के लालबाज़ार को टोलरेटेड क्षेत्र के रूप में जाना जाने लगा। इसी क्रम में कमाठीपुरा में जर्मन-ज्युइश क्लब भी उपलब्ध है। इस क्लब में सौ से अधिक देह दासों के खरीदार थे। इस संदर्भ में विस्तार से सन् 1893 में मि.सेन्टिनल ने लिखा, 'देह दासों के खरीदार ग्रांट रोड, फाॅकलैंड सड़क और उसके पीछे शुक्ला मार्ग के घर में रात को इकट्ठा होते थे, जिसे ज्युइश क्लब के नाम से जाना जाता था, जहाँ वे ऐयाशी करते और देह बाजार के लिए दासों की खरीदारी की योजना बनाते. प्रत्येक रात के तीन बजे, देह बाजार से कमाई गई राशि वहाँ के दासों से ले ली जाती थी। ' मुंबई के इस देह के बाड़े में यूरोप की वेश्याएॅं थीं, जिन्हें तीन भागों में विभक्त किया गया है। पहला, हिस्सा, सफेद देह का था। दूसरे और तीसरे दर्जे के चकलाघर शुक्लाजी मार्ग पर थे। यहाँ गोरी चमड़ी की वेश्याएं थीं, इसलिए इस शुक्ला मार्ग को सफेद गली कहा जाता है। यहाँ का प्रत्येक घर देह अड्डा है, नरक का खुला दरवाजा है. यह सब 1893 में सेन्टिनल ने लिखा था।

गवाह है कमाठीपुरा, कपड़ा मिल और बीड़ी मजदूर और देह कामगारों के संघर्ष का, उनके दलालों को और ग्राहकों के संघर्ष का। इस इलाके में पनपते दर्द का, बीमारियों से होती मौतों का, एक पूरी उजड़ती हुई दुनिया का। अंग्रेजों के खिलाफ - नाविक विद्रोह का, लालबाग के गणेश उत्सव का, देश के चारों ओर से आए हुए लोगों की नग्न आँखों का। कमाठीपुरा के दुःख उत्पीड़न पर उकेरे गए शब्दों और चित्रों का। वहीं, 1910 में यहाँ आकर बस गए मराठी के अग्रणी शायर पट्ठे बापूराव कुलकर्णी की लावणी का इन्होने यहाँ की हालत पर लावणी, तमाशे, पोवाड़े आदि लिखे और इन्हें स्वर देनेवाली खूबसूरत पावला नागचंद बाई की आवाज कमाठीपुरा की सफेद गली से लेकर लालबाजार की गलियों, खिड़कियों पर टकराती रहती थी। उसकी अद्भुत आवाज सिर्फ रसूखदार ही सुन पाते, आम लोग एक आना

चुका कर उसके दर्शन कर ही धन्य हो लेते। बापूराव पट्टे द्वारा 1910 में लिखी गई मुंबई की लावणी आज भी सुनी जाती है। सआदत हसन मंटो की लिखी कहानियाँ, 'हतक और तलवार,' 'सौ मोमबत्तियाँ का बल्ब,' 'मुहम्मद भाई' इत्यादि इस इलाके की वास्तविक सूरत को सामने रखती हैं। पट्ठेराव बापू को गुरु मानने वाले मराठी कवि नामदेव ढसाल का 'गोलपीठा' काव्य संग्रह भारतीय साहित्य में एक मील का पत्थर है। इसी क्रम में श्रीधर पवार का काव्य संकलन 'आधा आकाश सिर पर' कमाठीपुरा के बदले हुए परिवेश को एक नई बानगी में पिरोता है।

इस नरक के खुले शहर में, ठीक 2010 में, पट्ठे बापूराव के सौ बरस बाद की है। श्रीधर पवार की कविताएँ। कमाठीपुरा के सफेद गली से दो सदी पहले निकली सफेद देह आज महानगरों, गाँव कस्बों की काली देहों में समाहित है। औपनिवेशिक शासन तो खत्म हुआ, लेकिन उसके चिन्हों को अभिव्यक्त करती है। पवार की कविता 'क्या करोगे देह को नकार के'। गोरे लोग की ऐयाशी चारागाह के आर्थिक शोषण, उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक तस्वीर को पवार अभिव्यक्त करते हैं,

'इस तटस्थ त्रिकोण पर
तेरे होने या न होने के
अस्तित्व पर
व्यवस्था खींच देती है एक क्रॉस
निर्मम जानवर के लिए
छोड़ दी गई जमीन
बन जाती है अब तुम्हारा आश्रयस्थल'

इस जमीन पर जानवर चर रहे हैं इसलिए कमाठीपुरा में बैठनेवाली महिला जानवर से भिन्न नहीं है, तभी तो वे कहते हैं ;

'स्त्री देह को
पालतू पशु बनाने वाले
निर्मम पुरुषुक्त का करते हैं विस्तार
. . .'

पुरुषुक्त में वर्ण की भी एक व्यवस्था है और साथ ही लिंग भाव भी हैं। इस पुरुषुक्त में ठीक औपनिवेशिक रंग है, सिवाय रंग के कुछ नहीं होता। एक बार पालतू पशु बन गए कि इसमें से उभरता है एक अम्यूजमेंट पार्क, जैसा कि पवार कहते हैं;

'दिल की
छोटी-छोटी स्पदंनें
तेरे अम्यूजमेंट पार्क में
सर्फिंग करते हैं लड़के
पोर्नो साइट में . . .'

इस तरह बाजारवाद में देह केवल देह ही है। यहाँ के भोग विलास में परमोच्च क्षण को नकारा ही जाता है। बाजारवाद में इन क्षणों की उपस्थिति संभव नहीं है, यहाँ आनंद और खरीदने में फर्क होता ही नहीं। इस अर्थ में बाजारवाद में स्त्रियों को कुछ मिलता नहीं, सिवाय ग्राहक के, रास्ता है इतिहास बाजारवाद। इस इतिहास में हम सभी पिसते चले जाते हैं। इस इतिहास की दखल ली जानी चाहिए। अक्सर ऐसा होता नहीं, क्योंकि इतिहास गूँगा, बहरा, अंधा और क्रूर होता है। और इसी तरह के इतिहास का गौरव गान होता रहता है। शायद इसलिए कि इसमें अधिक वजनदार शब्द होते हैं। ये इतिहास व्यक्ति निरपेक्ष हैं। भोग की वस्तु से उसका कोई लेना देना नहीं है। वह तो केवल मुनाफे की तानाशाही है। इस क्रम में पवार और नामदेव ढसाल के काव्य-संसार को जोड़कर देखा जा सकता है। इन दोनों के काव्य-संसार कमाठीपुरा में उपलब्ध और स्वीकृत इतिहास की धारा को नकारते हैं।

मराठी कविता की इतिहास धारा में ढसाल का काव्य संग्रह 'गोलपीठा' मराठी में लिखी गई पहले की कविताओं को छोड़कर आगे बढ़ती है, उस वक्त गोलपीठा इस अर्थ में अकेला काव्य संग्रह था, लेकिन बदलते समय के साथ गोलपीठा की सूरत पर पवार की कविताओं का स्वर, मौजूदा जग के स्वीकृत इतिहास को नकारता है, मसलन दो सदी पहले जो साम्राज्यवाद था, उसे और उसके द्वारा छोड़ी गई कुसंस्कृति को नकारते हुए कवि पवार इन शब्दों में कहता है;

'तुझे चांदनी बनाकर
दो सदियों के बीच
टांग दिया गया है
एक सदी घुट-घुट कर
छितर गई तेरे पैरों पर
टूट-टूटकर. . . . '

यह कवि सदी का उत्साहपूर्वक स्वागत नहीं करता। इन पंक्तियों का अर्थ इंसानियत को नष्ट करती प्रवृतियों से ताल्लुक रखता है। प्रश्न वैश्वीकरण को स्थापित करनेवाले नव-उदारवादियों के जन्मोत्सव का नहीं है, इसलिए कवि कहता है ;

'अर्धरात्रि के अंतिम क्षणों में
उग आई नई सदी
ग्तिहीन.....'

यह हालात इन वेश्याओं के साथ-साथ हम सभी का है. ढसाल की कविता 'गोलपीठा' अपने समय की त्रासदी, आक्रोश और भोगवाद की प्रवृति पर केन्द्रित है, लेकिन पवार की इस संदर्भ में अभिव्यक्त कविताओं में, मृत्युभोग की चिंता झलकती है। मराठी के प्रख्यात चिंतक समीक्षक गो.पु. देशपांडे पवार की इन कविताओं के बारे में अपने एक लेख में उल्लेख करते हैं, 'पवार की कविताओं का एकमात्र संसार है, निस्संदेह इस तरह की अकेली कविताएं है, भोगवाद में इससे अलग और क्या अभिव्यक्ति हो सकती है. यह अकेली है, लेकिन बदलते परिवेश की पूर्ण अभिव्यक्ति है, कमाठीपुरा के माध्यम से। क्या मराठी प्रस्थापित कविता में और क्या विद्रोही कविता में नव-उदारवाद के चिन्ह नजर आते हैं?'

निस्संदेह पवार की कविता में यह उद्गार इसकी पूर्ति करते हैं -

'नव-उदारवाद की हेकड़ी
सत्ता पिपासुओं की घूसखोरी के आगे

तू कितने दिन जी सकेगा कमाठीपुरा.....'

श्रीधर पवार पेशे से डॉक्टर हैं, लेकिन कविताएँ, लेख, वे लंबे अर्से से लिख रहे हैं. साहित्य, राजनीतिक के अच्छे पाठक और गहरी समझ रखते हैं. वृहनमुंबई नगर पालिका में डॉक्टर हैं, इसी क्रम में कमाठीपुरा के विंटेज हेल्थ सेंटर में उनकी नियुक्ति हुई उन्हें लगातार कमाठीपुरा की देह व्यापार से जुड़ी महिलाओं की चिकित्सा करनी पड़ती थी, पेशे से उनका स्टेथेस्कोप वेश्याओं की बीमारी के निदान की खोज करता रहता और उस संदर्भ में उनकी कलम भी चलती रहती कि इन वेश्याओं के लिए आगे क्या किया जा सकता है। श्रीधर पवार के शब्दों में, 'वेश्याओं के दिल के धड़कने का क्रम बरसों तक जारी रहा, फिर वह मेडिकल साइंस के लेख हों, सामाजिक लेख या फिर इन कविताओं में सहज ही देखा जा सकता है। उनकी तीमारदारी करते-करते डाॅक्टर श्रीधर के भाव का संदर्भ एकदम एक नए अर्थ में पेशे के भाव से अलग रूप में खड़ा होता है। उन्हें कमाठीपुरा का यह ज्ञान पुस्तक से नहीं मिला, उनकी संवेदनशीलता की गहराई में एक लंबे समय तक माक्र्सवादी आंदोलन का अनुभव और समझ

इन कविताओं में दर्ज होती नजर आती है। उनका कमाठीपुरा पर कविता का सिलसिला जारी रहा। कमाठीपुरा पर उन्होंने पचास-साठ कविताएँ लिखी. लेकिन पेशे की जिम्मेंदारी के चलते ये कविताएँ इधर-उधर बिखर गई. इसे लापरवाही ही कहा जा सकता है. खैर, जो उपलब्ध हुई उसका हिंदी अनुवाद इस उम्मीद के साथ कि ढसाल द्वारा छोड़े गए कमाठीपुरा के बाद के हालात इनके कविताओं में साकार हो सकें, यह मराठी के ढसाल से लेकर तमाम बड़े कवियों ने परस्पर बैठकों में अभिव्यक्त किया है।

कवि की संवेदनशीलता के साथ विचार और दृष्टि इन कविताओं में उभरती है, इसका संसार देह विक्रय करनेवाली महिलाएँ, उनके भड़वे, उनके कमरों मैनेजरिन बाई, पुराने समय के देहातों के बाहर अति शूद्रों के गांव तक सीमित नहीं हैं। इस देह व्यापार के सामाजिक धर्म की मान्यता के विस्तार को, वैश्वीकरण के दौर में बाजार के फैलते कदम की ओर इशारा करती हैं। इन कविताओं में मात्र इस तरह का आक्रोश नहीं है कि इन देह बाजार के जीवन का भाव विश्व से न निहारो, उनके लिए चार आँसू बहाओ, बल्कि इन देह बेचनेवालों के सच्चा सखा भाव के साथ खड़ी हैं ये कविताएँ;

'चखने के लिए अंगूर की खेती
तैरने के लिए नीली नदियाँ
हर आइने में
स्वाभिमान का साफ-सुथरा प्रतिबिंब हो
यौन संवेदना से हटकर
सखी भाव
इंद्रियों के कुएं के तल में
विहंगम सत्य बोध
और कुछ नहीं
सिर्फ हो
आधा आस्मां सिर पर.'

अनुवादक अनुभव

नाट्यानुवाद - नाट्य रूपांतरण प्रक्रिया - मेरे अनुभव

सतीश पावडे

रंगमंच से पहली बार वर्धा में सक्रिय रूप से सन 1972 में जुड़ा। किंतु इसका रुझान तो पुलगाव में 'पुलगाव कॉटन मिल' से मेरे बड़े धर्मभ्राता श्री गोविंद चरखा द्वारा अभिनीत नाटकों के वजह से 1980 के करीब ही हो गया था। वर्धा में जब रंगमंच से सक्रिय रूप से जुड़ा तो पहला उद्देश्य तो सामाजिक ही था, इसलिए नुक्कड़ नाटक पहली पसंद और प्राथमिकता भी था। रंगमंच का तात्पर्य मेरे लिए केवल गाँव-गाँव, चौराहे, स्कूल के मैदान अथवा किसी कार्यालय के प्रांगण में नुक्कड़ नाटकों की प्रस्तुति मात्र थी। पहली बार सही मायने में रंगमंचीय नाटक करने का अवसर मुझे 1983 में गोविंदराम सेकसरीया कॉमर्स कॉलेज के स्नेह सम्मेलन में मिला, नाटक था 'स्वयंवर', जिसके निर्देशक थे हमारे वरिष्ठ छात्रनेता राजेंद्र शर्मा। एक अच्छा अनुभव रहा। मेरी भूमिका काफी सराही गई, और हौसला बढा। 1984 में वर्तमान प्राचार्य डॉ. अब्दुल बारी के निर्देशन में 'कावळ्यांची शाळा 'नाटक में भूमिका निभाई। इस बार भी वाह वाही मिली।

दो वर्षो में दो नाटक, तकरीबन 30-40 नुक्कड़ नाटकों का मंचन। एक अच्छी शुरुआत थी। किंतु अंदरूनी संतुष्टि नहीं थी, लगता स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए नाटक लिखना आवश्यक है। तब तक कविताएँ लिखना, अखबारों में पत्र, आलेख लिखना शुरू हो गया था। कुछ अच्छा- बुरा लिखने की क्षमता है, यह आभास हो चुका था। इस वर्ष नाटक लिखने का मन बना लिया। 'वेड्यांची इंडस्ट्री' मेरा लिखा और निर्देशित पहला नाटक था, जिसका पहला मंचन 1985 में गोविंदराम सेकसरीया कॉमर्स कॉलेज के स्नेह सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया। इस तरह नुक्कड़ नाटक का संगठन, प्रबंधन, अभिनय के साथ रंगमंचीय नाटक में अभिनय, नाटक का लेखन, निर्देशन का प्रारंभ हो चुका था। 1985 में ही नौकरी के सिलसिले में औरंगाबाद जाना पड़ा। 1988 तक दैनिक लोकमत में बतौर सहायक संपादक काम किया। इसी समय प्रसिद्ध नाटककार डॉ. अजित दलवी, प्रशांत दलवी, रंगमंच तथा फिल्म के निर्देशक चंद्रकांत कुलकर्णी, अभिनेत्री वर्षा उसंगावकर, प्रतीक्षा लोणकर, शुभांगी मोहन गोखले, महाराष्ट्र सरकार के सांस्कृतिक निदेशक अजय अंबेकर आदि लोगों के साथ, उनकी जिगीषा संस्था के साथ काम करने का मौका मिला। साथ ही अनाधिकृत रूप से डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के

> मूलतः जब मैंने अपने आप को रंगमंच के व्यवहार में खोजने की कोशिश की, तब –तब यह तो निश्चित हो जाता है कि, मेरी अभिव्यक्ति का माध्यम नाट्यकला- रंगमंच के अलावा दूसरी कोई कला नहीं हो सकती है। अभिनय, प्रबंधन, संगठण, लेखन, निर्देशन, अनुवाद, रूपांतरण, संपादन के साथ समय के अनुसार मंच विन्यास, प्रकाश विन्यास संगीत संयोजन, रंग-वस्त्र विन्यास आदि रंगमंच की सभी इकाई के साथ काम किया। शौकिया रंगमंच पर यह सब करना पडता है।

नाट्यकला विभाग की कक्षाओं में बैठने का अवसर मिला, और बहुत कुछ सिखने का भी।

1988 में नागपुर वापसी के साथ रंगमंच की वास्तविक यात्रा शुरू हुई। 'दलित रंगभूमि' के साथ विभिन्न नाटक में अभिनय, नुक्कड़ नाटकों में अभिनय और संगठनात्मक कार्य, विभिन्न प्रतियोगिताओं में सहभागिता, और विभिन्न आंदोलानों में सहभागिता साथ ही पत्रकारिता की नौकरी भी चलती रही। रंगमंच की यात्रा में ऐसे कई पड़ाव आ रहे थे। 1989 में रंगमंच की विधिवत शिक्षा हेतु नागपुर विश्वविद्यालय के ललित कला विभाग में दाखिला लिया। स्तनिस्लावस्की, ग्रोतोवास्की, बर्तोल्त ब्रेख्त, अन्तोनीन आर्तो, मेंयरहोल्ड जैसे अंतरराष्ट्रीय नाट्यविदों के बारे में जाना। अल्बेर कामू, ज्यां पॉल सार्त्र, ऑगस्टिन स्ट्रीन्दबर्ग, लुईजी पिरांदेल्लो, सामुअल बेकेट, आईनेस्को आदि विदेशी लेखकों के साथ कालिदास, शूद्रक, भास आदि संस्कृत तथा प्रेमचंद, विजय तेंडूलकर, धर्मवीर भारती, गिरीश कर्नाड, मोहन राकेश, वि. वा. शिरवाडकर, चिं.त्र्यं.खानोलकर, महेश एलकुंचवार, सतीश आलेकर आदि लेखको को पढने, जानने और समझने का अवसर मिला। आषाढ़ का एक दिन, तुगलक, महंत, गणशत्रू जैसे नाटकों को निर्देशन और उसमें अभिनय का मौका मिला। अब तक नाटक के बारे में आवश्यक समझ आ रही थी। पठन पाठन का उपयोग भी हो रहा था। इसी बीच नागपूर आकाशवाणी के लिए नाट्यात्मक संवाद से युक्त नाटकों के अंश, लघु नाटक, नभो नाटक लिखने का अनुभव मिला। 'वादळ' यह एक घंटे का में पहला नाटक था जो 1988 में आकाशवाणी पर प्रसारित किया गया। नागपुर दूरदर्शन के लिये 1991 में प्रेमचंद की 9 कथाओं पर एक लघु शृंखला तैयार करने का कार्य तत्कालीन स्टेशन डायरेक्टर मीना वैष्णवी द्वारा मुझे सौपा गया। अनुवाद, नाट्य रुपांतर तथा निर्देशन का अमूल्य अवसर मिला। यह मेरे लिए पहला मौका था, अनुवाद तथा रूपांतरण कार्य को नज़दीक से जानने का।

असल में इसके पूर्व भारत के कई प्रसिद्ध शायरों की शायरी का संपादन तथा रूपांतरण मैंने 'मेरा शहर मुझे वापस लौटा दो', तथा 'मेरी आवाज सुनो' जैसे एकल नाट्य मंचन हेतु किया। जिसके सैकड़ों मंचन किए गए। पहली बार 'आषाढ़ का एक दिन', लहरों के राजहंस' (मोहन राकेश), 'द क्रॉस पर्पस', 'द जस्ट' (अल्बेर कामू) 'द फादर' (आगस्तिंद स्त्रीन्द्बर्ग) आदि नाटकों का अनुवाद किया था। वैसे इसके पूर्व प्रेमचंद की, 'खुचड', 'दरोगाजी', 'सती', 'प्रेम का उदय' आदि कहानियों पर दूरदर्शन हेतु अनुवाद और नाट्य रूपांतरण का काम भी किया। इसी अनुभव के आधार पर अब तक 'नत्था खड़ा बाजार में' (श्रीकांत सर्राफ), 'एक बार फिर गोदो' (भगवान हिरे), 'हे राम' (प्रेमानंद गज्वी), 'दर्शन' (श्याम मनोहर), 'वह गंदी गाली' (मैक्सिम गोर्की), 'द स्लेव' (लेरोये जोन्स), 'द म्युलेटो' (लेन्ग्स्टोन हुजेस), 'रेझिन इन द सन' (लॉरेन्स हन्स्बरी) 'एन इंस्पेक्टर्स काल' (जे. बी. प्रिस्टले), और 'वे आगे निकल गए' (मकरंद साठे), 'द साईटलेस'(मोरीस मेंतारलींक) आदि नाट्यानुवाद तथा 'उद्याचा संसार' –प्र.के. अत्रे (संपादित), 'मृच्छकटीकम' –

शूद्रक (संपादित), 'ती येते आणिक जाते'(कमल देसाई) (रूपांतरण), का कार्य करने का अनुभव प्राप्त हुआ।

मूलतः जब मैंने अपने आप को रंगमंच के व्यवहार में खोजने की कोशिश की, तब –तब यह तो निश्चित हो जाता है कि, मेरी अभिव्यक्ति का माध्यम नाट्यकला-रंगमंच के अलावा दूसरी कोई कला नहीं हो सकती है। अभिनय, प्रबंधन, संगठण, लेखन, निर्देशन, अनुवाद, रूपांतरण, संपादन के साथ समय के अनुसार मंच विन्यास, प्रकाश विन्यास संगीत संयोजन, रंग-वस्त्र विन्यास आदि रंगमंच की सभी इकाई के साथ काम किया। शौकिया रंगमंच पर यह सब करना पडता है। पर अंततः निर्देशन ही मेरा असल क्षेत्र है। वही मेरे अंदर की आवाज़ है यह जब सिध्द हो गया, तब कई सालो बाद यह खोज पुरी हो गई। अब नाटकों का अनुवाद, रूपांतरण, संपादन अथवा पुनरलेखन निर्देशक के रूप में होता है। अब कोई भी कविता, कहानी, उपन्यास, आलेख, अथवा अन्य भाषी नाटक पहले मेरे अंदर छिपा निर्देशक पढ़ता है। अगर इस निर्देशक को यह कोई भी विधा प्रभावित कर पाई तो उसकी रंगमंचीय यात्रा की प्रक्रिया शुरू होती है। और फिर यह अनुवाद, रुपांतरण कार्य दृश्यरूप लेना प्रारंभ हो जाता है। आज जब मै अपने अनूदित नाटक पढ़ता हूँ तो मुझे साफ़ नजर आता है कि अनुवाद – रुपांतर करते समय मेरे सामने रंगमंच होता है। इस रंगमंच पर मूल नाटक अपना परुवर्तित रूप धारण करता है। किसी एक अनुवाद या रूपांतरण का रंग मंचीय होना एक अच्छे मंचन की आवश्यकता होती है।

'आषाढ़ का एक दिन' साहित्य और नाटक के रूप में एक महान नाटक है। हिंदी से मराठी अनुवाद करते समय उसकी भाषा और नाट्य भाषा का व्याकरण, उसमें छिपे बिंब – प्रतिबिंब, उसकी काव्यात्मकता को अक्षुन्न रखना, काल और अवकाश (टाईम एंड स्पेस) को सहेज कर रखना, चरित्र और देशकाल को स्थापित करना अनुवाद में सबसे बडी चुनौती थी। दर्शक और आलोचक की प्रतिक्रियाओं के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि मराठी भाषा में 'आषाढ़ ' को मुल रूप में बनाये रखने में अन्ततः मैं सफल हुआ। यही अनुभव "लहरों के राजहंस' के साथ भी घटित हुए। मुझे लगता है किसी भी कृति का अनुवाद बगैर उसमें मानसिक और भावनात्मक रूप से सम्मिलित हुए सफल नहीं हो सकता। आषाढ और लहरों के राजहंस यह दोनों नाटक मेरे साँसों में और रग-रग में बसे हैं। लहरो के राजहंस यह नाटक तो आषाढ से भी कठिन है। यह बहुआयामी, बहुकेंद्रित नाटक लगता है। पर असल में 'अत्तदीप' पर यह नाटक केंद्रित है। इसे अनुवाद में पकड़ना कठिन था। 'बिटवीन द लाईन्स' को समझना और उसको शब्दों में कायम करना चुनौती भरा कार्य था। मैं अनुवाद से एक निर्देशक के रूप में संतुष्ट हूँ।

मोहन राकेश और अल्बेयर कामू मेरे पसंदीदा नाटककार हैं। 'कालिगुला', 'द जस्ट', 'द क्रॉस पर्पस' यह सब मेरे पसंदीदा नाटक है। इसमें से मुझे द जस्ट, द क्रॉस पर्पस का अनुवाद करने का अवसर मिला है। 'क्रॉस पर्पस' नाटक अस्तित्ववादी त्रासदी है। अंजाने में माँ तथा बहन

द्वारा अपने ही पुत्र और भाई की हत्या हो कर देना, इस नाटक का केंद्रबिंदु है। किंतु इसके बाद जो अस्तित्ववादी विचार नाट्यरूप लेकर आता है वह चरमोत्कर्ष है। इसे अनुवाद से उतना ही प्रभावी बनाये रखना आवश्यक है। और बगैर नाट्यदृष्टि के यह संभव नहीं हो सकता था। अब नाटक के अनुवाद और रूपांतर का जितना भी अनुभव प्राप्त हुआ है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस प्रक्रिया में मुल नाटक की रूह तथा लेखक के कथ्य के साथ उसकी प्रभावशीलता कायम रहनी चाहिए। हर नाटक के पीछे नाटककार कि प्रेरणा, उद्देश्य और विचार होता है। इसके अलावा कुछ नाटककार रंगमंचीय दृष्टि से आग्रही होते। इन दोनों स्थितियों में अच्छे अनुवाद या रूपांतरण की जगह बनाना कुशलता का कार्य होता है। लेकिन श्याम मनोहर (दर्शन), भगवान हिरे (एक बार फिर गोदो), प्रेमानंद गज्वी (हे राम), कमळ देसाई (ती येते आणिक जाते), मकरंद साठे (और वे आगे निकल गए) आदि लेखकों ने मेरी क्षमता पर विश्वास रखा और अनुवाद को सराहा भी।

इन सभी नाटकों के पुनर्निर्माण का सृजनशील अवसर मुझे मैक्सिम गोर्की के नाटक 'द लोवर डेप्थ' से मिला। 115 साल पहले लिखा यह नाटक आज भी प्रासंगिक है। आज तक इस नाटक पर विश्व में छह फिल्में भी बन चुकी है। इन निर्देशकों में एक नाम अकीरा कुरोसावा (विश्व प्रसिद्ध सिनेमा 'रासोमन' के निर्देशक) भी है। भारत में चेतन आनंद इस पर 'नीचा नगर' नामक फिल्म का निर्माण कर चुके हैं जिसे 'कान्स' तथा 'चेरिपब्लिक' का एवार्ड भी मिला है। मुलतः इस नाटक का मराठी भाषानुवाद डॉ. मेंघा पानसरे ने 'तळघर' इस नाम से किया है। इस नाटक कि प्रासंगिकता को ध्यान में रखकर मैंने इसका भारतीय परिवेश में रूपांतरण और फिर हिंदी अनुवाद करने का निर्णय लिया। उस समय यह नाटक पुंजीवाद के खिलाफ लिखा गया था। किंतु मैं अब इसे भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में करना चाहता था। जब यह नाटक भारतीय देशकाल और परिवेश में प्रस्तुत करना है तो सभी राज्यों से प्रतिनिधिक चरित्र आना जरुरी था। मूल रशियन चरित्रों के स्थान पर बिहारी, मराठी, हैदराबादी, गोवन, कोल्हापुरी, बंबईया, भोजपुरी, बंगाली, ओड़िया, भाषिक चरीत्रों का निर्माण किया. उसके साथ उनकी भाषा, उच्चारण, शैली, सोच, संवाद आदि सभी इकाई को भाषिक विशेषताओं के साथ प्रस्तुत किया। रूपांतरण मे आपको यह सर्जनात्मक आज़ादी मिल सकती है, जिसका उपयोग मैंने इस नाटक में किया।

आज तक की मेरी रंगयात्रा में जितने भी नाटकों का मैंने अनुवाद अथवा रूपांतरण किया, उसके आधार पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि इन सभी नाटकों मे छिपी नाट्यात्मकता ने मुझे पहले प्रभावित किया। यही प्रभाव निर्देशन कार्य में सहायक सिद्ध हुआ। आज भी कई नाटक, फिल्म, कविताएँ, आलेख कहानियाँ चुनौती के साथ मेरे समक्ष खड़े हैं। जिनका मैं अनुवाद, रूपांतरण, संपादन कर मंचन करना चाहता हूँ। जिसमें मंटो की कहानियाँ, साहिर की नज़्म, गजलें, अकिरा कुरोसावा कि फिल्म 'राशोमन',सिमोन द बोउआ की आत्मकथा आदि कालजयी कृतियाँ है।

Acceptance Speech on the occasion of Sahitya Akademi Translation Prizes and Bhasha Samman Special Function (19.8.02)

Chaman Lal

While gratefully and gracefully accepting Sahitya Akademi Translation Prize for year 2001 on the book' Samay 0 Bahi Samay', I shall like to share with you that why I chose to translate Paash's poetry in Hindi and how I completed this task. As you know 'Samay O' Bhai Samay' is Hindi translation of Paash's selected poetry. By the narration of this experience, my perception about the significance of translation and the problems of translation activity shall also come to the fore.

By way of background, I shall like to share with you that my earliest translation activity started in early seventies. It was sometimes in 1967 end or 1968 that I started translating Manmath Nath Gupt's Hindi book' Bharat Ke Krantikari ' in my mother tongue Pwljabi. This book was published by Hind Pocket Books in popular paperback edition and it contained sketches of eighteen revolutionary martyrs of freedom movement, which included martyrs Bhagat Singh and Chandarshekhar Azad and like. I used to read lot of creative literature as well as books on freedom movement, particularly on revolutionaries of the country in Hindi and Panjabi languages. I was teaching Hindi in a High School at that time and had good Command over both Hindi and Panjabi languages. This first translation activity I performed , had an emotional impulse of paying tribute to the great revolutionary martyrs of the country in my own way. By translating these sketches in Punjabi, I wished that people of my state and surroundings should know about these martyrs. Technically, these translations were like first exercise in translation, but all these translated articles were published in very reputed Panjabi journals like' Aarsee', 'Preetlari' and in the periodical of ' Desh Bhagat Yaadgar Committee' - ' Desh Bhagat 'Yaadan' (Memories of Patriots) . Unfortunately, today neither I have got the copy of that book in Hindi, nor the complete file of those translated articles in Punjabi', of course, a few of those are still with me.

So the first thing in my own activity in translation and which is part of my perception of translation or any writing is the purpose fullness. I do translation or any other writing with a certain purpose, to elaborate it further- monetary gain has never been my purpose of translation or other writings, though I will not deny that I have occasionally gained some money from my translations. To get fame has also not been very strong impulse for my translation activity or other writing. The most strong impulse behind my translations or other writings has been to present to readers of a particular language, a literature of my choice and if that literature is liked and appreciated by the readers of that particular language, that becomes my greatest satisfaction in performing this task.

Though I have done lot of critical writing in Hindi, Punjabi and English about Indian and world literature, yet I know that few books of mine, which have got recognition and popularity also, are related to translation and editing. My co-edited book based on documents of Shahed Bhagat Singh has been tremendously popular in Hindi for the last 16 or 17 years. Same way my translation of Paash's poetry in Hindi is equally popular in Hindi speaking states of the country, which is spread in many books now.

But I was to share with you that why and how I came to translate Paash , the end result of which has brought me here in your esteemed company. On 23rd March 1988, I was in Rohtak, in connection with a seminar in memory of Shaheed Bhagat Singh. On 24th March morning, when I was to get back to Patiala, I saw the morning newspaper, which had the front page news of

Paash's killing at the hands of Khalistani terrorists at his native village Talwandi Salem. Ironically, Paash was a fond follower and admirer of Bhagat Singh and it was on his martyrdom day, that, he also laid down his life at the young age of 38 years. Like Bhagat Singh, he also died for the ideas and cause dear to his heart. Paash personally also was close to me. The news was shocking and saddening both. But It gave me a resolve to tell the terrorists that they may kill the persons, but they can not kill the ideas. Ideas can become even stronger if they are tried to be suppressed by killing people, as happened in the case of British colonialism's phony judicial killing of Bhagat Singh in 1931. Within a month of Paash' s killing, I translated some of his very important poems in Hindi and alongwith an article, sent it to' PEHL', the very respected literary journal from Jabalpur, edited by Sh Gian Ranjan. Within few months' PERL' came ouRanjan with a special edition on Paash's poetry and Paash became very popular among Hindi readership. Then I took up to translate the total poetry of Paash in HIndi and on 23.3.89, at first death anniversary of Paash , the first collection of Paash's poetry in Hind was published and released by Rajkamal Publishers at Delhi and it became instant hit with readers.

There were large numbers of unpublished poems by Paash. Paash memorial International Trust also took many years to publish complete poetry of Paash, which comes close to two hundred poems in all. Hindi translation of all these poems has now been completed and will be published and released soon. It is no easy job to translate Paash's poetry in any other language, even when languages are so close to each other as Hindi and Punjabi. The rural and colloquial colour of Paash's poetry is very charming, but it is difficult to render in another language. I had made a long list of such words in Paash's poetry, which I was finding it difficult to render in Hindi. On one hand, I consulted Paash's father about these words, which had strong cultural background, some related to local folk tales, some related to peasantry and agricultural activity with completely local rural colour. At another level, I discussed my translation of Paash's poetry with my Hindi poet friends to know the exact local words for same peasantry related

Agricultural activity or for some parallel folk tale in Hindi region. That is how; I was able to render the spirit ofPaash's poetry in Hindi language. Then there was aspect of diction. Paash has written few songs and ghazals as well. The exact metrical rendering of those songs and Ghazals was impossible, so I translated these in meter as well as in free verse, rendering more in terms of meaning then in terms of meter. Largely Paash's poetry is in free else, yet one has to create the inner rhythm of poem in another language. The range of Paash's poetry is quite wide and it has strong ideological connotations as well. So to translate Paash's poetry, one has not only to be good at both languages; one has to understand and comprehend his ideas and concerns as well. Fortunately we were close to each other at ideological level, so I had the same passion as the poet had to render the ideas very forcefully. Paash's poetry leaves a powerful impact upon its readers and it was a challenge for any translator, whether his or her translation can create the same impact or not, as the original poem creates. Here I tl1it1k I can claim a great deal of satisfaction that my translation of Paash has gone so well with Hindi readership, that, many readers think Paash is a original Hindi poet. And I do not want to be modest in saying that though I had also got another award this very year of a larger amount (Rupee Fifty Thousand) from Central Hindi Directorate on another. book of mine, yet I feel much happy and satisfied in receiving Sahtiya Akademi Translation Prize, because it is a recognition of not only my translation exercise, but more than that, it is recognition of Paash's poetry at national level. For me the translation of Paash's poetry has been a lob our of love and Sahitya Akademi Award for this labour of love is like love begetting love and luckiest is the man or woman on this earth, whose love begets love. So with all humility. I accept Sahitya Akademi's love for Paash's poetry.

Thanks once again.

Chaman Lal

लेखकों एवं अनुवादकों के नाम और पते

01. **डॉ. ऋषभदेव शर्मा** - 208-ए, सिद्धार्थ अपार्टमेंट्स, गणेश नगर, रामंतापुर, हैदराबाद- 500 013, E-mail rishabhadsharma@gmail.com, मो. 08121435033

02. **डॉ. गुरमकोंडा नीरजा** - सह संपादक, श्रवन्ति, प्राध्यापक उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरातााबाद, हैदराबाद- 500004, E-Mail :- neerajagkonda@gmail.com, मो. 09849986346

03 **मनीषा जैन** - 165 ए, वेस्टर्न एवेन्यू, सैनिक फार्म, नई दिल्ली-110 080, मो.- 09871539404

04. **डॉ. ई. विजय लक्ष्मी** - हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इम्फाल - 795 003 (मणिपुर) E-Mail velangbam@yahoo.com, मो. – 09856138333

05. **डॉ. लक्ष्मी अय्यर** - असोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय, एन.एच.8, बांदर सिंदरी, जिला - अजमेर - 305 817 (राजस्थान) ई-मेल lakshmiaiyar@curaj.ac.in मो. 09680276038

06. **प्रो. देवराज** - प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल - वर्धा - 442001, (महाराष्ट्र), E-Mail – dr4devraj@gmail.com, मो. - 09665976661

07. **डॉ. अनवर अहमद सिद्दीक़ी**- असिस्टेंट प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल - वर्धा - 442 001, (महाराष्ट्र) E-Mail – dranwarsiddiqui@gmail.com मो. 09325469246

08. **डॉ. सतीश पावड़े** - असिस्टेंट प्रोफेसर, प्रदर्शनकारी कला (फिल्म एवं रंगमंच) विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा– 442001 (महाराष्ट्र) मो. – 09372150158 ई-मेल : satish_pawade @ yahoo.co.in

09. **डॉ. हरप्रीत कौर** - असिस्टेंट प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र) मो. - 08180010696

10. **डॉ. मिलिंद पाटिल** - पोस्ट डॉक्टरल फ़ेलो, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442001, (महाराष्ट्र) E-Mail – drmilindpatil@hotmail.com, मो.- 09860663288

11. **डॉ. अर्चना बलवीर** - आवास - 556, वार्ड नं.3 त्रिमूर्ति नगर, उमरी (मेघे) (हिंदी विश्वविद्यालय के समीप), पोस्ट मानस मंदिर- वर्धा- 442 001 E-mail - archnabalveer@gmail.com, मो. - 09970862329

12. **डॉ. मुन्ना लाल गुप्ता** - असिस्टेंट प्रोफेसर, प्रवासन एवं डायस्पोरा अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442001, (महाराष्ट्र) मो.- 09028226561, E-Mail -mlgbharat@gmail.com

13. **डॉ. राजीव रंजन राय** - असिस्टेंट प्रोफेसर, प्रवासन एवं डायस्पोरा अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र) E-Mail - rajeevrai72@gmail.com, मो.- 09823378321

14. **श्री निकेत कुमार मिश्र** - सहायक प्रोफेसर, फ्रेंच भारतीय एवं विदेशी भाषा प्रगत अध्ययन केंद्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)-442001 मो: 09423410360, E-Mail- srinikit@yahoo.com

15. **सुधीर ज़िंदे** - पी-एच.डी. शोधार्थी, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442001, (महाराष्ट्र) ई-मेल : stransa@gmail.com, मो. 09890691568

16. **शिल्पा** - पी-एच.डी. शोधार्थी, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001, (महाराष्ट्र), E-Mail - guptapuja971@gmail.com, मो.– 08149698102

17. **मेघा आचार्या** - पी-एच.डी. शोधार्थी, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा 442001 वर्धा (महाराष्ट्र), मो. 09923918421, ई-मेल acharyamegha20@gmail.com

18. **आशीष कुमार** - पी-एच.डी. शोधार्थी, प्रदर्शनकारी कला (फिल्म एवं रंगमंच) विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442001, (महाराष्ट्र) ई-मेल ashishkumar1913@gmail.com, मो. 09579667774

19. **विद्या चंदनखेड़े** - पी-एच.डी. शोधार्थी, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442 001 वर्धा (महाराष्ट्र), ई-मेल मो. vidyachandankhede@gmail.com, मो. 08624041215

20. **बृजेश कुमार चौहान** - पी-एच.डी. शोधार्थी, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442 001, (महाराष्ट्र) ई-मेल - brijeshchhn@gmail.com, मो. 09850244892

21. **नेहा सुपारे** - पी-एच.डी. शोधार्थी, भाषा अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442001, (महाराष्ट्र) ई-मेल nameeta77@gmail.com, मो. 07038904939

22. **गोदावरी ठाकुर** - एम. फिल. शोध छात्रा, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442 001, वर्धा, (महाराष्ट्र) ई-मेल thakurgodavari@gmail.com, मो.09823397905

23. **अस्मिता राजुरकर** - पी-एच.डी. शोधार्थी, स्त्री अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा - 442005 (महाराष्ट्र) ई मेल- striasmita@gmail.com, मो. 9921256526

24. **डॉ. राजेश मून** - विक्रमशीला नगर, वर्धा- 442001 ई-मेल- vmrajeshmoon@gmail.com, मो. 9049628308

25. **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डे-** हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग,793022 ई-मेल. nppnehu@yahoo.co.in मो. 09436163149

26. **डॉ.श्रृती पाण्डे-** द्वारा प्रो.माधवेन्द्र पाण्डे, ई-मेंल. spshillong@yahoo.co.in

27. **गोपाल नायडु** - कौशल्या अर्पाटमेंट, एफसीआय गोडाऊन के पास, चुना भट्टी, अजनी चौक, नागपुर, महाराष्ट्र, मो. 9422762421

28. **बी हेमलता-** विजयवाडा, (आन्ध्र प्रदेश) ई-मेल hemalatha0611@yahoo.co.in, मो. 09492437606